CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

15.5

प्राच्य श्रमण भारती ग्रन्थमाला–द्वितीय पुष्प
सम्प्रेरक–पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज़

मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक

४३३९

सम्पादक-अनुवादक
प्रो० डॉ० राजाराम जैन
डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन

प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन
१९९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमादरणीय श्रद्धेय प्रो० डॉ० उदयचन्द्र जी
जैन की सेवा में सादर भेंट

[illegible]
नागपुर.

४३२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राच्य श्रमण भारती ग्रन्थमाला—द्वितीय पुष्प
सम्प्रेरक—पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक

भाषाकवि चक्रवर्ति हस्तिमल्ल कृत सुभद्रा-नाटिका, अञ्जना-पवनञ्जय एवं मैथिली-कल्याण नाटिका तथा महाकवि नयचन्द्र सूरि कृत रम्भामञ्जरी-सट्टक के महत्त्वपूर्ण अंशों का प्राकृत-भाषा एवं समकालीन संस्कृति की दृष्टि से सर्वप्रथम संकलन, मूल्यांकन, प्रकाशन

सम्पादन-अनुवाद

प्रो० डॉ० राजाराम जैन
पूर्व-युनिवर्सिटी प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
स्नातकोत्तर संस्कृत-प्राकृत विभाग
ह० द० जैन कॉलेज, आरा
(मगध विश्वविद्यालय)

डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन
एम.ए. (द्वय) स्वर्ण पदक प्राप्त, पी-एच.डी.
हिन्दी विभाग,
म० म० महिला कॉलेज, आरा
(मगध विश्वविद्यालय)

प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन
रफीगंज-शाखा
दि० जैन समाज, पा० दि० जैन मन्दिर, रफीगंज
(औरंगाबाद, बिहार)
१९९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक

प्रो० डॉ० राजाराम जैन
सम्मान्य नियामक एवं सम्पादक
प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन
महाजन टोली नं० २
आरा (बिहार)
८०२३०१

जैन समाज, पा० दि० जैन मन्दिर
पो० रफीगंज, (औरंगाबाद) बिहार

पुस्तक प्राप्ति—
मेसर्स किताब घर
आरा-नवादा-८०२३०१
(बिहार)
ARRAH-802301 (Bihar)

प्रथम संस्करण—फरवरी, १९९२

मूल्य : रुपये २४–००

मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय, जवाहर नगर वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Pracya Sramana Bharati Granthamala No. 2

Inspired by—H. H. Upadhyaya Sri Jnana Sagar ji Maharaj

MADHYAKALIN JAINA SATTAKA-NATAKAs.

A Selection from the Mediaeval Jaina Dramas namely Subhadra Natika, Anjana-Pawananjaya & Maithili-Kalyan-Natikā of Kavi Hastimalla along with Kavi Nayachandra Suri's Rambha-Manjari.

Text with Hindi Translation and Critical Study
Published for the first time.

Edited and Translated by

Prof. Dr. Raja Ram Jain
Ex-University Prof. of Prakrit
& Head of the P. G. Dept. of
Sanskrit & Prakrit
H.D. Jain College, Arrah (Bihar)
(Magadh University)

Dr. (Mrs.) Vidyawati Jain
M.A. (Double) Gold Medalist
Ph. D.
Dept. of Hindi
M. M. Mahila College,
Arrah (Bihar)

Published by
Prachya Sramana Bharati Prakashan
Jain Samaj, Dig. Jain Mandir, Rafiganj (Aurangabad) Bihar
1992

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Published by

Prof. Dr. Raja Ram Jain, *General Editor*,
Prachya Sramana Bharati Publications
Mahajan Toli No. 2
ARRAH (Bihar)
802301

Jain Samaj,
Dig. Jain Mandir
P. O. Rafiganj
(Aurangabad) Bihar

Copies can be had from
Kitab Ghar
Arrah–Nabada
ARRAH–802301 (Bihar)

First Edition, Feb, 1992

Price : Rs. 24–00

Printed by : Vardhman Mudrenalaya Jawahar nagar
Varanasi–221010

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्वाद

प्राच्य भारतीय वाङ्मय के विकास में श्रमण-परम्परा के लेखकाचार्यों के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने प्रारम्भ से ही श्रमण-परम्परा के साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी लेखनी चलाकर सभी प्रकार से उसे तथा उसके माध्यम से भारतीय-प्राच्य विद्या को समृद्ध किया है। किन्तु यह खेद का विषय है कि उसका विधिवत् एवं सर्वांगीण मूल्यांकन नहीं हो पाया है। अतः अब इस बात की अनिवार्यता है कि उसका अधुनातम शैली में अनुवाद एवं समीक्षा के साथ नयनाभिराम प्रकाशन हो, जिससे जिज्ञासु छात्र/छात्राओं, शोधार्थियों एवं स्वाध्यायार्थियों को वह सहज रूप में उपलब्ध हो सके।

महाकवि हस्तिमल्ल आदि के नाटक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अभी तक वे अज्ञात तथा उपेक्षित बने रहे। इनके अनुवाद सहित प्रकाशन से प्राकृत भाषा तथा उनमें वर्णित मध्यकालीन भारतीय संस्कृति एवं समाज के अनेक तथ्यों के उद्घाटन की सम्भावनाएँ हैं।

इस दिशा में प्राकृत एवं संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० राजाराम जैन ने उक्त नाटकों के कुछ महत्त्वपूर्ण अंकों का अनुवाद एवं समीक्षा को मूलपाठों के साथ सर्वप्रथम प्रस्तुत कर सराहनीय कार्य किया है। विश्वास है कि इससे पाठकों को महाकवि हस्तिमल्ल आदि की दैवी-प्रतिभा से परिचित होने का सुअवसर मिलेगा।

कल्याण कामनाओं के साथ
उपाध्याय ज्ञानसागर

बिहार स्थल—
श्री लादूलाल जैन कन्या विद्यालय
रफीगंज (औरंगाबाद) बिहार।
१० जनवरी, १९९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगलकामना

"मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक" नामक प्रस्तुत संग्रह ग्रन्थ के सम्पादक एवं अनुवादक डॉ० राजाराम जैन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के एक सफल एवं श्रेष्ठ विद्वान् हैं। इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध जैन नाटककार हस्तिमल्ल के प्रमुख नाटकों एवं कवि नयचन्द्रसूरि कृत "रम्भामञ्जरी" नामक सट्टक के महत्त्वपूर्ण अंकों का संकलन करके इसे केवल छात्रोपयोगी पाठ्यपुस्तक के ही रूप में नहीं, अपितु उपेक्षित जैन नाट्य साहित्य की महत्ता, मूल्यांकन तथा शोध-खोज की दिशा में सम्पूर्ण विद्वज्जगत् को प्रेरित होने का अवसर प्रदान किया है। एतदर्थं हम उनके इस कार्य की प्रशंसा करते हैं।

प्राकृत भाषाओं के अध्ययन और उनकी व्यापकता की दृष्टि से महाकवि हस्तिमल्ल के नाटक बड़े ही महत्त्व के हैं। इन नाटकों में संस्कृत के साथ विविध प्राकृत भाषाओं का मनोरम एवं अनूठा सम्मिश्रण है। लुप्तप्रायः प्राचीन प्राकृतों के अनेक शब्द इनमें सुरक्षित हैं। वस्तुतः उस युग में सामान्य जनता की बोल-चाल की भाषा के रूप में प्राकृत भाषा लम्बे काल तक लोकप्रिय बनी रही। इसीलिए स्वाभाविक रूप से प्राचीन संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा एवं उसके पात्रों की बहुलता है। इतना ही नहीं अपितु पात्रों की योग्यता तथा सामाजिक स्थिति के अनुरूप प्राकृत-भाषाओं में भी भिन्नता है। डॉ० जैन के इस प्रयास से भारत की अमूल्य धरोहर रूप इन प्राकृत भाषाओं के अध्ययन को बढ़ावा मिलेगा।

इन नाटकों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि हस्तिमल्ल विविध विषयों और भाषाओं के ज्ञाता होने के साथ ही मानव हृदय के सच्चे पारखी थे। कवि ने ये नाटक लोक-व्यवहार को दृष्टि में रखकर ही लिखें हैं। इन नाटकों में मध्यकालीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं लोक-जीवन का जीवन्त रूप प्रस्तुत किया गया है।

डॉ० जैन के प्रस्तुत अध्ययनपूर्ण कार्य से अब तक उपेक्षित, किन्तु अति महत्त्वपूर्ण नाट्य साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ ही संस्कृत-प्राकृत के विभिन्न पाठ्यक्रमों में इनके समायोजन में सुविधा रहेगी। किन्तु यह आवश्यक है कि केवल प्रत्येक नाटक के एक-एक अंक के सम्पादन, अनुवाद एवं अध्ययन की अपेक्षा सम्पूर्ण जैन नाट्य साहित्य के प्रत्येक नाटक का पूर्ण अध्ययन सामने आना चाहिए ताकि इनके मूल्यांकन का अधूरा कार्य पूरा हो सके। मुझे पूरा विश्वास है कि अब नयी पीढ़ी के विद्वान् इस अधूरे कार्य को पूर्ण करके भारतीय साहित्य की सेवा में अपना अमूल्य योगदान देंगे।

वासन्तिक नवरात्र — **पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय**

प्रतिपदा — वाराणसी

वि० सं० २०४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

मूल भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मूल्यों को सुरक्षित रखने में श्रमण परम्परा के विपुल एवं विविध वाङ्मय ने अहं भूमिका का निर्वाह किया है। इसी परम्परा के नाटक और सट्टक साहित्य का लोकरंजन और मार्गदर्शन की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व है। इसीलिए आज भी प्राचीन नाटकों का मंचन विशेष गौरवपूर्ण परम्परा तथा प्रमुख आकर्षण का द्योतक माना जाता है। इसका कारण भी स्पष्ट है, क्योंकि हमारे प्राचीन प्राकृत-संस्कृत नाटकों की कथावस्तु में मनोरम कल्पनाओं की जो बुनावट है वह चिर-नवीन और अद्भुत होने के साथ ही लोक संस्कृति, सहज सामाजिक परिवेश एवं विविध रंगों से युक्त सांस्कृतिक उपादानों से आपूरित है। शास्त्रीय सिद्धान्तवादिता और गुण-धर्मिता तो उनकी भित्ति ही है। रंगमंचीय प्रयोगों में आधुनिक तकनीकी के उपयोग से नाटक भी काफी प्रभावित हुए हैं। इससे प्राचीन नाट्य साहित्य में प्रयुक्त सूक्ष्म से सूक्ष्म साधन-विधियों और प्रयोगों की ओर भी सभी की दृष्टि आकृष्ट हुई है। प्रस्तुत पुस्तक भी मुख्य रूप से श्रमण परम्परा के महत्त्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित नाट्यसाहित्य की महत्ता के प्रकाशनार्थ एक स्तुत्य क़दम है।

मध्यकालीन मनीषियों द्वारा प्रणीत एवं इस पुस्तक में संग्रहीत नाटक यद्यपि मुख्यतः जैन पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं किन्तु इनमें जहाँ अभिनेयता, संवादात्मकता और दृश्य विधानों का प्रश्न है, उनमें नाटककारों ने अपने ढंग से अपनी बात पात्रों की सृष्टि करके कही है। मानवीय संवेगों के माध्यम से ये नाटककार चरित्र-नियमन एवं उद्भावन करने में पूर्ण सक्षम हैं। क्योंकि नाट्य सिद्धान्तों के आधार पर इन सभी नाटकों की रचना हुई है। इस दृष्टि से यह बात विशेष ध्यातव्य है कि प्राचीन संस्कृत नाट्य-साहित्य के रूप में उपलब्ध नाटक यद्यपि संस्कृत नाटक के रूप में अनेक कारणों से विख्यात अवश्य हैं किन्तु प्राकृत भाषा बोलने वाले पात्रों की बहुलता की दृष्टि से तथा परिमाण में प्राकृत भाषा का आधिक्य होने से वस्तुतः इन्हें "प्राकृत नाटक" ही कहा जाना चाहिए। किन्तु नाट्य-सिद्धान्तों के अनुसार भाषा-प्रयोग तथा ये नाटककार संस्कृत भाषा से अधिक सम्बद्ध होने के कारण सट्टकों को छोड़कर अन्य प्रायः संस्कृत नाटक के रूप में ही विश्रुत हैं।

संस्कृत नाटकों के प्राकृत संवाद कुछ दशकों पूर्व तक प्राकृत भाषा के आधार पर पढ़ाये जाते थे किन्तु इधर नाट्य सिद्धान्तों के विपरीत प्राकृत संवादों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतच्छाया के आधार पर अध्ययन-अध्यापन की गलत-परम्परा अधिक प्रचलित होने से उन महत्त्वपूर्ण प्राचीन प्राकृत भाषाओं की घोर उपेक्षा हो रही है जो कभी जन-जन की भाषाओं के रूप में लोकप्रिय रहकर सम्पूर्ण देश को भावनात्मक रूप में एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखती थीं। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् सम्पादक ने विभिन्न नाटकों एवं सट्टकों के उन्हीं अंकों को संकलित किया है जो अनेक विशेषताओं से युक्त तथा प्राकृत भाषा बहुल हैं। साथ ही यहाँ प्राकृत संवादों की संस्कृतच्छाया भी नहीं दी। इससे इस भाषा की गौरव वृद्धि के साथ ही इसके अध्ययन-अध्यापन की व्यापकता भी सिद्ध होगी। क्योंकि प्राकृत भाषा और उसका विपुल वाङ्मय हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्पराओं, राजनैतिक निष्कर्षों एवं कलात्मकता से युक्त विविध रंगों वाला इन्द्रधनुष है जिसमें हमें आज के परिवेश के लिए आदर्श मानवीयता से सम्पन्न बहुविध कथातत्त्व मिल जाते हैं।

इस प्रकार विविध विशेषताओं से युक्त होते हुए भी सम्पूर्ण जैन साहित्य का जो व्यापक प्रचार-प्रसार एवं मूल्यांकन होना चाहिए था, वह पूर्वाग्रह आदि अनेक कारणों से नहीं हो पाया। उनमें एक कारण उन ग्रन्थों के पाठ्यक्रम एवं छात्रोपयोगी संस्करणों की कमी भी रही है। इसी कमी की पूर्ति हेतु अनेक विद्वान् अब प्रयासरत हैं। प्रो० राजाराम जी जैन इन दिशा में अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं लम्बे अनुभव का निरन्तर सदुपयोग कर रहे हैं। आपके प्रयास से विहार तथा देश के अनेक विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के उपेक्षित किन्तु बहुमूल्य अनेक ग्रन्थ पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। इस उद्देश्य से आपने और आपकी विदुषी सहधर्मिणी डॉ० विद्यावती जैन ने अनेक ग्रन्थ तैयार किये, जो विविध पाठ्यक्रमों में निर्धारित हैं।

प्रस्तुत पुस्तक अनेक वर्षों से तैयार थी किन्तु इसके प्रकाशन की समस्या थी। संयोग से नवम्बर १९९१ में गया (विहार) की जैन-समाज द्वारा परम-पूज्य १०८ उपाध्यायश्री ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में आयोजित विद्वत् संगोष्ठी एवं जैन सिद्धान्त वाचना आदि अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए। इस अवसर पर देश के लगभग चार-पाँच सौ से अधिक विशिष्ट विद्वान्, गणमान्य श्रेष्ठी और युवक पधारे। उसी समय आदरणीय डॉ० राजाराम जी आदि विद्वानों ने इस प्रकार के पाठ्यक्रम में निर्धारित तथा अन्यान्य छात्रोपयोगी दुर्लभ पुस्तकों के प्रकाशन की समस्या की ओर पूज्य उपाध्यायश्री का ध्यान दिलाया तो उन्होंने इस ओर तत्काल पहल करने की गया दि० जैन समाज को प्रेरणा दी, तब इसी प्रेरणा से प्राच्य श्रमण भारती प्रकाशन समिति की स्थापना हुई, और इसके प्रथम-पुष्प के रूप में, डॉ० राजाराम जी द्वारा सम्पादित "षट्खण्डागम लेखन कथा" पुस्तक फरवरी १९९२ में प्रकाशित हुई, जो मगध विश्वविद्यालय के बी. ए. (आनर्स) के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत पाठ्य-पुस्तक के रूप में पहले से ही निर्धारित थी। इस पुस्तक का विमोचन समारोह १० फरवरी १९९२ को रफीगंज में पूज्य उपाध्यायश्री के सानिध्य में जैन समाज द्वारा आयोजित हुआ। इसका विमोचन श्री कन्हैयालाल शान्तिलाल जी काला द्वारा किया गया। इसी समय आपने अपनी उदारता से अगले प्रकाशन में आर्थिक अनुदान की घोषणा भी की। इसी सहयोग से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हुआ है। अतः हम इन सभी के बहुत आभारी हैं।

डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी
जैनदर्शन विभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी–२२१००२

दिनांक-२९ फरवरी
१९९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पाद्कीय

जैन संस्कृत वाङ्मय में महाकवि हस्तिमल्ल का स्थान श्रेण्य साहित्यकारों में अग्रगण्य है। उनका विशेष महत्त्व इसलिए है कि जैन स्रोतों से सम्बन्धित नाटक-लेखन की लम्बे समय से उपेक्षित परम्परा को उन्होंने पुनरुज्जीवित किया तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से परवर्ती नाटककारों को नाट्य-लेखन के लिए प्रेरणा दी। हस्तिमल्ल का विशेष महत्व इसलिए भी है कि उनके पात्रों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत-भाषा के विविध रूप प्राकृत-भाषा के विशेषज्ञों के लिए प्राकृत-व्याकरण को नए ढंग से प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। मागधी एवं ढक्की प्राकृतों का जैसा प्रचुर प्रयोग हस्तिमल्ल ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। हस्तिमल्ल के इस साहित्य के प्रकाशन से प्राचीन भारतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से स्वतन्त्र शोध-कार्य की अनेक सम्भावनाओं के द्वार भी खुल सकते हैं।

हस्तिमल्ल के अनेक ग्रन्थों में से अद्यावधि चार नाटक ही उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व श्रद्धेय पं० नाथूराम जी प्रेमी, बम्बई के अथक प्रयत्नों से माणिकचन्द्र दि० जैन सीरीज, बम्बई से अनेकविध ग्रन्थों के प्रकाशन-क्रम में इन नाटकों का सर्वप्रथम प्रकाशन हुआ था। किन्तु उनमें केवल मूलपाठ ही प्रकाशित किये गये थे। उनका अनुवाद न होने के कारण वे शोध एवं शिक्षा जगत् में प्रायः अज्ञात अथवा उपेक्षित जैसे ही बने रहे। अनुवाद न होने का मूल कारण सम्भवतः प्राकृत-भाषा की जटिलता एवं दुरूहता भी रही होगी। महाकवि हस्तिमल्ल एवं उनके नाटकों पर महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध "रूपककार हस्तिमल्ल : एक समीक्षात्मक अध्ययन" सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० डॉ० कन्छेदी लाल जैन शास्त्री द्वारा लिखित एवं सन् १९८० में प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली द्वारा प्रकाशित कृति इन नाटकों के अध्ययन की दृष्टि से बहुत उपयोगी भी है। किन्तु हस्तिमल्ल एवं अन्य के मूल नाटक तथा उनके पाठ्यक्रम के योग्य छात्रोपयोगी संस्करणों का अभाव बराबर बना रहा।

इधर मगध विश्वविद्यालय के पाठ्य-क्रम के निर्माण के समय बोर्ड में इस महत्त्वपूर्ण साहित्य की चर्चा की गई, तो उसने इसके कुछ सरस एवं रोचक अंशों को बी० ए० ऑनर्स (प्राकृत) में पाठ्य-क्रम के रूप में स्वीकार कर लिया। स्वीकृत अंशों का अनुवाद कार्य बड़ा कठिन था, फिर भी इस दिशा में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ सर्वप्रथम प्रयत्न किया गया है। उसमें अनेक त्रुटियों की सम्भावना है। उनके लिए हम विनम्रता पूर्वक क्षमा प्रार्थी है। पाठकों द्वारा प्राप्त सुझावों के आधार पर अगले संस्करण में उनमें साभार संशोधन कर दिया जायगा।

'रम्भामञ्जरी' प्रारम्भ से ही मगध वि० वि० के एम० ए० (प्राकृत) के पाठ्य-क्रम में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत रही है। आलंकारिक रचना होने के कारण वह कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा कुछ कठिन है। सन् १९७२-७३ में जब मगध वि० वि० ने एम० ए० की कक्षाओं का प्रारम्भ किया तब छात्रों को पढ़ाने की दृष्टि से अन्वयार्थादि के साथ उसके प्रारम्भिक भाग का अनुवाद करना पड़ा था। उस समय रम्भामंजरी का एक मात्र संस्करण डॉ० पीटर्सन एवं पं० रामचन्द्र-दीनानाथ (निर्णयसागर का १८८९ ई०), उपलब्ध था। तत्पश्चात् १९८४ में ह० दा० जैन कालेज में आरा में एम० ए० प्राकृत के नियमित अध्ययन की व्यवस्था हुई, तब अध्यापन हेतु पुनः उसके अध्ययन का अवसर मिला। छात्रोपयोगी होने के कारण उसी सामग्री का पूर्ण उपयोग प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। इधर प्रो० डॉ० रामप्रकाश पोद्दार (प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९७६ ई०) तथा प्रो० डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन (भारवि प्रकाशन, गया १९९० ई०) के संस्करण भी निकले, जो अपनी-अपनी विशेषताओं से युक्त सराहनीय हैं। ये सभी बड़े उपयोगी संस्करण है)।

प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपि बहुत पहिले ही तैयार कर ली गई थी किन्तु महँगाई की भीषणता तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे प्रेस में दे पाना सम्भव नहीं हो पा रहा था। किन्तु हम श्रद्धेय उपाध्यायश्री ज्ञानसागर जी महाराज (गया-चातुर्मास, १९९१) के अत्यन्त आभारी हैं कि उनकी प्रेरणा से इसके प्रकाशन की व्यवस्था हो सकी।

रफीगंज (औरंगाबाद, बिहार) के श्री शान्तिलाल जी काला के प्रति हम विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने दिनांक १०-२-९२ को हमारी "षट्खण्डागम-लेखन-कथा" का विमोचन करते समय प्रमुदित होकर प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु आर्थिक सहायता की घोषणा की। इस प्रसंग में हम गया के निवासी श्री विद्या-कुमार जी काला, श्री स्वरूपचन्द्र जी पाटनी तथा अध्यक्ष श्री पदमचन्द जी अजमेरा आदि को नहीं भुला सकते, जो हमारे इस साहित्य-यज्ञ के प्रमुख सूत्रधार रहे हैं। इस प्रकार के प्रकाशनों के लिए ये प्रारम्भ से ही बड़े चिन्तित रहे हैं और वह उनकी इस चिन्ता का ही सुफल है कि आज प्राच्य श्रमण भारती ग्रन्थमाला का यह दूसरा पुष्प प्रकाशित हो रहा है।

इस पुस्तक को तैयार करने में हम अपने स्नेही मित्र प्रो० (डॉ०) राय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्विनी कुमार, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध वि० वि०, प्रो० डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन अध्यक्ष-पालि-प्राकृत विभाग, मगध वि० वि०, प्रो० (डॉ०) चन्द्रदेवराय, अध्यक्ष-स्नातकोत्तर संस्कृत-प्राकृत विभाग, ह० दा० जैन कॉलेज आरा के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिनसे समय-समय पर उपयोगी परामर्श मिलते रहे हैं। अपने परममित्र प्रो० (डॉ०) फूलचन्द्र जैन प्रेमी वाराणसी (प्रकाशन मन्त्री, प्रा० श्र० भा०) के भी विशेष रूप से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक के लेखन में कुछ बहुमूल्य सुझाव एवं लेखन की शीघ्रता हेतु उलाहने ही नहीं दिए, अपितु उसके मुद्रण की सुन्दर व्यवस्था भी करा देने में पूर्ण सहयोग किया। वर्द्धमान मुद्रणालय, वाराणसी को उनके अच्छे सहयोग के लिए भी धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

अन्त में, निम्न पंक्तियों के माध्यम से अपनी त्रुटियों के लिए एकबार पुनः क्षमा-याचना कर विराम लेते हैं—

ऊणं अइरित्तं वा जं एत्थ कयं पमायदोसेणं।
तं मे परिपूरेउं खमंतु इह पंडिया सव्वे॥

अर्थात् यदि हमने प्रमाद पूर्वक न्यून या अतिरिक्त कुछ भी लिख दिया हो तो समस्त पण्डितजन उसमें संशोधन कर हमें क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

विनम्र

प्रो०(डॉ०) राजाराम जैन

डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन

महाजन टोली नं २
आरा (बिहार)
वसन्त पंचमी
८-२-९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रम

[१] भूमिका .... (१-५)

महाकवि हस्तिमल्ल का जीवन-परिचय १

काल-निर्णय एवं जन्मस्थल १

पारिवारिक परिचय १

कवि-नाम निर्णय २

रचनाएँ २

संस्कृत नाटककारों में हस्तिमल्ल का स्थान २

रचना-वैशिष्ट्य ३

रचनाओं के स्रोत ३

आद्य जैन नाटककार के रूप में हस्तिमल्ल ४

[२] मूलपाठ एवं हिन्दी अनुवाद (७-१२३)

(१) सुभद्रा नाटिका ७-३८

(२) अंजना-पवनंजय-नाटकम् ३९-५५

(७) मैथिली-कल्याण-नाटकम् ५६-८१

(४) रम्भामंजरी सट्टक ८२-१२३

[३] समीक्षात्मक अध्ययन (१२५-१६१)

(१) सुभद्रा नाटिका (१२५-१३८)

कथावस्तु १२५

नाटिका का स्वरूप एवं सुभद्रा नाटिका १२६

—कवि-कल्पित कथावस्तु १२७

—नायक १२७

—शृंगारी-रस १२७

—स्त्री-पात्रों की प्रधानता १२७

—नायक-नायिका-मिलन १२७

—नायिका १२८

—नाटिका : शिल्प एवं स्थापत्य १२८

—कैशिकी वृत्ति एवं उनके प्रकार १२८

अर्थ प्रकृतियां १२९

अवस्थाएँ १२९

सन्धियां १३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सट्टक का स्वरूप एवं नाटिका-सट्टक में अन्तर १३१
भरत का चरित्र-चित्रण १३१
सुभद्रा-चरित्र-चित्रण १३३
(२) अंजना-पवनंजय-नाटकम् (१३५-१३८)
कथावस्तु १३५
पवनंजय का चरित्र-चित्रण १३६
अंजना का चरित्र-चित्रण १३८
(३) मैथिली कल्याण नाटकम् (१३९-१४२)
कथावस्तु १३९
राम का चरित्र-चिवण १४१
सीता का चरित्र-चित्रण १४२
[४] महाकवि हस्तिमल्ल के नाटकों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्त्व (१४३-१४९)
आत्म संस्कार १४४
सामाजिक रीति-रिवाज १४४
उत्सव एवं मनोविनोद १४६
दोलोत्सव १४६
मदन पूजोत्सव १४७
वेशभूषा एवं अलंकरण १४७
दिक्षा १४८
ललितकला १४८
आर्थिक परिस्थितियाँ १४९
[५] हस्तिमल्ल के नाटकों में उपलब्ध विविध प्राकृतें (१४९-१५५)
शौरसेनी प्राकृत १५१
महाराष्ट्री प्राकृत १५२
मागधी प्राकृत १५४
ढक्की प्राकृत १५४
[६] रम्भामञ्जरी'संक्षिप्त समीक्षा (१५६-१६०)
सट्टक साहित्य : उद्‌भव एवं विकास १५६
उपलब्ध सट्टक साहित्य १५७
सट्टक का गठन और रम्भामंजरी १५८
रम्भामंजरी विषयवस्तु एवं कथानक, ग्रन्थकार परिचय १५९-१६०
[७] कुछ विशिष्ट प्राकृत शब्दों के संस्कृत रूपान्तर (प्रस्तुत पुस्तक की पृष्ठ संख्या के आधार पर) (१६१-१७८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक

• •

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

महाकवि हस्तिमल्ल का जीवन-परिचय

काल निर्णय एवं जन्म-स्थल—

हस्तिमल्ल ने पूर्ववर्त्ती अनेक कवियों और रूपककारों की भाँति ही अपने जन्म-समय या जन्मस्थान के सम्बन्ध में स्पष्ट सूचना नहीं दी है। फिर भी, उपलब्ध अन्तर्साक्ष्यों एवं बहिर्साक्ष्यों के आधार पर हस्तिमल्ल का समय सन् १२५० ई० माना जा सकता है। इनके पिता का नाम गोविन्द भट्ट था। वे वत्सगोत्री ब्राह्मण थे। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। उनके द्वारा लिखित "विक्रान्तकौरव" नामक नाटक की एक प्रशस्ति के अनुसार उन्होंने आचार्य समन्तभद्र के "देवागमस्तोत्र" से प्रभावित होकर जैनधर्म को स्वीकार किया था।

"प्रतिष्ठासारोद्धार" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में हस्तिमल्ल का संक्षिप्त परिचय उपलब्ध होता है। उक्त ग्रन्थ के रचनाकार ब्रह्मसूरी हैं, जो स्वयं हस्तिमल्ल के वंशज भी थे। उक्त प्रशस्ति के अनुसार हस्तिमल्ल का मूलनिवास-स्थान वर्तमान कर्नाटक प्रान्त के तीर्थहल्लि नामक ग्राम के निकटवर्त्ती हुम्मच-तीर्थ सिद्ध होता है। "अंजना-पवनंजय नाटक" की प्रशस्ति के अनुसार हस्तिमल्ल कर्णाटक प्रान्त के संतरगम नामक नगर में रहते थे। यह संतरगम जैनागारों से युक्त था। हुम्मच तीर्थ में आदिनाथ, पार्श्वनाथ तथा चन्द्रनाथ-मन्दिर के अतिरिक्त पंचकूट-वसदि नामक एक विशाल कलापूर्ण मन्दिर है, जिनका निर्माण सान्तरवंशीय राजाओं ने करवाया था। हुम्मचतीर्थ सान्तरों की राजधानी भी थी। इसलिए उस नगरी का नाम सान्तरग्राम हो जाना असम्भव नहीं है। प्रतीत होता है कि हस्तिमल्ल की साहित्य-साधना का अधिकांश समय इसी संतरगम नगर में व्यतीत हुआ होगा।

पारिवारिक परिचय—

महाकवि हस्तिमल्ल एक सद्गृहस्थ श्रावक थे। उनके पुत्र-पौत्रादि का वर्णन उक्त ब्रह्मसूरि ने अपने "प्रतिष्ठासारोद्धार" ग्रन्थ में किया है। उन्होंने जो वंशावली प्रस्तुत की है, उससे सिद्ध होता है कि हस्तिमल्ल स्वयं ही उसके (अर्थात् ब्रह्मसूरि के) पितामह के पितामह थे। प्रतिष्ठासारोद्धार के अनुसार हस्तिमल्ल ६ भाई थे—(१) कुमारकवि, (२) सत्यवाक्य, (३) देवरवल्लभ, (४) उदयभूषण, (५) हस्तिमल्ल, और (६) वर्धमान। ये सभी भाई विद्वान् और कवि थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि का नाम-निर्णय—

हस्तिमल्ल का असली नाम क्या था ? इसका पता नहीं चलता। "हस्तिमल्ल" यह नाम तो उन्हें वस्तुतः एक मदोन्मत्त हाथी को वश में करने के उपलक्ष्य में एक पाण्ड्य-राजा के द्वारा प्राप्त हुआ था। उस अवसर पर उनका सैकड़ों प्रशंसा-वाक्यों में सत्कार किया गया था। "विक्रान्त-कौरव" के प्रथम अंक में इसका उल्लेख लेखक ने स्वयं ही किया है। किन्तु दक्षिण-भारत के ग्रन्थकारों से ग्रन्थों की जो सूची प्राप्त हुई है, उसमें उनके मल्लिषेण और हस्तिमल्ल ये दो नाम भी मिलते हैं। इस सूची के निर्माता प्राच्य भारतीय-विद्या के योरपीय विद्वान् आपर्ट महोदय हैं।

दक्षिण भारत में उन दिनों चूँकि आचार्य जिनसेन, वीरसेन आदि सेन-गणीय-आचार्यों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः प्रतीत होता है कि "सेन" परम्परा के अनुरूप कवि का मूल नाम भी सम्भवतः मल्लिषेण रहा होगा। किन्तु बाद में उनका उपाधि-नाम "हस्तिमल्ल" ही अधिक लोकप्रिय हो गया और उनकी रचनाओं में वही नाम सर्वत्र उपलब्ध होता है।

रचनाएँ—

हस्तिमल्ल को सरस्वतीस्वयंवर-वल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्ति-रत्नाकर जैसी महनीय उपाधियाँ प्राप्त थीं। उनके बड़े भाई सत्यवाक्य ने उन्हें "कविता-साम्राज्यलक्ष्मीपति" कह कर उनकी सूक्तियों की बहुत ही प्रशंसा की है। "राजावली-कथे" के कर्त्ता ने उन्हें "उभयभाषा चक्रवर्त्ती-कहा हैं। यहाँ उभयभाषा से तात्पर्य है, उनका कन्नड़ और संस्कृत-भाषा में निष्णात होना।

हस्तिमल्ल द्वारा प्रणीत चार नाटक—(१) विक्रान्त कौरव, (२) मैथिलो-कल्याण नाटक, (३) अंजना-पवनंजय, और (४) सुभद्रा नाटिका के अतिरिक्त कन्नड़ भाषा में लिखित "आदिपुराण" और "श्रीपुराण" नामक दो ग्रन्थ भी उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त भी (१) उदयन-राज, (२) भरतराज, (३) अर्जुनराज और (४) मेघेश्वर नामक अन्य चार नाटकों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु वे अद्यावधि अनुपलब्ध ही ही हैं। बहुत सम्भव है कि ये नाटक दक्षिण-भारत के ग्रन्थ-भंडारों में कहीं सुरक्षित पड़े हों और अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रहे हों ?

संस्कृत नाटककारों में हस्तिमल्ल का स्थान—

संस्कृत नाट्य-साहित्य के विकास में हस्तिमल्ल के नाटकों का अनुपम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगदान है। इतिहासकारों के अनुसार १३वीं सदी में अपने नाटकों के माध्यम से हस्तिमल्ल ने संस्कृत नाट्य-साहित्य में उत्पन्न एक बड़ी भारी रिक्तता को दूर कर उसे समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। अतः संस्कृत-साहित्याकाश में संस्कृत नाटककारों के बीच हस्तिमल्ल सदैव ही एक तेजस्वी नक्षत्र की भाँति दैदीप्यमान रहेंगे।

रचना-वैशिष्ट्य—

हस्तिमल्ल के नाटकों का इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यही है कि संस्कृत के प्रायः समस्त सशक्त नाटककार, जिनके नाटकों में शास्त्रीय-नाटकीयत्व था, वे सभी दसवीं शताब्दी के पूर्व हो चुके थे और बाद के नाटकों में कलापक्ष की बोझिल प्रधानता के कारण उनमें नाटकीय विधानों का प्रायः लोप होता जा रहा था। किन्तु १३वीं शताब्दि के नाटककार हस्तिमल्ल के नाटकों में यह नाटकीय तत्त्व पूर्व के नाटकों की तरह अक्षुण्ण मिलता है। इस दृष्टि से संस्कृत-साहित्य में एक सशक्त नाटककार के रूप में हस्तिमल्ल का स्थान विशेष महत्व-पूर्ण है।

रचनाओं के स्रोत—

पूर्व के संस्कृत-नाटककारों ने अपनी कथावस्तु का चयन वाल्मीकि-रामायण, महाभारत एवं अन्य लौकिक-कथाओं से किया है। लेकिन हस्तिमल्ल ने इस परम्परा से हटकर अपने नाटकों की कथावस्तु का मुख्य आधार जैन ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं को बनाया है। उन्होंने जैन पुराणों से सरस और उदात्त कथाएँ ग्रहण कर उन्हें अपने ढंग से नाट्य-रूप प्रदान किया है। अभी तक संस्कृत के किसी भी नाटककार का ध्यान जैन-कथाओं की ओर नहीं जा सका था, अतः हस्तिमल्ल ही इस नवीनता को अपना सके और एक नवीन-मार्ग के अन्वेषक होने के कारण संस्कृत-साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान बन सका है।

जिन कथानकों को आधार बनाकर अनेक नाटकों का सृजन हो चुका हो, उन्हें न चुनकर, नई कथाओं को चुनना नाटककार की अपनी मौलिक प्रतिभा एवं विशिष्टता मानी गई है। जिस प्रकार शूद्रक ने जन-सामान्य की मर्मस्पर्शी कथाओं को लेकर "मृच्छकटिक-नाटक" का सृजन किया और विशाखदत्त ने राजनीति के दावपेंच से युक्त "मुद्राराक्षस" की कथा को चुना और इसी नवीनता के कारण संस्कृत-नाटककारों में वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना विशिष्ट स्थान बना सके, उसी प्रकार हस्तिमल्ल का भी नवीनतम स्रोतों के कारण संस्कृत नाटककारों में महत्वपूर्ण स्थान बन गया।

तेरहवीं शताब्दी तक जैन-साहित्य में धर्म, दर्शन तथा न्याय संबंधी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। महाकाव्य, चम्पू एवं गद्य-काव्य की भी रचना की गई लेकिन नाट्य-लेखन की ओर प्रायः किसी भी साहित्यकार का ध्यान नहीं गया था। अतः हस्तिमल्ल ही ऐसे नाटककार अथवा रूपककार हैं, जिनका सबसे पहले ध्यान नाट्य-लेखन की ओर गया और उन्होंने पूर्वोक्त क्रमशः चार नाट्कों की रचना की। इस दृष्टि से जैन-साहित्य में सर्वप्रथम नाटककार हस्तिमल्ल ही हैं। इसके लिए जैन-नाट्य साहित्य उनका चिर ऋणी रहेगा।

आद्य जैन नाटककार के रूप में हस्तिमल्ल—

जैन संस्कृत-साहित्य में नाटक-साहित्य का सृजन करने वाले सर्वप्रथम नाटककार उक्त हस्तिमल्ल दक्षिण भारत में हुए थे, जबकि वहाँ संस्कृत-नाटककार नहीं के बराबर हुए हैं। दक्षिण के सम्बन्ध में प्रसिद्धि है कि वहाँ संस्कृत नाटकों का सृजन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। इसीलिए दसवीं शताब्दी के लिखे नाटक "आश्चर्य चूड़ामणि" में नटी का यह कथन उपयुक्त ही है, कि "यदि दक्षिण देश में नाटक का निर्माण हुआ है, तो समझो कि आकाश में फूल उग आये हैं और बालू से तेल निकल आया है"। इस प्रकार जब दक्षिण भारत को नाटककारों की उत्पत्ति के लिए मरुस्थल माना जाने लगा था, उस कठिन परिस्थिति में भी हस्तिमल्ल का जन्म जब दक्षिण देश में हुआ तब वे निःसन्देह ही रेगिस्तान में कल्प-वृक्ष या शुष्क सरोवर में सुन्दर कमल खिलने के सदृश सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से भी हस्तिमल्ल का एक नाटककार अथवा रूपककार के रूप में अद्वितीय स्थान है।

संस्कृत-नाट्य-साहित्य में शूद्रक, भास, कालिदास और हर्ष के नाटक अपनी नाट्य-कला के कारण महत्वपूर्ण स्थान बना सके हैं। उनमें जो सरलता, तरलता, मार्मिकता और सरसता है, वह बाद के नाटकों में दिखलाई नहीं पड़ती। हस्तिमल्ल यद्यपि नाटककार हर्ष के बहुत बाद हुए है, लेकिन उनके नाटकों में भी जिस सरलता, सरसता और उदात्त-भावभूमि के दर्शन होते हैं, वह नाट्यकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हस्तिमल्ल के सम्बन्ध में डॉ० वाचस्पति गेरौला ने लिखा है—कि "जैन-साहित्य के क्षेत्र में हस्तिमल्ल का अनोखा व्यक्तित्व उनके दृश्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यों के प्रगयन में प्रकट हुआ है"। डॉ० गैरोला ने उसे तेरहवीं शताब्दि का सर्वाधिक प्रतिभाशाली नाटककार माना है।

अतः यह कहा जा सकता है कि नाटकीय शैली, भाव, भाषा, अलंकार, छन्द, चरित्र-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से हस्तिमल्ल के नाटक श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं और इस प्रकार संस्कृत नाटककारों में हस्तिमल्ल का महत्वपूर्ण स्थान है।

महाजन टोली नं० २ (प्रो० डॉ०) राजाराम जैन
आरा (बिहार) डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन,
८०२३०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि हस्तिमल्लकृत

सुभद्रा नाटिका

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—आणत्त म्हि भट्टिदारिआए सुभद्दाए। जह 'हंजे मंजरिए, एसो खु दाणि बालासोओ समंतदो विअसंतकुसुमत्थवअमंडणसंमाणिअजोव्वणारंभो संवुत्तो। एसा अ णिरंतरुद्दलिअमउलसअजाअंतसोहा बोलेइ मुद्धभावं मालईलआ। जाव दाणिं एदाणं उव्वाहविहिं संपादेमो। ता जाव तुमं मंदाइणिं गदुअ पसण्णपूदाणि पदाणसलिलाणि अग्घकमलाणि अ आणिअ आअच्छ' त्ति। ता जाव मंदाइणिं गच्छेमि (परिक्रामति। पृष्ठतोऽवलोक्य) कहं पिअपही तरंगिआ अणुपदं आअच्छेदि ? (प्रतिपाल्य तिष्ठति।)

(प्रविश्य)

द्वितीया चेटी—हंजे मंजरिए, कीस तुमं चिट्ठसि ?

प्रथमा—सहि तरंगिए, कीस तुमं पि अणुपदं आअदा ?

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—कुमारी (भर्तृदारिका) सुभद्रा ने मुझे आज्ञा दी है कि "हे सखि, मंजरिके, इस समय यह बाल अशोक खिलते हुए फूलों के गुच्छों से यौवनारम्भ को प्राप्त हो गया है और यह मालती लता भी निरन्तर खिलती हुई सैकड़ों कलियों से उत्पन्न शोभा वाली अपने मुग्धापन को प्रकाशित कर रही है। तब हम दोनों इस समय इन दोनों की विवाह-विधि सम्पन्न करें। अतः तुम मन्दाकिनी जाकर फूलों से पवित्र दान के लिये जल और अर्घ्यकमल लेकर आ जाओ। इसलिये मैं मन्दाकिनी जा रही हूँ। (घूमकर आगे बढ़ती है। पीछे देखकर) क्या प्रियसखी तरंगिका पीछे से आ रही है ? (प्रतीक्षा करती हुई ठहर जाती है) (प्रवेश करके)।

दूसरी चेटी—सखि, मंजरिके, तुम किसलिये खड़ी हो ?

पहली चेटी—हे सखि तरंगिके, तुम पीछे-पीछे किस प्रयोजन से आयी हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया—हला, अहं पि भट्टिदारिआए आणत्ता। जह सहि तरंगिए, तुमं दाव गदुअ 'संफुल्लो बालासोओ मालईलआ अ। दाणिं चेअ तेसिं उव्वाहविहिं' त्ति विलंविआओ सहीओ भणिअ इह आणेहि त्ति।

प्रथमा—सहि, अच्छेरं खु तं जं दाव हिओ दंसिदसामपाडलमुद्धकोरओ बालासोओ ईसुव्भिण्णहरिदालपंडुरंकुरा अ मालईलआ दाणिं विआसणिब्भर-कुसुमविच्छड्डमणोहरा संवुत्ता।

द्वितीया—सहि, अच्छेरं एअं। जइ तुमं अप्पम्मि विस्साससि किं पि दाणिं पुच्छेमि ?

प्रथमा—सहि, विस्सद्धं भणाहि। किं ण आणासि तुमं मंजरिअं ?

द्वितीया—सहि, कुदो खु एत्तिअम्मि हरिसेक्ककारणे बालासोअमालईल-आणं आआलिअकुसुमुब्भेदकल्लाणे अण्णारिसं विअ दीणदीणं चेदो खाम-खामं च सरीरं लक्खिज्जइ भट्टिदारिआए।

प्रथमा—(विचिन्त्य, सशङ्कं परितो विलोक्य) ण आणामि अहं।

दूसरी—हे सखि, मुझे भी राजकुमारी ने आज्ञा दी है कि "हे सखि तरंगिके, बाल-अशोक और मालती-लता ये दोनों ही विकसित हो गये हैं। अतः तुम जाकर विलम्ब कर रही सखियों को यह कह कर बुलाओ कि "इसी समय उनकी उद्वाह-विधि पूरी की जायगी"।

पहली—हे सखि, आश्चर्य है यह, क्योंकि कल तक ही तो बाल अशोक के काले-पीले कठोर कोरक (कलियों) दिखलायी पड़े थे और मालती-लता भी अत्यल्प-विकसित हरिताल के समान पीले अंकुरों वाली थी। इस समय दोनों विकास द्वारा अत्यन्त पुष्प-सौन्दर्य से मनोहर कैसे हो गये ?

दूसरी—हे सखि, यही आश्चर्य है। यदि तुम अपने ऊपर विश्वास करती हो तो तुमसे इस समय कुछ पूछूँ ?

पहली—हे सखि, विश्वस्त होकर कहो, क्या तुम मंजरिका को नहीं जानती ?

दूसरी—हे सखि, बाल-अशोक और मालती-लता के अकालिक कुसुमोद्भिन्नता-रूपकल्याण और एक मात्र प्रसन्नता के इस विषय में राजकुमारी का अत्यन्त दुखी चित्त एवं शरीर अत्यन्त दुबला-पतला परिलक्षित हो रहा है।

पहली—(सोचकर, शंका सहित चारों ओर देखकर) मैं तो जानती ही नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया—सहि, किं एअं? वत्तुकामा विअ उवक्कमिअ पुणो ण भणासि।

प्रथमा—हला, ण खु अहं तुइत्तो अहिअं जाणामि। तुमं दाव कहं समत्थेसि?

द्वितीया—(सस्मितम्) सहि, जाणासि अइसंधादुं जं पुच्छिदं रहस्सं पडिपुच्छसि। तहवि ण सक्क म्हि तुमं विअ पिअसहीए अत्तणो भावं णिगूहिदुं। एसा भणामि।

प्रथमा—अवहिद म्हि।

द्वितीया—हला, जह तुमं समत्थेसि तह एव्व तं ति मह वि समत्थणा।

प्रथमा—(सस्मितम्) अभिजादं पआसणं संवरणं च तरसि।

द्वितीया—हला, को णु खु सो महाभाओ, कहं च दिट्ठिभावो?

प्रथमा—एत्तिअं पुण जाणामि। बालासोअसुमरणमेत्तम्मि अ मिला-अंती इमस्स उद्देसस्स कहं तदा पिअसहीए सह मंदारिआए आवत्तेदि। सहि, विहारणिरपेक्खा अ सहीअणं मोत्तूण इमंस्सि चेअ पएसे तेण तेण ववदेसेण विलंबेइ।

दूसरी—सखि, यह क्या? बोलने जैसा उपक्रम करके भी फिर क्यों नहीं बोलती?

पहली—हे सखि, मैं तुमसे अधिक नहीं जानती हूँ। क्या तुम उसका समर्थन करती हो?

दूसरी—(मुस्कुराहट के साथ) हे सखि, तुम धोखा देना जानती हो, इसीलिये मेरे पूछे जाने पर भी तुम उल्टे मुझसे ही गोपनीय पूछ रही हो? फिर भी, मैं तुम्हारी तरह प्रियसखी से अपने मन का भाव छिपाने में समर्थ नहीं हूं। ये लो, मैं बताती हूं।

पहली—मैं सुन रही हूँ।

दूसरी—हे सखि, जैसा तुम स्वीकार करो। मैं भी उसी प्रकार मानती हूँ।

पहली—(मुस्कुराहट के साथ) तुम अति सुन्दर तरीके से प्रकाशित करना भी जानती हो और छिपाना भी।

दूसरी—हे सखि, कौन है वह महाभाग्य और यह दृष्टिभाव कैसे उत्पन्न हुआ?

पहली—मैं मात्र इतना ही जानती हूँ। बालाशोक के स्मरण मात्र से मलिन होती हुई वह इसी अभिप्राय की कथा को बार-बार अपनी प्रियसखी मन्दारिका से कहवाती है। हे सखि, विहार की निरपेक्षा से अपनी सखीजनों को छोड़कर वह इसी प्रदेश में किसी न किसी बहाने से देर किया करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया—हला, अलं एत्तिएण। गच्छेमि।

प्रथमा—तदो तुमं विअ अहं पि गच्छेमि।

द्वितीया—सहि, तह (उभे निष्क्रान्ते।)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सोत्कण्ठा सुभद्रा मन्दारिका च।)

सुभद्रा—(दीर्घं निःश्वस्य सखेदमात्मगतम्) अइ मूढ हिअअ, तस्स जणस्स सुमरणं तुह एक्कंतसंतावइत्तअं जाणंतो वि कीस तुमं पुणो वि तं चेअ सुमरेसि? अम्मो चवलाइ लोअणाइ, जस्सि दाव संणिहिदे संपुण्णं दंसणं पि कादुं ण पहवेह, तं चेअ दाणि दंसिदुं अहिलसंताइ कुदो मं आआसेध? हंहो दुव्विदद्ध हत्थ, जेण गहिदो तुमं दुम्माणवसणपरवंतो मोएदुकामो आसी तस्स पुणो वि फंससुहं णिल्लज्जो कहं इच्छसि? अंग वम्मह, अण्णाणुराअ-पराहीणे वि ज़णे मं खलीकरंतो किं ति तुह सराणं विणोदलक्खीकरेसि?

मन्दारिका—पिअसहि, किं चिंतेसि?

सुभद्रा—ण किं वि।

दूसरी—हे सखि, अब बस, मैं चलती हूं।

पहली—तब तो तुम्हारी ही तरह मैं भी जाती हूँ।

दूसरी—हे सखि, अच्छा। (दोनों निकल जाती हैं)

प्रवेशक

(तत्पश्चात् उत्कण्ठित बैठी हुई सुभद्रा और मन्दारिका का प्रवेश)

सुभद्रा—(लम्बी साँस खीचकर, कष्ट पूर्वक मन ही मन) अरे मूर्ख हृदय, जब उस व्यक्ति का स्मरण मात्र ही तेरे अत्यन्त सन्तापकारी है, तब इसे जानते हुए भी तूँ क्यों उसकी याद करता है? अहो चंचल नेत्र, जिसके नजदीक आने पर भी तुम पूर्णतः उसके दर्शन करने के लिए समर्थ नहीं, तब उसी को इस समय देखने की अभिलाषा करतें हुए मुझे क्यों परेशान कर रहे हो? अरे मूर्ख हाथ, जिसके द्वारा पकड़े जाने पर भी मानाधीन होकर मुक्त होना चाहते थे, अरे निर्लज्ज, उसी का स्पर्श-सुख पुनः क्यों चाहता है? हे मित्र कामदेव, दूसरे के प्रेम में पराधीन व्यक्ति के प्रति मुझे दुखी करते हुए तुम क्यों मुझे अपने वाणों की विनोद क्रीड़ा का लक्ष्य बना रहे हो?

मन्दारिका—प्रियसखि, क्या सोच रही हो?

सुभद्रा—कुछ भी तो नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—किं तदो अण्णं ?

सुभद्रा—कुदो ?

मन्दारिका—जं तुए अविच्छिण्णं चिंतिज्जइ ।

सुभद्रा—(सलज्जम्) जाणंती एव्व कुदो मं पुच्छेसि ?

मन्दारिका—पण्हो वि तहिं विसए तुह रमइत्तओ त्ति ।

सुभद्रा—हला, पराहीणे तस्सि जणे समूसुअं कीस मं उवहसेसि ?

मन्दारिका—सहि, दक्खिण्णमेत्तदिण्णुत्तरं, तं किं ति पुण ण पत्तेसि ? (सस्मितम्) अहव विरुद्धोवण्णासच्छलेण असाहारणिं तुवम्मि तस्स बहुमइं उग्घाडेंतो अत्ताणं सलाहेसि ।

सुभद्रा—(सविलक्षस्मितम्) पिअसहि, एसो अंजली । मा खु मं उवहसेसि ।

मन्दारिका—इअं म्हि तुण्हिक्का ।

सुभद्रा—(सखेदमात्मगतम्) हंत किणु खु एअस्स मअणरोअस्स अवसाणं । जेण णिद्दअपीडिआए भारो मे सरीरं चंपणाअ पडिभाइ । अहव कुदो मे तारिसा भाअधेआ जदो एदं कल्लाणं परिणमिस्सदि । (रोदिति)

मन्दारिका—क्या इससे भिन्न कुछ सोच रही हो ?

सुभद्रा—किससे ?

मन्दारिका—जिसके विषय में तुम निरन्तर सोचती रहती हो ?

सुभद्रा—(लज्जा के साथ) जानती हुई भी मुझसे क्यों पूछ रही हो ?

मन्दारिका—क्योंकि उसके विषय में पूछा गया प्रश्न भी तुम्हें सुख पहुँचाता है ।

सुभद्रा—हे सखि, उस व्यक्ति के प्रति पराधीन मुझ उत्सुक की हँसी क्यों उड़ा रही हो ?

मन्दारिका—हे सखि, बड़ी ही चतुराई के साथ उत्तर दिया है । तब तुम उस व्यक्ति पर विश्वास क्यों नहीं करती ? (मुस्कुराती हुई) अथवा, विरुद्ध कथन के छल से उसका तुम्हारे ऊपर जो असाधारण प्रेम है, उसे उद्घाटित करती हुई तुम स्वयं ही अपनी प्रशंसा कर रही हो ?

सुभद्रा—(लज्जापूर्वक मुस्कराकर) हे सखि, मैं हाथ जोड़ती हूं । मेरा उपहास मत करो ।

मन्दारिका—लो, मैं चुप हो गयी ।

सुभद्रा—(कष्ट पूर्वक मन में) हाय, क्या इस मदनरोग का अवसान हो सकेगा, जिसके कठोर-पीडन से भारी मेरा शरीर मरणाभिमुख प्रतीत होने लगा है । अथवा, मेरा वैसा भाग्य ही कहाँ, जिससे वह कल्याण मुझे प्राप्त हो जाय । (रोने लगती है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—सहि, कुदो दे ओवाअसंका। अहरहं सिज्झंति णिमित्ताइ।
सुभद्रा—पिअभासिणीओ खु सहीओ।
मन्दारिका—मा तह चिंतिअ। सव्वहा ण विसंवदंति णिमित्ताइ।
सुभद्रा—होदु।
मन्दारिका—पिअसहि, किं ते मणो लिहइ।
सुभद्रा—हला, सुट्ठु भणिअं। लेक्खं चेअ खु तं।
मन्दारिका—किं अणंगलेहकव्वं ?
सुभद्रा—(सलज्जम्) तं विअ।
मन्दारिका—सहि, भणाहि भणाहि।
सुभद्रा—जइ ण मं उवहसिस्ससि, एसा भणिस्सं।
मन्दारिका—ण एअं उवहासट्ठाणं।
सुभद्रा—तेण हि सुणाहि।
मन्दारिका—अवहिद म्हि।
सुभद्रा—(अनुस्मृत्य) लज्जदि भणिदुं जीहा।
मन्दारिका—तेण हि अहिलिहिअ दंसेहि।

मन्दारिका—हे सखि, तुम्हें यह अपशकुन की आशंका कैसी ? रोज-रोज अच्छे लक्षण सिद्ध हो रहे हैं।
सुभद्रा—सखियाँ मधुरभाषिणी होती ही हैं।
मन्दारिका—ऐसा न सोचो। निमित्त कारण सदा असंगत नहीं होते।
सुभद्रा—ऐसा ही हो (असह्य चिन्ता है)।
मन्दारिका—हे प्रियसखि, तुम्हारा मन क्या चाहता है ?
सुभद्रा—हे सखि, तुमने अच्छा कहा। यह उल्लेख करने योग्य है।
मन्दारिका—अनंग-लेख-काव्य क्या है ?
सुभद्रा—(लज्जा सहित) वही।
मन्दारिका—सखि, कहो, कहो।
सुभद्रा—यदि मेरा उपहास न करो तभी मैं कहूंगी।
मन्दारिका—यह हँसी उड़ाने का अवसर नहीं है।
सुभद्रा—तो सुनो।
मन्दारिका—मैं सुन रही हूँ।
सुभद्रा—(कहने के अनुरूप होकर) कहने में मेरी जीभ लजा रही है।
मन्दारिका—तो उसे लिखकर ही दिखा दो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा—सहि, तह ।

मन्दारिका—कुदो दाणिं उवअरणाइ ?

सुभद्रा—हला, एक्कं असोअपल्लवं उवणेहि । जदो तहिं णिवडंत-वाहसलिलोल्लिएण इमिणा थणंगराअहरिचंदणरसेण णहग्गतूलिआ-धरिएण लिहिस्सं ।

मन्दारिका—सहि, सोहणाइ अणंगलेहोवअरणाइ । ता एसा आणेमि । (उत्थाय नाट्येन निकृत्योपनयति ।)

(सुभद्रा आदाय तथा विलिखति ।)

मन्दारिका—सहि देहि, वाचइस्सं ।

सुभद्रा—बाहेदि मं लज्जा । जाव तुण्हिक्का मणेण वाएहि ।

मन्दारिका—तह करिस्सं । (लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा) सहि, साहु साहु । गहीरमहुरा वाचोजुत्ती ।

सुभद्रा—पसंसा वि उवहासो मे पडिभासइ ।

मन्दारिका—एसा अहं ण पसंसिस्सं । सो एव्व परं पसंसेदु ।

सुभद्रा—अच्छा सखि, अब मैं वैसा ही करती हूँ ।

मन्दारिका—तो उसके (लेखन के) साधन कहाँ हैं ?

सुभद्रा—अशोक का एक पल्लव (पत्ता) ले आओ । उसी पर गिरते हुए मेरे अश्रु-जल से घुले हुए इस स्तनांगराग हरिचन्दन-रस से नखाग्ररूप तूलिका द्वारा पत्र-लेखन करूँगी ।

मन्दारिका—हे सखि, यही तो अनंग-लेख के लिये उत्तम उपकरण हैं । इसलिये मैं उसे ले आती हूँ । (अभिनय पूर्वक उठकर अशोक पत्र तोड़कर लाती है । उसे लेकर सुभद्रा उस पर पत्र लिखती है)

मन्दारिका—हे सखि, वह पत्र लाओ, मैं उसे पढूँगी ।

सुभद्रा—मुझे लज्जा बाधित कर रही है । अतः तुम इसे चुपचाप मन ही मन पढ़ो ।

मन्दारिका—अच्छा वैसा ही करूँगी । (पत्र-लेख लेकर उसे देखकर और मन ही मन पढ़कर) सखि, बहुत सुन्दर, गम्भीर और मधुर शब्दों का यह क्रम बहुत ही सुन्दर है ।

सुभद्रा— तुम्हारी प्रशंसा भी मुझे उपहास के समान लग रही है ।

मन्दारिका—यह लो, मैं प्रशंसा नहीं करती । तुम्हारा वही, तुम्हारी खूब प्रशंसा करता रहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं तेण त्रि जणेण एदं दक्खिदव्वं ?

मन्दारिका—अण्णहा कहं अणंगलेहो भवे ?

सुभद्रा—हला, कुदो मं लहूकरेसि ?

मन्दारिका—(लेखं विलोक्य) जह एदाइ अक्खराइ सुत्थिदाइ भविस्संति तह एअं करअलफंसासहं एत्थ एव्व असोअक्खंधे मुहुत्तअं पि समप्पिस्सं। (तथा कृत्वोपविशति।)

सुभद्रा—हला, कदमं खु सो भूमिं महाभाओ अलंकरेदि ?

मन्दारिका—जा वा का वा होदु णिवासभूमी। किं तेण ? तं पुण महाभाअं इह एव्व दक्खिस्ससि। जदो तुह दंसणादो पहुदि एसा तस्स विणोदभूमी।

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम पिअसहीवअणं समस्सासणमेत्तं ण हवे।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।)

राजा—

उद्भाव्य भावं क्षणसंनिपातात्प्रस्वेदरोमाञ्चितवेपथूनाम्।
स्पृष्ट्वा करो मे करमायताक्ष्यानाद्यापि रोमाञ्चमसौ जहाति ॥१॥

सुभद्रा—(लज्जासहित) तो क्या, उस व्यक्ति को भी यह पत्र-लेख (अनंग-लेख) दिखाना चाहिए ?

मन्दारिका—अन्यथा यह अनंगलेख कैसे होगा ?

सुभद्रा— हे सखि, मुझे तू हल्का क्यों बना रही है ?

मन्दारिका— (लेख देखकर) जबतक ये अक्षर स्थिर हो जायँ, (अर्थात् सूख जायँ) तब तक कुछ समय के लिये इस करतल से न छूने लायक इस लेख को इसी अशोक-वृक्ष की शाखा पर रख देती हूँ। (वैसा ही करके बैठ जाती है।)

सुभद्रा— हे सखि, वह महाभाग्य ! किस स्थान को सुशोभित कर रहा है ?

मन्दारिका—उसकी निवास भूमि कहीं भी हो, उससे क्या ? उस महाभाग्य को फिर तुम यहीं देखोगी, क्योंकि जब से उसकी दृष्टि तुम पर पड़ी है, उसकी मनोविनोद-भूमि यहीं बन गयी है।

सुभद्रा— (अपने मन में) प्रियसखी का वचन-मात्र भी क्या मेरे लिए आश्वासन हेतु पर्याप्त नहीं ? (इसके बाद राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)।

राजा— उस विशालाक्षी का हाथ छूकर मेरा यह हाथ, पसीना, रोमांच और कम्पन के साथ सात्विक-भाव को प्रकट कर अभी भी रोमांचित हो रहा है। (१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो।

(परिक्रामतः।)

राजा—

तस्याः करं सरोमाञ्चममुञ्चन्नेव तत्क्षणम्।
संक्रान्त इव रोमाञ्चो मम संस्पृशतः करम्॥ २॥

अथवा न साधु कृतमनेनापि हस्तेन। कुतः

तस्या गृहीत्वापि करं विमुञ्चन्नदक्षिणोयं मम दक्षिणोऽपि।
वामत्वमङ्गीकुरुते स हस्तो वामे विधौ कः खलु भो न वामः॥ ३॥

(पदान्तरे स्तिमितस्तिष्ठति।)

विदूषकः—(कतिचित्पदानि गत्वा परावृत्य) कहं ठिदो वअस्सो? (उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा) वअस्स, किं एदं। रोमंचिदसव्वंगो दरणिमीलंतलोयणो णीसहं चिट्ठसि।

राजा—सखे, आक्षिप्तोऽस्मि स्मृत्यन्तरेण। मम हि

विदूषक— इधर आइये प्रियमित्र, इधर आइये। (दोनों घूमते हैं)।

राजा— उस समय उसके रोमांचित हाथ को स्पर्श करते हुए मेरे हाथ को वह रोमांच आक्रान्त करके मानों अभी भी नहीं छोड़ रहा है। (२) अथवा, इस हाथ ने अच्छा नहीं किया। क्योंकि—

मेरे इस दाएँ हाथ ने उसके हाथ को पकड़ कर भी छोड़ दिया, अतः यह चतुर नहीं है। अर्थात् यह दायाँ होकर भी वामत्व (प्रतिकूलता) को स्वीकार करता है। भला ऐसा क्यों न हो? विधि के वाम होने पर कौन वाम नहीं हो जाता? (अगले पग पर ठहर जाता है)।

विदूषक— (कुछ कदम आगे बढ़कर और पुनः लौटकर) मित्र, क्यों रुक गए? (नजदीक जाकर और हाथ पकड़कर) मित्र, यह क्या? तुम्हारे सभी अंग रोमांचित हो रहे हैं, आँखें अधखुली हैं और तुम निःसहाय जैसे हो गये हो।

राजा—हे मित्र, किसी अन्य स्मृति ने मुझे आकृष्ट कर लिया था। मेरा तो आनन्ददायक मूर्छा के साथ प्रिया के स्पर्श-सुख का विस्तार, इस समय तेरे स्मृतिपथ पर आने से, वह मेरे अन्तःकरण को पूर्णतः मोहित कर रहा है। वह निश्चय ही कोई अपूर्व-विष का ही प्रवेग रहा होगा। (४) (सोचकर) अजी मित्र! विधुर-मन को आनन्दित करने के लिये, जिसमें मेरी प्रिया ने चन्दनरस के समान शीतल-स्पर्श प्रदान किया था, उस हरिचन्दन-लता-भवन में चलें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संमोहनोऽन्तःकरणस्य विष्वक् स कोऽप्यपूर्वो विषवेग एव।
स्मृतिं गतः संप्रति रम्यमूर्च्छासिखः प्रियास्पर्शसुखप्रसर्पः ॥ ४॥
(विचिन्त्य) भो वयस्य एहि।

हरिचन्दनलताभवने विधुरं मनो विनोदयितुम्।
यत्र प्रियया दत्तश्चन्दनरसशीतलः स्पर्शः ॥ ५॥

विदूषकः—तेण हि इदो इदो।

(परिक्रामतः।)

राजा—(निर्वर्ण्य सोद्वेगम्)

वेदीवनं तदेवेदं नेत्रैकान्तविलोभनम्।
जीर्णारण्यमिवारम्यं दृश्यते प्रियया विना ॥ ६॥

विदूषकः—(अग्रतो निर्दिश्य) वअस्स, दक्ख दाव णिरंतरुप्फुल्लस्स ससिरिअदं इमस्स रत्तासोअपाअवस्स।

राजा—(निर्वर्ण्य)

रक्ताशोकस्तवका निरन्तरोच्छ्वसितसुमनसो भान्ति।
इषुधय इव कुसुमेषोः शरपूर्णाः सज्जिता मधुना ॥ ७॥

(निरूप्य) वयस्य स एवायं प्रियाचरणोत्तंसनमहार्हो रक्ताशोकः।

विदूषकः—(निरूप्य) सो एव्व।

राजा—वयस्य, प्रायेणात्रागन्तव्यमुद्वाहसंपत्तये प्रियया। एहि कंचित् कालमिहैवात्मानं विनोदयावः।

विदूषक—तो इधर से आइये, इधर से। (दोनों आगे बढ़ते हैं)।

राजा— (उद्वेग सहित देखकर) नेत्रों को अत्यन्त आकर्षित करने वाला यह वही वेदीवन है, जो इस समय प्रिया के बिना पुराने जंगल के समान असुन्दर दिखलाई पड़ रहा है। (६)

विदूषक—(आगे की ओर निर्देश करके) हे मित्र, तब तक सतत् विकसित इस रक्ताशोक-वृक्ष की सुन्दरता को तो देखो।

राजा— (देखकर) सदा विकसित फूल वाले रक्ताशोक के गुच्छे ऐसे सुन्दर लग रहे हैं, मानों वसन्त ऋतु ने कामदेव के तरकशों को बाणों से सज्जित कर रखा हो। (७)

(ठीक से निहार कर), मित्र, यह वही प्रियाचरण के उत्तंसन से बहुमान वाला रक्ताशोक (लाल अशोक) है।

विदूषक—(देखकर) हाँ, वही है।

राजा—मित्र, प्रायः विवाहाभिनय-क्रिया के लिये प्रिया को यहाँ आना चाहिए। आओ, कुछ समय तक यहीं अपना मन बहलावें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—जं वअस्सो भणादि। (परिक्रम्य शाखान्तरे विलोक्य) वअस्स, दक्ख दक्ख। एसा खु सा इदो एव्व वट्टइ अत्तहोदी।

राजा—(सहर्षम्) यावदनेन तमालपादपेनान्तरितः स्वैरालापमस्याः शृणोमि। (तथा दृष्ट्वा) हन्त किमपि दुरन्तचिन्तया दूयमानया भवितव्यमनया। अस्या हि

आपाण्डुरा भाति कपोललेखा विनिष्पतद्वाष्पविभिन्नवर्णा।
अजस्रहस्तार्पणबद्धरागा प्रभातदीनेव शशाङ्कलेखा॥ ८॥

सुभद्रा—(अन्तःसंतापमभिनयन्ती मन्दारिकाया अग्रहस्तमुरसि समर्प्य) सहि, दिढं खु तवइ मे हिअअं।

मन्दारिका—हु असिसिरदा फंसस्स।

राजा—

तप्तस्य गाढं हृदयस्य मन्ये वाष्पाम्बुपूरः शिशिरोपचारः।
अयत्नलभ्यः पुनरायतोऽस्या निःश्वास एव व्यजनानिलश्च॥ ९॥

मन्दारिका—कहं णिरग्गलं णिहणइ एअं वम्महहदओ?

विदूषक—मित्र, जैसा आप कहें, (घूमकर और शाखाओं के मध्य में देखकर) मित्र, देखो, देखो, वह आदरणीया तो इधर ही बढ़ती आ रही है।

राजा—(हर्षित होकर) तव तक मैं इस तमालवृक्ष की आड़ में खड़ा होकर इसकी स्वतन्त्र बातचीत सुन लूं। (वैसा ही देखकर) अहा, इसके तो किसी भारी चिन्ता से दुःखी होने की संभावना है। इसकी तो—

"गिरते हुए आँसुओं से जिसका रंग बदल गया है और निरन्तर हाथों को रखने से जिसकी लालिमा समाप्त हो गयी है, ऐसा कपोलस्थल उसी प्रकार पूर्णतः पीले रंग का दिखलाई पड़ रहा है, जिस प्रकार चन्द्रकला प्रभात काल में दीन-हीन (सुबह में मलिन) हो जाती है। (८)

सुभद्रा—(आन्तरिक सन्ताप का अभिनय करती हुई मन्दारिका के हस्ताग्र को अपने हृदय पर रख कर) हे सखि, मेरा हृदय अत्यन्त संतप्त हो रहा है।

मन्दारिका—आश्चर्य है, इसके स्पर्श मात्र में भी उष्णता है।

राजा—मैं समझता हूँ कि इसके अत्यन्त तप्त हृदय के लिये अश्रुजल की धारा ही सुलभ शिशिरोपचार है और लम्बी साँस ही पंखे की हवा है। (९)

मन्दारिका—हत्यारा कामदेव क्यों इसे निर्बाध रूप से मार रहा है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—(निःश्वस्य) हन्त, निर्दयमेनां विध्यति मन्मथः। हंहो दुर्विदग्धधानुष्क कुसुमधन्वन् अनभिज्ञोऽसि यथालक्ष्यमुपक्रमितुम्। तव हि

व्यधायि शस्त्रं कुसुमं पुरस्सरा वसन्तमन्दानिलचन्द्रचन्द्रिकाः।
स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमला इति त्वया तु गाढं किमसौ निहन्यते ॥ १० ॥

मन्दारिका—हुँ सिसिरोवकरणं वि ण दाणि संणिहिदं।

राजा—

स्तनांशुकं बाष्पजलावसिक्तं जलार्द्रवासः स्वयमेव क्लृप्तम्।
न्यस्तो मुहुर्वक्षसि चाग्रहस्तो धत्ते प्रवालार्पणकृत्यमस्याः ॥११॥

मन्दारिका—कहं पडिक्खणं विवड्ढतो ण दाव उवसम्मइ इमाए संदावो?

राजा—

नयनसलिलस्नेहैः स्थूलैश्च निःश्वसितानिलै-
र्भृशमशिशिरैर्भूयः सोष्मस्तनद्वयघट्टितैः।
कुवलयदृशो नूनं संधुक्षितः कुसुमोपमं
हृदयमदयः संतापाग्निर्धुनोति न शाम्यति ॥१२॥

मन्दारिका—(सखेदम्) किं एत्थ करीअदु?

राजा—(लम्बी साँस खींचकर) हाय, कामदेव इसे निर्दयता पूर्वक बेध रहा है। हाय रे, जड़-बुद्धि धनुर्धारी कामदेव, उचित लक्ष्य पर आक्रमण करने में तू अनभिज्ञ ही है। तुम्हारा तो—

फूल ही शस्त्र है। वसन्त-ऋतु की मन्द हवा, चन्द्र-किरणें तथा स्त्रियाँ कोमल-प्रकृति (स्वभाव) की हैं, फिर भी। तुम इसे इतनी कठोरता से क्यों मार रहे हो? (१०)

मन्दारिका—हाय, इस समय शिशिरोपकरण भी पास में नहीं है।

राजा—आँसुओं से भींगा हुआ स्तनवस्त्र (कंचुकी) ही खुद जलार्द्रवास (भीगे वस्त्र से निर्मित पट्टी) के समान है और इसके वक्षस्थल पर रखा गया हस्ताग्र ही पल्लवसन्निधान का काम कर रहा है। (११)

मन्दारिका—प्रतिक्षण इसका बढ़ता हुआ सन्ताप शान्त क्यों नहीं हो रहा है?

राजा—"आँसू रूपी तेलों से, लम्बी-लम्बी श्वासों के घर्षण से ऊष्मता-युक्त दोनों स्तनों से उत्पन्न गर्मी के कारण अत्यन्त प्रज्ज्वलित निष्ठुर संतापाग्नि, इस कमलनयनी के पुष्पसदृश हृदय को जला रही है, और वह शान्त नहीं हो रही है। (१२)

मन्दारिका—(खेद के साथ) तो इसमें क्या किया जाय?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—अहो अतिरिक्तः परितापः । अद्य हि—

अन्तस्तापक्वाथादुद्वान्तैरिव निरन्तरं वाष्पैः ।
अङ्गे पुनः कृशाङ्ग्याः सन्तप्ते निपतितैः शुष्कम् ॥१३॥

वयस्य, न युक्तमतःपरमिह स्थातुम् ।

मन्दारिका—(आत्मगतम्) दिढं खु एसा संतप्पेदि । ता एवं दाव । (प्रकाशम्) पिअसहि, सुणाहि दाव किंचि ।

विदूषकः—किं एसा भणिदुं इच्छदि त्ति जाणिअ पुणो उवसप्पम्ह ।

राजा—तथास्तु ।

सुभद्रा—एसा सुणामि ।

मन्दारिका—जदा एव्व इमस्स बालासोअस्स पिअसहीए दिण्णं चरण-संतालणदोहलं तदा एव्व तेण हि महाभाएण तुह दिण्णो दंसणूसवो । णवरिअ जह जह इमिगा दंसिदो मउलुब्भेदो तह तह तेण वि दंसिदो अणुराओ । तदो इमिणा एव्व अणुऊलेण णिमित्तेण समत्थिदं मए जदा एव्व इमस्स उव्वाहविही करीअदि तदो वरं ण तस्स समाअमो विलंवेदि त्ति ।

राजा—ओह, इसे अत्यधिक संताप हो रहा है । आज तो आन्तरिक ताप के उबाल से निरन्तर उद्वमित की तरह वाष्प (आँसू) इस कृशांगी के संतप्त अंग पर गिरते ही सूख गये हैं । (१३)

हे मित्र ! अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं ।

मन्दारिका—(मन में) यह बहुत ही संतप्त हो रही है । अच्छा ऐसा हो । (सुनाकर) हे प्रियसखि, कुछ सुनो तो सही !

विदूषक—यह क्या कहना चाहती है ? यह जानकर हम दोनों चलें ।

राजा—ठीक है । (ऐसा ही हो) ।

सुभद्रा—यह मैं सुन रही हूँ ।

मन्दारिका—जिस समय प्रियसखि तुमने इस बाल-अशोक को पादप्रहाररूप दोहद प्रदान किया था, उसी समय उस महाभाग्य ने तुम्हें दर्शन रूपी उत्सव प्रदान किया था और बाद में जैसे-जैसे इसने कलियों का प्रादुर्भाव दिखलाया, वैसे वैसे उन्होंने भी अपना अनुराग दिखलाया । इस प्रकार इसी के अनुकूल होने से ही ऐसा हुआ है, यह मैं स्वीकार करती हूँ । जब इसकी विवाह-विधि सम्पन्न की जायगी, उसके बाद का समागम बिलम्बित नहीं होगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा—पिअसहि, जह किर तुए भणिदं तह एव्व इदो पुव्वं अणुभूदं विअ। परंतु पिअसही जाणादि।

मन्दारिका—पिअसहि, जो दाव एत्तिअस्स संवादइत्तओ ण सो परं पि विसंवादइस्सदि विही। (सुभद्राया अश्रूणि प्रमार्जयन्ती) ता पिअसहि, जह एअस्स उव्वाहविही सोहणं एव्व णिव्वत्तिओ भविस्सदि तह तुमं वि पसण्ण-चित्ता अमिलाणमुही होहि। जेण सो एव्व सुणिव्वत्तिओ तुह उव्वाहसंपत्ति-णाडिआए पुव्वरंगविही भविस्सदि।

विदूषकः—सुट्ठु कअं विलोहणं।

राजा—स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्।

सुभद्रा—सहि, तेण हि एसा दाणिं सुत्थिद म्हि।

राजा—वयस्य, एह्युपसर्पावः।

मन्दारिका—एसा आअदा एव्व पदाणसलिलग्घकुसुमहत्था पिअसही मंजरिआ।

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एसा अ परा तुज्झ अणहिण्णा आअ-च्छइ। ता जाव एसा अण्णदो गच्छइ ताव इह एव्व ठादव्वं।

सुभद्रा—हे प्रियसखि, जैसा तुमने कहा, इसके पूर्व मैंने भी लगभग इसी प्रकार अनुभव किया है। लेकिन प्रियसखि जानती है।

मन्दारिका—हे प्रियसखि, जो भाग्य इस प्रकार अनुकूल कार्य करने वाला है, वह आगे भी निराश नहीं करेगा।
(सुभद्रा के आँसुओं को पोंछती हुई) इसलिये हे प्रियसखि, जिस तरह इसकी विवाह-विधि ठीक से सम्पन्न हो गयी, उसी तरह तुम भी प्रसन्नचित्त और विकसित मुख वाली हो जाओ, जिससे कि वह (विवाह) सुसम्पन्न होकर तुम्हारी विवाह-सम्पत्ति रूप नाटिका के लिये पूर्व रंग-विधि बन सके।

विदूषक—अच्छा प्रलोभन दिया है।

राजा—कामिनियों के लिये (उनकी) सखियाँ समीचीन संरक्षक होती हैं।

सुभद्रा—हे सखि, इसीलिये तो मैं इस समय यहाँ उपस्थित हूँ।

राजा—मित्र, आओ, हम दोनों इसके समीप चलें।

मन्दारिका—यह प्रियसखी, मंजरिका हाथ में दान-जल और अर्घ्य-फूल लेकर यहाँ आ ही गयी है।

विदूषक—हे मित्र, यह तुम्हारी दूसरी अपरिचिता आ रही है।
इसलिये जबतक यह अन्यत्र जाती है, तब तक हमें यहीं ठहरना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—युक्तमाह भवान् ।

(प्रविश्य यथानिर्दिष्टा)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, एदाइ णलिणीपत्तधरिआइ पदाणसलिलाइ अग्घकुसुमाइं च ।

सुभद्रा—सहि, तेण हि णिव्वत्तेमो दाणि इमाणं उव्वाहविहिं ।

चेटी—भट्टिदारिए, काए दिज्जउ पदाणसलिलं ।

सुभद्रा—सहि मंदारिए, णं तुह सुदा मालईलआ । ता तुमं चेअ पदाणसलिलं देहि ।

मन्दारिका—तह करिस्सं । (उत्थाय प्रदानसलिलं गृहीत्वा सविलासस्मितम्) पिअसहि, दक्ख दक्ख । सअं चेअ एसा इमस्स खंधे ओलग्गा ।

सुभद्रा—(आत्मगतम्) गाढो उवक्खेओ (सस्मितं पश्यति ।)

राजा—(निर्वर्ण्य)

अलसस्मितं सुदत्यास्त्रपां प्रमोदं दृढं च परितापम् ।
सूचयति म्लायन्त्या विकसितमिव कुन्दलतिकायाः ॥ १४ ॥

राजा—आपने ठीक कहा ।

(निर्देशानुसार प्रवेश करके)

मंजरिका—हे भर्तृदारिके, कमलिनीपत्र पर रखा गया यह दान-जल और अर्घ्य-पुष्प हैं ।

सुभद्रा—हे सखि, इसीलिये इसी समय हम सब इन दोनों की विवाह-विधि सम्पन्न करें ।

चेटी—हे स्वामिनि, दानजल किसके द्वारा दिया जाय ?

सुभद्रा—हे सखि मन्दारिके, मालतीलता तो तुम्हारी ही बेटी है, इसलिये तुम्हीं उसे दान-जल प्रदान करो ।

मन्दारिका—अच्छा करती हूँ । (विलास के साथ मुस्कुराती हुई उठ कर और दान-जल हाथ में लेकर) हे प्रियसखि, देखो, देखो, यह मालतीलता स्वयं ही इस अशोक वृक्ष के कन्धे से लग गयी है ।

सुभद्रा—(मन ही मन) गाढ़-आलिंगन है । (मुस्कुराती हुई देखती है) ।

राजा—(देखकर)

म्लान होती हुई कुन्दलतिका के विकसित पुष्प के समान ही इस सुन्दर दंतपंक्ति वाली नायिका की आलस्ययुक्त मुस्कुराहट लज्जा, और प्रमोद उसके अत्यधिक परिताप (वेदना) को ही सूचित कर रहे हैं । (१४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—अहो पत्थिवराअ, एसा मे पिअसही तुज्झ दिण्णा। (सलिलधारां पातयति ।)

राजा—अहो अभिजातश्लेषोपन्यासः। एष शिरसा प्रतिगृह्णामि।

चेटी—सोहणं सोहणं।

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो वाआकोसलं।

मन्दारिका—हंहो वालासोअ, जह एसा ण किलम्मइ, जह अ लअंतरेहिं ण भेदं णीअदि तह एअं संभावेहि।

चेटी—सुट्ठु भणिअं।

सुभद्रा—सहि, सोहणा अब्भत्थणा।

राजा—अभिरूपोऽयमन्यापदेशः।

मन्दारिका—एसा दाणि जामादुणो अग्घं उवहरेमि। (उपहरणं नाटयति।)

राजा—सुसंगतमेतद् वधूवरम्। तथा हि

अशोकः पुष्पितो भाति मालत्या स्मेरपुष्पया।
व्यतिकीर्ण इवाम्भोदः सान्ध्यो नक्षत्रमालया॥ १५॥

मन्दारिका—हे पार्थिवराज, यह मेरी प्रियसखि तुम्हें प्रदान की गयी।

राजा—अहा, बड़े सुन्दर श्लेष (अलंकार) का प्रयोग है। शिर-माथे से (सम्पूर्णतः) इसे स्वीकार करता हूँ।

चेटी—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

सुभद्रा—(मन ही मन) अहो, कितना सुन्दर वाक्-चातुर्य है।

मन्दारिका—अजी बाल-अशोक, यह (लता) क्लान्त न हो और दूसरी लताओं के द्वारा भेद-भाव को प्राप्त न हो। अतः इसे स्वीकार करो।

चेटी—सुन्दर कहा।

सुभद्रा—हे सखि, तुम्हारी यह प्रार्थना उचित ही है।

राजा—यह व्याजोक्ति उत्तम है।

मन्दारिका—इस समय दामाद के लिए यह अर्घ्य प्रदान करती हूँ। (देने का अभिनय करती है)।

राजा—ये वर और वधू अत्यन्त योग्य हैं। जैसा कि

पुष्परूपी मुस्कराहट से युक्त मालती के साथ पुष्पित यह अशोक-वृक्ष उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार नक्षत्र-माला के साथ सायंकालिक मेघ सुशोभित होता है (१५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—वअस्स, एसो खु मे अवसरो, जाव उवसप्पामि। (उपसृत्य) सोत्थि होदीए। एसो खु दुग्गओ को वि वम्हणो गंगातीरे णिअमं करेमि। अज्ज उण एअस्सिं तुम्हाणं ऊसवे सोत्थिवाअणं पडिगण्हिदुं आअदो म्हि।

सुभद्रा—(सहर्षं परितो विलोक्य। सविषादमात्मगतम्) कहं एसो असहाओ आअदो ? (मन्दारिकामीक्षते)

मन्दारिका—(अपवार्य) पिअसहि, तेण वि आअदेण होदव्वं। मंजरिअं पुण दट्ठूण ण पविट्ठं ति तक्केमि।

सुभद्रा—(अपवार्य) तह होदव्वं।

मन्दारिका मञ्जरिका च—अय्य, किं तुए इच्छीअदि।

विदूषकः—किं अण्णं। आअलं भोअणं।

उभे—(सस्मितम्) अय्य, तह संपादइस्सम्ह।

विदूषकः—ण विस्ससेमि। करेहि दाव मम हत्थे सलिलप्पदाणं।

विदूषक—हे मित्र, अब मेरा अवसर है, मैं प्रवेश करता हूँ। (समीप जाकर) आपका कल्याण हो, यह मैं दुर्गति को प्राप्त एक ब्राह्मण हूँ और गंगा तट पर साधना करता हूं। पुनः आज मैं आप लोगों के इस उत्सव में आशीर्वादीय दक्षिणा ग्रहण करने आया हूँ।

सुभद्रा—(प्रसन्नतापूर्वक चारों ओर देखकर और पुनः कष्ट के साथ मन ही मन) यह असहाय यहाँ कैसे आ गया? (मन्दारिका की ओर देखती है।)

मन्दारिका—(अपवारित तरीके से केवल सुभद्रा को सुना कर) हे प्रियसखि, उनका भी आगमन होना चाहिए। (उन्होंने) मंजरिका को देखकर ही प्रवेश नहीं किया होगा, ऐसा मैं सोचती हूँ।

सुभद्रा—(केवल मन्दारिका को सुना कर) ऐसा भी हो सकता है।

मन्दारिका और मंजरिका—हे आर्य, तुम क्या चाहते हो ?

विदूषक—दूसरा क्या ? कण्ठ तक भोजन।

दोनों—(मुस्कुराती हुई) हे आर्य, हम लोग वैसा ही करेंगी।

विदूषक—मैं विश्वास नहीं करता। मेरे हाथ में जल प्रदान करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—तेण हि तह करेमि। (सलिलप्रदानं नाटयति।) अय्य, पूरइस्सं तुह समीहिदं।

(सर्वे सस्मितं पश्यन्ति।)

सुभद्रा—सहि मंजरिए, तुमं दाव गदुअ णिव्वुत्तं बालासोअमालईलआणं उव्वाहकल्लाणं ति भणिअ, तरंगिआए सह आअच्छंतीओ सहीओ णिव्वट्टिअ पुण्णपत्तं आहरसु।

चेटी—तह। (इति निष्कान्ता।)

(प्रविश्य)

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे,

एषा तव प्रियसखी स्वयमेव दत्ता
यस्मै त्वया ननु स एष परं कृतार्थः।
अभ्यर्थनं तु तव तत् पुनरुक्तमासी-
दस्यै यदित्थममुनाऽपि च दत्त आत्मा ॥ १६ ॥

(मन्दारिका-सस्मितं सुभद्रामीक्षते। सुभद्रा च सलज्जं मुखं नमयति।)

मन्दारिका—अच्छा, वैसा ही करती हूँ। (सलिल देने का अभिनय करती हैं) हे आर्य, मैं आपकी इच्छा पूरी करूंगी। (सभी मुस्कुराहट के साथ देखते हैं)

सुभद्रा—हे सखि मंजरिके, तब तक तुम जाकर "बाल-अशोक और मालती-लता का विवाहोत्सव सम्पन्न हो गया", ऐसा कह कर तरंगिका के साथ आती हुई सखियों को लौटा कर एक भरा हुआ पात्र लाओ।

चेटी—अच्छा। (इस प्रकार कहकर निकल जाती है।) (प्रवेश करके)

राजा—(मन्दारिका के प्रति) हे भद्रे,

यह तुम्हारी प्रियसखी तुम्हारे द्वारा स्वयं ही जिस व्यक्ति को समर्पित की गई है, यह वही, कृतार्थ पुरुष तुम्हारे समक्ष उपस्थित है। पुनः जो तुम्हारी अभ्यर्थना है, वह पुनरुक्तिमात्र है, क्योंकि इस व्यक्ति के द्वारा भी तो तुम्हारी इसी सखी के लिये अपनी आत्मा समर्पित कर दी गयी है ॥ १६ ॥ (मन्दारिका मुस्कुराती हुई सुभद्रा को देखती है और सुभद्रा भी लज्जा के साथ मुँह नीचे कर लेती है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—

इयं परिम्लानमृणालकोमला तवाङ्गयष्टिर्भृशमद्य ताम्यति ।
तदेहि लज्जाव्यसनं विमुञ्चती ममावलम्बस्व करं नितम्बिनि ॥१७॥

(हस्ते गृह्णाति ।)

(सुभद्रा सलज्जं मन्दारिकामवलम्बते ।)

मन्दारिका—(सस्मितम्) सो एव्व दाणि अवलंबेदव्वो ।

सुभद्रा—(अपवार्य) सहि, अत्थि वा इमस्स पराहीणस्स जणस्स एत्तिअं वेलं एत्थ ठादुं पहुत्तणं ?

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे, किं ते सखी वदति ?

मन्दारिआ—अत्थि वा इमस्स पराहोणस्स जणस्स एत्तिअं वेलं एत्थ ठादुं पहुत्तणं ति ।

राजा—न खलु गृहीतो वाचिकस्यार्थः ।

विदूषकः—णं देवी-आअमणादो भाइदव्वं ।

राजा—कथमीर्ष्यालुस्ते प्रियसखी ?

(ततः प्रविशति देवी चेटी च ।)

राजा—हे नितम्बिनि ! कुम्हलाये हुए मृणाल के समान कोमल यह तुम्हारी अंगयष्टि आज अत्यन्त तप्त हो रही है । अतः लज्जारूप व्यसन को छोड़कर मेरे समीप आओ और मेरे हाथ का अवलम्बन लो ॥१७॥

(हाथ पकड़ लेता है, सुभद्रा लज्जा सहित मन्दारिका को पकड़ती है ।

मन्दारिका—(मुस्कुराती हुई) इस समय यही अवलम्बन को योग्य है ।

सुभद्रा—(हाथ छुड़ाकर) हे सखि, क्या इस पराधीन व्यक्ति को इतने समय तक यहाँ ठहरने का अधिकार है ?

राजा—(मन्दारिका के प्रति) हे भद्रे, तुम्हारी सखी क्या कह रही है ?

मन्दारिका—क्या इस पराधीन व्यक्ति को इतने समय तक यहाँ ठहरने का अधिकार है ?

राजा—मैं इस कथन का अर्थ समझा नहीं ।

विदूषक—देवी के आगमन से डरना चाहिए ।

राजा—तुम्हारी प्रिय सखी इतनी ईर्ष्यालु क्यों है ?

(इसके बाद देवी और चेटी का प्रवेश होता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटी—भट्टिणि, जो दाव असाहारणं तुवंमि अणुराअं दंसेइ, सो दे खमं चेअ अरिहेदि भट्टा। अहवा सव्वदो णिवडंति पुरिसाणं दिट्ठीओ। विसेसदो उण राआणं। ता तं चेअ इत्थिआए वल्लहत्तणं जा अवरद्धे अ पसादं दंसेइ। ता ण जुत्तं तत्तिएण तह कोविदुं। अदिकोवणाए वल्लहा वि उव्विज्जंति पुरिसा। सुदं च मए दे कोवादो दिढं विसण्णो भट्टेत्ति। ता एहि, सअं उवसप्पम्ह भट्टिणं। जदो कुविदाए वल्लहाए सअं वि उवसप्पणं चेअ पसादो।

देवी—परवदी खु अहं पिअसहीए। तह करिज्जउ।

चेटी—सुदं मए वेदीवणं गदो भट्टो त्ति। ता इदो इदो भट्टिणी।

(परिक्रामतः।)

चेटी—पविट्ठ म्ह वेदीवणं वि अत्तहोदि।

विदूषकः—अहं पि एदं जाणामि।

चेटी—(कर्णं दत्त्वा) भट्टिणि, इमस्स एव्व असोअपाअवस्स पादे अय्यकच्चाअणो मंतिअदि। ता इह एव्व भट्टिणा वि होदव्वं।

चेटी—हे स्वामिनि! जो स्वामी तुममें असाधारण प्रेम दर्शाता है, वह तुम्हारे लिये क्षमा के योग्य है। अथवा, पुरुषों की दृष्टि सब ओर घूमती ही रहती हैं, पुनः, विशेषकर राजाओं की। इसलिये वही महिला के लिये वल्लभत्व (प्रियत्व) है, जो अपराध होने पर भी प्रसन्नता दिखलाती है। अतः उतना क्रोधित होना अच्छा नहीं है। अति क्रोध से प्रिय पुरुष भी दुःखी हो जाते हैं। अतः मैंने सुना है कि तुम्हारे कोप से स्वामी अत्यन्त दुःखी हैं। अतः आओ स्वयं हम दोनों उनके पास चलें। क्योंकि कुपित प्रिया का स्वयं ही उनके समीप में पहुँच जाना भी प्रसन्नता का ही द्योतक होता है।

देवी—मैं तो प्रियसखी के अधीन हूँ, वैसा ही किया जाय।

चेटी—मैं सुना है कि भर्ता वेदीवन को गये हैं। अतः इधर से आइये, स्वामिनि। (दोनों आगे बढ़ती हैं)

चेटी—हे आदरणीए, हम दोनों ही वेदीवन में प्रवेश करें।

विदूषक—मैं भी इसे जानता हूँ।

चेटी—(कान लगाकर) हे स्वामिनि, इसी अशोक-वृक्ष के नीचे आर्य कात्यायन मन्त्रणा कर रहे हैं। अतः स्वामी को भी यहीं होना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवी— हला, इमिणा बउलपाअवेण अंतरिआओ पेक्खम्ह (तथा दृष्ट्वा सकोपम् ।) अइभूमिं गओ इमस्स अविणओ ।

विदूषकः—णं भणामि । अहं वि एअं जाणामि तुवम्मि चेअ असाहारणो अत्तहोदो अणुराओ । देवीए उण दक्खिण्णमेत्तं ति ।

चेटी—(सकोपम्) अम्मो दुट्ठदा बम्हबंधुणो ।

देवी—जाणादि खु सो जहत्थं ।

(चेट्या सह ससंरम्भमुपसर्पति । सर्वे दृष्ट्वा संभ्रान्ताः ।)

(राजा देवीं विलोक्य सभयं हस्तं शिथिलयति ।)

विदूषकः—आ कहं अआलसंहारो ।

(सुभद्रा सासूयं हस्तमाक्षिप्यान्यतो गच्छति ।)

मन्दारिका—पिअसहि, इदो गदुअ हरिचंदणलआघरए सहीअणं पडिवालेम्ह ।

(उभे परिक्रम्य हरिचन्दनलतागृहं प्रविश्योपविशतः ।)

देवी—हे सखि, इसी वकुल वृक्ष की ओट से हम दोनों देखें । (उसी प्रकार देखकर, क्रोध पूर्वक) इसकी उद्दण्डता तो अब सीमा पार कर रही है ।

विदूषक—मैं तो कह रहा हूँ कि मुझे भी ज्ञात है कि आप में श्रीमान् का अनुराग असाधारण है, फिर देवी में तो मात्र उदारता चाहिए ।

चेटी—(क्रोध के साथ) आश्चर्य है, इस ब्रह्मबन्धु (विदूषक) की दुष्टता के लिये ।

देवी—निश्चय ही यह यथार्थ को जानता है ।

(चेटी के साथ उग्रतापूर्वक नजदीक जाती है, सभी देखकर घबड़ा जाते हैं ।)

(राजा देवी को देखकर भयभीत होकर हाथ शिथिल कर देता है ।)

विदूषक—हाय, असमय में ही यह संहार कैसे हो गया ?

(सुभद्रा ईर्ष्या के साथ हाथ खींच कर दूसरी ओर चली जाती है ।

मन्दारिका—हे प्रिय सखि, यहाँ से चलकर हरिचन्दन-लता-गृह में सखीजनों की हम दोनों प्रतीक्षा करें । (दोनों घूमती हुई हरिचन्दन-लता-गृह में प्रवेश करके बैठती हैं) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवी—अय्यउत्त, दिट्ठं जं पेक्खिदव्वं । इअं पुण दाणि मह अब्भत्थणा । मा दाव तुमं असच्चसंवादेहि अ विलोभअंतो मं विणोदपत्तं करेहि ।

राजा—प्रिये विलातराजपुत्रि,

का नाम संप्रति मम प्रतिपत्तिरत्र
प्रत्यक्षमेव तव योऽस्मि कृतापराधः ।
भूयोऽनुभूतमनुपात्तविलोभनं ते
दाक्षिण्यमेव शरणं मम शिष्टमास्ते ॥१८॥

देवी—किं ति विवरीअं भणिज्जइ ? एसो खु तुह पिअवअस्सो जाणाइ मइ दाव तुज्झ दक्खिणणं ति ।

(विदूषकः सभयं राज्ञः पृष्ठतो भवति ।)

देवी—अय्यउत्त, परमत्थदो तुह हिअअं अजाणंतीए जं जं मए अदिक्कंतं तं तं सव्वं दक्खिणत्तणेण तुए खंतव्वं । एसो वेलादोए पच्छिमो पणामो ।

(प्रणम्य सेर्ष्यं गन्तुमिच्छति ।)

देवी—हे आर्य पुत्र, जो देखना चाहिए था, वही मैंने देख लिया है । इस समय पुनः मेरी यही प्रार्थना है कि अब तुम असत्य वचनों के द्वारा मुझे विलुब्ध करते हुए विनोद का पात्र मत बनाओ ।

राजा—हे प्रिये, विलातराज-पुत्रि,

जब तुम्हारे सामने ही मैं अपराधी सिद्ध हो चुका हूँ, तब अब मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास कैसा ? फिर भी सदा से अनुभूत और वंचनाहीन तुम्हारी उदारता ही मेरे लिए शरण है । (१८)

देवी—ऐसा विपरीत क्यों कहा जा रहा है ? यह तुम्हारा प्रिय निश्चित रूप से जानता है कि मुझ पर ही आपका दाक्षिण्य है । (विदूषक भयभीत होकर राजा के पीछे खड़ा हो जाता है)

(ईर्ष्या पूर्वक प्रणाम करके जाना चाहती है ।)

देवी—हे आर्यपुत्र, सचमुच ही आपके हृदय को जाने बिना मैंने जिन-जिन सीमाओं का अतिक्रमण रूप अपराध किया है, उन-उन सभा को आप अपनी उदारता से मुझे क्षमा कर दें और तत्पश्चात् वैलाती का यह प्रणाम स्वीकार करें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—सुन्दरि, कोऽयं प्रत्युत प्रणामः ? (अग्रतो भूत्वा) देवि,

स्प्रष्टुमद्य चरणौ बिभेमि ते नूतनाविनयजातसाध्वसः।
एष केवलमहं तवाग्रतस्ताडयामि शिरसा महीतलम् ॥ १९ ॥

(प्रणमति ।)

देवी—अय्यउत्त, जेण तुए फंसो वि मे परिहरिज्जइ ण दाव तुमं फंसिदुं खमामि । ता सअं चेअ उट्ठेहि । एसा दाणि अहं गच्छामि ।

(चेट्या सह ससंरम्भं निष्क्रान्ता ।)

विदूषकः—वअस्स, किं आआसे पणमीअदि ।

राजा—(उत्थाय) कथमप्रसन्नैव गता ।

विदूषकः—अकिदण्णअ, एसो खु देवीए सुमहंतो पसादो जं सजीविदा मुक्क म्ह ।

राजा—कथमतिभूमिं गतो मन्युर्मानिन्याः । तथा हि—

न्यस्यन्त्या गमने पदं मम मुखात् प्रत्याहरन्त्या दृशौ
निःश्वासस्खलिताक्षराणि च वचांस्यन्तर्निगृह्य क्षणम् ।
मूर्ध्ना किंचिदिवानतेन निभृतं संदर्शितः सुभ्रुवा
सोत्कर्षं प्रणयस्थितिं प्रकटयन्नीर्ष्याप्रणामक्रमः ॥ २० ॥

राजा—क्या विपरीत प्रणाम है ? (आगे होकर) हे देवि,

नये अपराध से उत्पन्न भयवाला मैं, इस समय तुम्हारे चरणों को छूने में डर रहा हूँ । अतः यह मैं केवल तुम्हारे आगे की भूमि को अपने शिर से ताड़ित कर रहा हूं । (१९) (प्रणाम करता है) ।

देवी—हे आर्यपुत्र, यदि तुम मेरा स्पर्श भी त्याग रहे हो, तो मैं भी तुम्हें छूने में समर्थ नहीं हूं । अतः स्वयं ही उठ जाओ । मैं अब जा रही हूँ । (चेटी के साथ घबरायी हुई निकल जाती है ।)

विदूषक—मित्र, क्या आकाश में प्रणाम कर रहे हो ?

राजा—क्या वह नाराज होकर चली गयी ?

विदूषक—अरे कृतघ्न, यह देवी की बहुत बड़ी कृपा है कि हम दोनों जीवित ही मुक्त हो गये ।

राजा—क्या मानिनी का रोष बहुत अधिक बढ़ गया है ? क्योंकि—

मेरे सामने से गमन करने हेतु पैरों को ठुमकाती हुई, दृष्टि को समेटती हुई, दीर्घ निःश्वास के कारण जिसके अक्षर स्खलित (अस्पष्ट) हो रहे हैं. ऐसे वचनों को क्षणभर के लिए अन्दर ही अन्दर रोक कर सुन्दर भौंहों वाली उस सुन्दरी ने कुछ-कुछ झुके हुए शिर से प्रेम के उत्कर्ष को दर्शाने वाले, ईर्ष्या सहित प्रणाम-क्रम को प्रदर्शित किया है । (२०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विचिन्त्य) हन्त देवीप्रसादनं प्रति निराश एवास्मि। यत्पुनः प्रणत एव मयि सा प्रस्थिता तद्दैवमात्रमवलम्बनम् । कुतः—

अतिक्रमं प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके ।
स्त्रियो हि किंचित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशयाः क्रमेण ॥ २१ ॥

(परितो विलोक्य सविषादम्) कथं प्रियतमापि सकोपं तिरोहितैव । तथा हि—

स्रस्तस्तनांशुकसमर्पणनिर्व्यपेक्षं
तिर्यग्विलोकननिरुत्सुकजिह्मनेत्रम् ।
भ्रूभङ्गभिन्नमुखविभ्रमया नताङ्ग्या
मन्दस्खलच्चरणमन्थरमत्र यातम् ॥ २२ ॥

(निःश्वस्य) कथमुभयतो व्याहताः स्मः ।

विदूषकः—एदं खु तं आमंतणलालसाए विमुक्कभिक्खापरिब्भमणस्स आमंतणसालम्मि गलहत्थणं ।

राजा—हन्त, क्व नु खलु तिरोहिता स्यात् ?

(कुछ सोचकर) हाय, दैवीय कृपा के प्रति मैं निराश ही रहा। क्योंकि मुझे प्रणाम करते ही वह प्रस्थान कर गयी, अतः अब दैव ही मेरा अवलम्बन है । क्योंकि—

"अपराध करने वाले प्रेमी के ऊपर प्रेमिकाएँ पहले तो अत्यधिक कुपित हो जाती हैं, फिर क्रमशः कम कोप वाली और अन्त में उदार हो जाती है । (२१)

(चारों तरफ देखकर कष्ट पूर्वक) प्रियतमा भी क्रोध पूर्वक कैसे तिरोहित हो गयी ? उस समय—

मुखविभ्रमवाली वह नतांगी—खिसके हुए स्तनवस्त्र को सम्हालने में उपेक्षा रखती हुई तथा तिरछे अवलोकन में जिनके कुटिल-नेत्र उत्साहहीन हो गये थे और कुछ लड़खड़ाते चरणों के कारण जिसकी चाल अत्यन्त धीमी थी, चली गयी । (२२)

(गहरी साँस लेकर) मैं दोनों ओर से किस प्रकार मारा गया ?

विदूषक—यह तो आमन्त्रण के लोभ से भिक्षाटक को निकलने वाले के लिए आमन्त्रण शाला में गलहस्त जैसा है ।

राजा—हाय, क्या वह दूर चली गयी ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—(विलोक्य) किं एअं असोअक्खंधसमप्पिअं पत्तं दीसइ। (आदाय विलोक्य च) वअस्स, अक्खराइ विअ कुडिलकुडिलाइ दीसंति।

राजा—तेन हि वाच्यताम्।

विदूषकः—को जाणइ अक्खराइ। तुमं चेअ वाएहि।

राजा—(गृहीत्वा वाचयति।)

दिट्ठेण जेण सअलं रमणिज्जं मह कअं अरमणिज्जं।
सो अरमणिज्जविरहो अवि णाम रमेज्ज णअणाइ॥ २३॥

कथं प्रिययैव विलिखितम्।

विदूषकः—अहो अत्तहोदो मेहावित्तणं जेण खणदंसणादो पत्तगदाइ अक्खराइ मुखे संकमिदाइ। मह उण मुइरं पेक्खंतस्स जीहा वि ण परिप्फंदिआ।

(राजा पुनः पुनर्वाचयति।)

सुभद्रा—(स्वगतम्) अइ णिल्लज्ज हिअअ, कहं दाणिं पि ण विवज्जसि ?

विदूषक—(देखकर) अशोक वृक्ष की शाखा पर रखा हुआ यह पत्र जैसा क्या दिखाई दे रहा है ? मित्र, टेढ़े-मेढ़े अक्षर जैसे कुछ दिखाई तो पड़ रहे हैं।

राजा—तब तो उसे पढ़ा जाय।

विदूषक—अक्षरों को पढ़ना जानता कौन है ? तुम्हीं पढ़ो।

राजा—(लेकर पढ़ता है)—

जिसके दर्शन मात्र ने मेरे लिए समस्त रमणीक पदार्थ अरमणीक बना दिए। उस अरमणीक का विरह भी मेरे नेत्रों को सुख पहुँचावे। (२३)

(क्या यह प्रिया द्वारा ही लिखा गया है ?)

विदूषक—आश्चर्य है, आपके मेधावीपन पर, जिसके कारण क्षणभर देखने मात्र से ही पत्र में अंकित सभी अक्षर मुँह में आ गये। फिर देर तक ताकते हुए भी मेरी जिह्वा तो काँपती तक नहीं। (राजा बार-बार उसे पढ़ता है।)

सुभद्रा—(मन में) अरे निर्ल्लज्ज हृदय, क्या इस समय भी तू भग्न नहीं हो रहा है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—(स्वगतम्) हुँ, बलिअं खु विसण्णा पिअसही। को वा एत्थ आसासो।

(प्रविश्य)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, आअच्छइ तरंगिआए सह सव्वो सही-अणो। अहं पुण पिअणिवेअणत्थं अग्गदो तुरिअं आअदा।

मन्दारिका—हला, किं तं।

चेटी—एसा खु भट्टिदारिआ महाराअणमिणा चक्कवट्टिणो महाराअ-भरहस्स पदिज्जदि त्ति।

सुभद्रा—(सविषादमात्मगतम्) हंत किं एदं ? (वैचित्र्यं नाटयति।)

मन्दारिका—(स्वगतम्) एदं खु विसण्णाए पिअसहीए समस्सासणं।

सुभद्रा—(स्वगतम्) अइ णिट्ठुर हिअअ, दाणि णिस्संकं विवज्जसु।

मन्दारिका—(स्वगतम्) का वा इह पडिवत्ती ? (प्रकाशम्) हला, अहं पुण पुण्णपत्तं धारेमि। तुमं दाव अग्गदो गदुअ इह एव्व सहीअणं आणेहि। जेण सह एव्व उव्वाहसंमाणिअं असोअं मालईलअं च दक्खिस्सम्ह।

मन्दारिका—(मन ही मन) हाय, प्रियसखी बहुत दुःखी हैं, यहाँ कौन-सा आश्वासन दिया जाय ? (प्रवेश करके)

मंजरिका—हे राजकुमारी, तरंगिका के साथ सभी सखियाँ आ रही हैं। किन्तु मैं तो प्रिय से निवेदन करने के लिये पहले ही जल्दी-जल्दी आ गयी।

मन्दारिका—हे सखि, कौन-सा है वह प्रिय ?

चेटी—महाराज नमि, इस राजकुमारी को चक्रवर्ती भरत के लिए दे रहे हैं।

सुभद्रा—(विषाद के साथ मन ही मन) हाय, यह क्या हुआ ? (कष्ट का अनुभव करती है)

मन्दारिका—(मन में) इस दुःखी प्रियसखी के लिये यही सान्त्वना ठीक है।

सुभद्रा—(मन ही मन) अरे कठोर हृदय, अब निःशंक होकर मर जा।

मन्दारिका—(मन में) अब यहाँ कौन-सी कार्यवाही की जाय ?
(प्रकट में) हे सखि, मैं पानी से पूर्ण पात्र लाती हूं और तू तब तक आगे जाकर अपनी सखियों को यहीं ले आ, जिससे एक ही साथ हम विवाहित अशोक और मालती-लता को देख लें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटी—जं पिअसही भणाइ। (निष्क्रान्ता ।)

सुभद्रा—(सखेदम्) हला, देहि मे ऊसंगं। अण्णारिसं खु दाणि मे सरीरं।

मन्दारिका—तेण हि इह एव्व सआहि।

(सुभद्रा मन्दारिकाया उत्संगमधिशेते ।)

मन्दारिका—अहवा किं एत्थ समस्सासणं।

(सुभद्रा पारवश्यमभिनीय मुह्यति ।)

मन्दारिका—(सशङ्कं सुभद्राया अंगानि स्पृष्ट्वा सशोकम्) हा हा हद म्हि, कहिं मे पिअसही। (ससंभ्रमम्) परित्ताअध।

(राजा विदूषकश्च आकर्णयतः ।)

राजा—कुतोऽत्र स्त्रीजनाक्रन्दनम् ?

विदूषकः—(सभयम्) अविह अविह। रक्खेहि मं वअस्स, रक्खेहि।

(उभौ सत्वरमुपसर्पतः ।)

राजा—(दृष्ट्वा सविषादम्) कथमन्यामेव दशां गता प्रियतमा।

विदूषकः—कहं अवत्थंतरगदा तत्तहोदी।

मन्दारिका—(दृष्ट्वा) हंत परित्तायहि।

चेटी—जैसा प्रियसखी कहें। (निकल जाती है)

सुभद्रा—(अत्यन्त कष्ट के साथ) हे सखि, मुझे अपनी गोद प्रदान करो। इस समय मेरा शरीर दूसरे ही तरह का मालूम पड़ रहा है।

मन्दारिका—तब तो यहीं सो जा।

(सुभद्रा मन्दारिका की गोद में सो जाती है।)

मन्दारिका—अब इसे क्या सान्त्वना दी जाय ?

(सुभद्रा परवशता का अभिनय करके मोहित हो जाती है)

मन्दारिका—(सशंक भाव से सुभद्रा के अंगों को छूकर शोक के साथ) हाय-हाय, मैं तो मारी गयी, कहाँ है मेरी प्रियसखी ? (घबराकर) बचाओ-बचाओ। (राजा और विदूषक, दोनों सुनते हैं)

राजा—स्त्रियों का यह आक्रन्दन कहाँ से आ रहा है ?

विदूषक—(भयपूर्वक) बचाओ, बचाओ, हे मित्र, मुझे बचाओ, बचाओ।

(दोनों शीघ्र ही नजदीक पहुँचते हैं)।

राजा—(देखकर, दुःखपूर्वक) प्रियतमा क्या दूसरी दशा (अर्थात् मृतावस्था) को प्राप्त हो गयी ?

विदूषक—वह दूसरी दशा को कैसे प्राप्त हो गयी ?

मन्दारिका—(देखकर) हाय, बचाओ-बचाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—(विदूषकस्य हस्ते लेखं दत्त्वा, सुभद्रामुत्संगे समर्प्य) प्रिये, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

विदूषकः—समस्ससिहि अत्तहोदि, समस्ससिहि ।

मन्दारिका—सहि, समस्ससिहि समस्ससिहि ।

(सुभद्रा किंचिदाश्वसिति ।)

राजा—(सहर्षम्)

जातश्चकोरदृशि मोहमुपागतायां
तीव्राभिषङ्गबहुलो मम कोऽपि मोहः ।
लब्धं समाश्वसनमद्य समाश्वसत्या-
मस्यां मया च विधुरेण च मन्मथेन ॥ २४ ॥

(सुभद्रा राजानं दृष्ट्वा सलज्जमुत्थाय सेर्ष्यमन्यतो गन्तुमिच्छति ।)

(राजा उत्थाय हस्ते गृह्णाति ।)

सुभद्रा—(सासूयम्) मुक्को एव्व हत्थो किं ति पुणो वि घेप्पइ ।

राजा—ननु त्वयैव कोपपरवत्या मोचितः ।

सुभद्रा—अमुंचंतो वा अहं कहं चिट्ठेमि ?

विदूषकः—गदं गदं । गंतव्वं दाणि चिंतिज्जउ ।

राजा—(विदूषक के हाथ में पत्र-लेख देकर, सुभद्रा को गोद में रखकर) धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

विदूषक—धैर्य धारण करो, आदरणीये, धैर्य धारण करो !

(सुभद्रा कुछ आश्वासित होती है ।)

राजा—(हर्षपूर्वक)

इस चकोर नयनी के मूर्च्छित हो जाने पर मुझे भी तीव्र शोक के आधिक्य से युक्त मोह उत्पन्न हो गया था । किन्तु इस समय इसकी मूर्च्छा टूटने पर विरहाकुल मैंने और कामदेव ने भी चेतनता प्राप्त कर ली है । (२४)

(सुभद्रा राजा को देखकर लज्जित होती हुई उठकर रोष पूर्वक दूसरी जगह जाना चाहती है । राजा उठकर हाथ पकड़ता है ।)

सुभद्रा—(रोष पूर्वक) त्यागा हुआ हाथ फिर क्यों पकड़ रहे हैं ?

राजा—तुमने ही तो कोपाधीन होकर छुड़ा लिया था ।

सुभद्रा—नहीं छुड़ाकर भला मैं रहती कहाँ ?

विदूषक—गया, सो गया । इस समय आने वाले का विचार करें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—भद्रे, किं ते सख्या मोहकारणम् ?

मन्दारिका—(सविषादमात्मगतम्) हुं, कहं किर भणिस्सं ?

(पुनर्नेपथ्ये)

वृषभतनयः पूर्वश्चक्रायुधश्चरमो मनु-
र्नवनिधिपतिः पायात्पृथ्वीं चिरं भरतेश्वरः ।
वृषभशिखरिप्रान्तोत्कीर्णानधीत्य शचीपतेः
सदसि च गुणान्यस्योद्गायन्ति किन्नरयोषितः ॥ २५ ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, पेक्ख पेक्ख । इह वि कण्डप्पवाद-कंदरमुहवट्टिणं तुह एव्व दिसाविजयभोआवलिं गाअंतं किंणरमिहुणं ।

(सर्वे पश्यन्ति ।)

सुभद्रा मन्दारिका च—(सहर्षमात्मगतम्) किं एसो एव्व सा ।

सुभद्रा—(आत्मगतम्)—हिअअ, एण्हि समस्ससिहि ।

राजा—हे भद्रे, तेरी सखी के मूर्च्छित होने का कारण क्या था ?

मन्दारिका—(विषादपूर्वक मन ही मन) हाय, मैं कैसे कहूँ ?

(नेपथ्य में)

अन्तिम मनु पुत्र वृषभनाथ के पुत्र, प्रथम चक्रवर्ती और नवनिधियों के स्वामी भरतेश्वर दीर्घ काल तक पृथ्वी का पालन करें। वृषभाचल के अग्रशिखर पर उत्कीर्ण किये गये जिनके गुणों को पढ़कर किन्नरकामिनियाँ इन्द्र की सभा में उच्च स्वर से गान किया करती है । (२५)

(सभी सुनते हैं)

विदूषक—(देखकर) मित्र, देखो, देखो, यहाँ भी चट्टानों, झरनों और कन्दराओं के मुख पर (अग्रभाग पर) स्थित किन्नरों की जोड़ियाँ तुम्हारी ही दिग्विजय-भोगों का गान कर रही है ।

(सभी देखते हैं)

सुभद्रा और मन्दारिका—(हर्षपूर्वक मन ही मन) क्या यह वही है ?

सुभद्रा—(मन ही मन) हे हृदय, इस समय शान्त रहो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दारिका—जिदं अम्हेहिं। कहं एस एव्व चक्कवट्टी।

(सुभद्रा ससाध्वसमन्यतो गन्तुमिच्छति।)

विदूषकः—जस्स दाव चउरुदहिपरिअंताए महीए समुइदो करो दिज्जइ, तस्स कहं तुए करो ण दिज्जइ ?

राजा—भद्रे, किमेतत्।

मन्दारिका—भट्टा, महाराअणमिणा चक्कवट्टिओ अत्ताणं पदिच्छिदं सुणिअ अण्णं चेअ किर चक्कवट्टिणं मुणंतीए दिढाभिसंगादोमम ऊसंगे मुच्छिदं पिअसहीए।

विदूषकः—ही ही।

राजा—(सहर्षम्) किमियमेव विद्याधरराजस्य नमेर्भगिनी मातुलतनया सुभद्रा नाम स्त्रीरत्नम्।

मन्दारिका—अह इं।

विदूषकः—संघडेइ हु सुसरिसं मिहुणं विही।

राजा—आकाश एवोत्पन्नं रत्नम्।

मन्दारिका—(विदूषकस्य हस्ते लेखनं दृष्ट्वा) पिअसहि, एसो हु सो लेहो।

मन्दारिका—हम लोगों ने विजय प्राप्त कर ली है। क्या यह वही चक्रवर्ती है ?

(सुभद्रा भयपूर्वक दूसरी ओर जाना चाहती है।)

विदूषक—चारों समुद्रपर्यन्त पृथ्वी जिसे समुचित कर (टेक्स) प्रदान करती है, उसे तुम कर (हाथ) क्यों नहीं देती ?

राजा—हे भद्रे, यह क्या ?

मन्दारिका—हे स्वामिन्! महाराज नमि के द्वारा चक्रवर्त्ती के लिये अपने को समर्पित किए जाने का समाचार सुनकर, तथा किसी अन्य व्यक्ति को चक्रवर्ती जानती हुई यह प्रियसखी अत्यधिक दुःख के कारण मेरी गोद में मूच्छित हो गयी।

विदूषक—हाय, हाय,

राजा—(हर्ष पूर्वक) क्या यही विद्याधर राजा नमि की बहन, तथा मेरे मामा की पुत्री स्त्रीरत्न सुभद्रा है ?

मन्दारिका—तो फिर क्या ?

विदूषक—विधाता सचमुच ही सुयोग्य जोड़े को ही मिलाता है।

राजा—रत्न तो आकाश में ही उत्पन्न होता है।

मन्दारिका—(विदूषक के हाथ में लेख देखकर) हे प्रिय सखि, यह वही लेख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं सो वि इमिणा दिट्ठो।

राजा—सुन्दरि, अयमेव त्वद्विरहविह्वलानामस्माकमियतीं वेलां विलोभनमभूत्। कुतः

प्रत्यक्षमन्मथार्तिप्रकाशनादपि मृगीदृशः प्रायः।
रमयत्यनङ्गलेखः समुत्सुकं कामिनश्चेतः॥ २७॥

मन्दारिका—(कर्णं दत्त्वा) कहं पदसद्दो (पुनः कर्णं दत्त्वा) कहं सहीअणालावो। पिअसहि, संपुण्णा खु अम्हाणं मणोरहा। ता एहि दाव। पुणो वि दक्खिस्ससि।

(सुभद्रा साभिलाषं राजानं पश्यन्ती मन्दारिकया सह निष्क्रान्ता।)

राजा—(सोत्कण्ठम्)

आमूलोन्नमितस्तनैः प्रविकसन्नेत्रैश्चिरं पूरितै-
रुच्छ्वासैः प्रचुराभिलाषपिशुनैः कच्छात्मजाया मुहुः।
अर्धस्रंसितपक्ष्मभिर्गुरुतरैर्मन्दोच्छ्वसन्नीविभि-
र्निःश्वासैश्च दृढाभितापसुलभैः पीतोऽस्मि धूतोऽस्मि च॥ २८॥

सुभद्रा—(लज्जाकर) क्या उस लेख को भी उन्होंने देख लिया है ?

राजा—हे सुन्दरि, इतने समय तक तुम्हारे विरह से विह्वल हमारे लिये यही लेख रिझाता रहा। क्योंकि—

"प्रत्यक्ष काम-पीड़ा को प्रकाशित करने की अपेक्षा मृगनयनियों का अनंगलेख ही कामियों के व्याकुल-चित्त को बहलाता है॥ २७॥

मन्दारिका—(कान लगाकर) क्या पैर की आवाज है ? (फिर कान लगाकर) क्या सखियों की बातचीत सुनाई पड़ रही है ? हे प्रिय सखि, हमारे मनोरथ तो पूर्ण हो गए। अतः अब आओ, फिर देखोगी। (सुभद्रा अभिलाषापूर्वक राजा को देखती हुई मन्दारिका के साथ निकल जाती है।)

राजा—(उत्कण्ठा सहित)

कच्छराज की इस पुत्री ने अपने मूलसहित ऊँचे उठे हुए स्तनों द्वारा, खिलते हुए नेत्रों द्वारा, खींची गयी गहरी साँसों द्वारा, अत्यधिक अभिलाषी चुगलखोर संकेतों द्वारा आधी झुकी हुई भारी बरौनियों के द्वारा क्रमशः शिथिल पड़ते हुए नीविबन्ध के द्वारा, कठोर ताप से उत्पन्न निःश्वासों के द्वारा मानों बार-बार मुझे पी लिया और रोमांचित कर दिया है॥ २८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं च बहुना ।

व्यत्यस्तांससमर्पिताननमुरःसंघट्टमग्रस्तनं
गण्डस्पृष्टकपोललेखमवशप्रत्यर्पितालिङ्गनम् ।
दत्तोत्संगनिवेशितालसतनोस्तस्याः समाश्वासन–
व्याजेन प्रथमं मनोरथपदं प्राप्तं समाश्लेषणम् ॥ २९ ॥

वयस्य, येनैव मार्गेण गता कच्छराजदुहिता तत्रैव कांचिद्वेलामात्मानं विनोदयावः । तदेहि तावत् ।

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां
सुभद्रानाटिकायां तृतीयोऽङ्कः ।

अधिक कहने से क्या लाभ ?

जिसने (मेरी) गोद में अपनी अलसायी देह को समर्पित कर दिया था, उसे (सुन्दरी को) आश्वासन देने के बहाने से किए गए आलिंगन के रूप में मानों मैंने अपने मनोरथ का पहला स्थान ही प्राप्त कर लिया था । उसी आलिंगन-काल में उसने मुँह को मुझे समर्पित किया, किन्तु अपने कन्धों को घुमा लेने के कारण तथा हृदय का दबाव पड़ जाने से उसके स्तनों का संघर्षण हो गया और मेरे गालों की रगड़ से उसके कपोल चिन्हित हो गए । इस प्रत्यालिंगन में (कृत्रिम) विवशता ही दिखाई पड़ रही थी (२९)

हे मित्र, जिस रास्ते से कच्छराज की पुत्री गयी है, उसी रास्ते में हम दोनों कुछ समय तक अपना मन बहलावें । अतः इधर आओ ।

विदूषक—प्रिय मित्र, इधर से आवें, इधर से । (दोनों घूमकर निकल जाते हैं) ।

भट्ट गोविन्दस्वामी के पुत्र हस्तिमल्ल द्वारा प्रणीत सुभद्रा नाटिका का तीसरा अंक समाप्त ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हस्तिमल्ल कृत

अंजना-पवनंजय-नाटक

(ततः प्रविशति वसन्तमाला ।)

वसन्तमाला—(सहर्षम्) इह जादु आगदस्स चत्तारो मासो भट्टिणो। दाणिं च भट्टिदारिआए दोहलं विअ वट्टइ। तस्सा हि णीलुप्पलदलमेचआइ होन्ति थणचूचुआइ, फलिणीफलपण्डुराइ होन्ति कपोलाइ, अंजणलेहा विअ णीला परिप्फुडा होदि उअरे रोमराई। ता एअं सोहणं उत्तंतं भट्टिणीए केदुमदीए विण्णवेमि। (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य) का उण एसा इदो अभिवट्टइ ? कहं, भट्टिणीए केदुमदीए अणुअरिआ जुत्तिमदी ?

(ततः प्रविशति युक्तिमती ।)

युक्तिमती—आणत्त म्हि भट्टिणीए केदुमदीए। अस्सत्था विअ वहू अंजणेत्ति सुदं। तं जाव तं कुसलं पुच्छिअ आअच्छ त्ति। ता जाव सामिणीए अंजणाए चदुस्सालं गच्छेमि। (परिक्रमति)

(वसन्तमाला प्रवेश करती है)

वसन्तमाला—(हर्षित होती हुई) स्वामी को यहाँ आये चार मास हो गये। इस समय स्वामिनी में दोहद (गर्भकालिक लक्षण) जैसा ज्ञात हो रहा है। उसके दोनों स्तनों की घुण्डियाँ नीलकमल के समान काले रंग की हो गयी है। उसके दोनों कपोल प्रियंगुफल के समान पीले रंग के हो गये हैं। उसके उदर-भाग में स्थित रोम-राजि अंजनलेखा के समान नीली-नीली दिखाई दे रही हैं। अतः यह सुन्दर समाचार स्वामिनी केतुमती से जाकर कहती हूँ। (घूमकर, सामने देखकर) यह कौन इधर ही बढ़ती आ रही है ? क्या यह स्वामिनी केतुमती की अनुचरी युक्तिमती है ?

(युक्तिमती प्रवेश करती है)

युक्तिमती—स्वामिनी केतुमती ने मुझे आज्ञा दी है कि—"सुना है कि बहू अंजना अस्वस्थ जैसी हो गयी हैं, इसलिये उसके कुशल-समाचार पूछ कर आओ।" अतः मैं तब तक स्वामिनी अंजना के प्रकोष्ठ (चतुःशाला) में ही चलती हूँ। (घूमती है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसन्तमाला—एसा खु पिअसही जुत्तिमदी किं वि कज्जंतरक्खित्तहिअआ विअ मं अणवेक्खिअ गच्छइ। जाव इमाए पिट्ठदो णिहुदं गदुअ अच्छिणी पिहाअ ओहसिस्सं। (तथा करोति।)

युक्तिमती—(विभाव्य, सस्मितम्) का णाम अण्णा मए एवं विस्संभीकरेदि ? णं पिअसहि वसन्तमाले, जाणिदा खु सि।

वसन्तमाला—(मुक्तहस्ता, सहासम्) सहि, जुत्तिमदी खु तुमं। सहि, कहिं दाणिं पट्ठिदासि ?

युक्तिमती—सहि, किंचि अस्सत्था दाणिं अंजणेत्ति भट्टिणीए केदुमदीए आणाए कुसलं पुच्छिदुं गच्छेमि।

वसन्तमाला—मुद्धे, ण खु सा अस्सत्था, दोहलअं खु तं।

युक्तिमती—हला, किं उम्मत्ता सि ?

वसन्तमाला—सहि, सुणाहि दाव। एकदा खु णिसीहे इह पहसिअदुइओ भट्टा आअदुअ गओ।

युक्तिमती—सहि, कहं अम्हेहिं ण जाणिदं ?

वसन्तमाला—निश्चय ही यह प्रिय सखी युक्तिमती सम्भवतः किसी दूसरे कार्य में आकृष्ट-हृदय होने के कारण ही मुझे अनदेखा कर चली जा रही है। अच्छा, तब तक इसके पीछे से चुपचाप जाकर दोनों आँखों को बन्द करके परिहास करूँ। (वैसा ही करती है।)

युक्तिमती—(अनुभव करके, मुस्कुराहट के साथ) अन्य कौन मुझसे इस प्रकार प्रेमकलह कर सकती है ? अरे प्रियसखि, वसन्तमाले, तुम तो पहिचान ली गयी हो।

वसन्तमाला—(हाथ हटाकर, हँसी के साथ) सखि, निश्चय ही तुम युक्तिमती हो। हे सखि, इस समय यहाँ कैसे चली आई ?

युक्तिमती—हे सखि, "अंजना इस समय कुछ अस्वस्थ है। अतः स्वामिनी केतुमती की आज्ञा से उसकी कुशल पूछने जा रही हूँ।

वसन्तमाला—हे मुग्धे, वह अस्वस्थ नहीं है। उसे तो दोहद (गर्भलक्षण) है।

युक्तिमती—सखि, क्या उन्मत्त हो गयी हो ?

वसन्तमाला—हे सखि, तब सुनो। एक समय आधी रात में प्रहसित दूत के साथ स्वामी आकर चले गये हैं।

युक्तिमती—हे सखि, तब उनके आगमन की जानकारी हम लोगों को क्यों नहीं मिली ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसन्तमाला—सहि, सो खु अपरिणिट्ठिदसंगरो णअरं पविट्ठो म्हि त्ति वीरजणो इदाए विलक्खदाए अप्पआसाअमणो रत्ति अदिवाहिअ पच्चूसे चेअ गदो।

युक्तिमती—सहि, जुज्जइ। तुमं दाव कहिं पत्थिदा ?

वसन्तमाला—एअं सोहणं वुत्तंतं भट्टिणीए विण्णेविदुं।

युक्तिमती—सहि, जुत्तं चेअ भट्टिणीए विण्णविदुं। तहवि किंवि पज्जाउलं विअ मे हिअअं।

वसन्तमाला—किं ति।

युक्तिमाला—जाणादि एव्व भट्टिणी केदुमदी सामिणीए अंजणाए अप्पडिमं चारित्तं। तहवि विसेसदो इत्थिआसु आहिजाइपरिवालणे एक्कंतसावहाणा भट्टिणी। ता एदं वुत्तंतं सुणिअ किं पडिवज्जदि त्ति।

वसन्तमाला—सहि, किं दाणिं मुधा संतप्पिअदि। चदुरेहिं मासेहिं परिसमापिअजुद्धो आअमिस्सामि त्ति खु तदा भट्टा गओ। तदो गदा चेअ चत्तारो मासा। ता सुवो वा परसुवो वा सअं चेअ भट्टा एत्थ आअच्छइ।

वसन्तमाला—हे सखि, "युद्ध समाप्त किये बिना ही नगर में प्रवेश कर गया हूँ। क्या यह वीरजनों के लिए उचित है ?" ऐसा विचार करके, गुप्त-रूप से अन्धकार में ही गमन करने वाले वे रात्रि-व्यतीत करके अत्यन्त सुबह ही चले गये थे।

युक्तिमती—हे सखि, तब तो यह उचित ही ज्ञात हो रहा है। तब तुम कहाँ चली हो ?

वसन्तमाला—इसी सुन्दर समाचार को स्वामिनी को बताने के लिए।

युक्तिमती—हे सखि, तब तो स्वामिनी को बताना उचित ही है। फिर भी मेरा हृदय कुछ व्याकुल जैसा हो रहा है।

वसन्तमाला—क्यों ?

युक्तिमती—भट्टिनी केतुकती, स्वामिनी अंजना के अनुपम-चरित्र को तो जानती ही हैं। फिर भी स्त्रियों के शील-परिपालन में भट्टिनी विशेष रूप से अत्यन्त सावधान रहती हैं। तब इस वृत्तान्त को सुनकर वे क्या अनुभव करेंगी ?

वसन्तमाला—हे सखि, क्यों इस समय व्यर्थ चिन्ता करती हो ? "चार माह में युद्ध समाप्त करके मैं आ जाऊँगा" ऐसा कहकर स्वामी गये थे। इसके बाद चार महीने बीत गये। अतः वे कल या परसों स्वयं ही आ रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्तिमती—तं पि पडिहदं विअ।

वसन्तमाला—कहं विअ।

युक्तिमती—ण खु एण्हिं दाव णिरग्गलं वच्छेण वरुणस्स माणभंगो कादव्वो। जह खरदूसणादीणं मोअणं अप्पडिहदं भविस्सदि, तह एव्व विज्जावलेण जुज्झे वट्टिदव्वं ति सेणावइणो मुग्गरस्स महाराएण पच्चहं लेहो पहिअदि। एवं चिराइस्सदि विअ कुमारो।

वसन्तमाला—तह वि किं चंदलेहा वि गरलं उग्गिरइ, चंदणलआ वा अग्गिं। ता अलं दाणिं भट्टिणिं केदुमदिं अण्णहा संकिअ।

युक्तिमती—तेण हि गच्छदु होदी। अहं वि सामिणीए अंजणाए संजाददोहलरमणिज्जं रूवं दक्खिअ अच्छीणं फलं अणुहविस्सं।

वसन्तमाला—सहि, तहा। (निष्क्रान्ता।)

युक्तिमती—(परिक्रामन्ती, आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) भट्टिणि केदुमदि, जाणामि एव दे वहूगअं असाहारणं पेम्मभरं, चारित्तं, सच्चपालणं च। तहवि अत्तणो कादरदाए विण्णवेमि केवलं, परपरिवादसंकिणी मा दाव अप्पणो दक्खिण्णस्स अणुइदं अणुचिट्ठेहि।

युक्तिमती—वह भी अनुचित जैसा ही है।

वसन्तमाला—कैसे ?

युक्तिमती—निश्चय ही इस समय निरर्गल वत्स के कारण वरुण का मानभंग नहीं किया जाना चाहिए। जिस प्रकार खरदूषण आदि का मोचन अप्रतिहत हुआ होगा, उसी प्रकार महाराज अपने विद्यावल से युद्ध में सेनापति मुद्गर के पास पत्र-लेख भेज देंगे। प्रतीत होता है कि कुमार उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वसन्तमाला—फिर भी, क्या चन्द्रमा की कला विष उगलती है ? अथवा चन्दन की लता भी क्या आग बरसाती है ? अतः स्वामिनी केतुमती के विषय में इस प्रकार का अन्यथा सन्देह करना व्यर्थ है।

युक्तिमती—तो फिर आप जायें। मैं भी स्वामिनी अंजना के उत्पन्न दोहद के रमणीय रूप को देखकर अपनी आँखों को सुख पहुँचाऊँगी।

वसन्तमाला—हे सखि, ऐसा ही हो, (निकल जाती है)

युक्तिमती—(घूमती हुई, आकाश की ओर लक्ष्य करके) हे स्वामिनी केतुमती, मैं आपके वधूगत असाधारण प्रेम, चारित्र और सत्यपालन को तो जानती ही हूं ! फिर भी, आपसे कातरतापूर्ण निवेदन करती हूं कि पर-परिवाद से शंकालु होकर अपनी दाक्षिण्यता में अनुचित कमी न लावें (नेपथ्य में) (क्या आप युक्तिमति हैं ?)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नेपथ्ये)

भवति युक्तिमति ।

युक्तिमती—(आकर्ण्य) को णु खु मं सद्दावेदि ? (पृष्ठतो विलोक्य) कहं कंचुकी लद्धहूदी ? (पृष्ठ तो विलोक्य)

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—भवति युक्तिमति ।

युक्तिमती—(उपसृत्य) अज्ज, कीस मं सद्दावेसि ?

कञ्चुकी—अलमिदानीं भवत्यास्तत्र गमनेन । यावद् देव्या एव पार्श्वपरिर्वतिनी भव ।

युक्तिमती—(सशङ्कम्) अज्ज, भट्टिणीए आणाए सामिणिं अंजणं एसु दिअहेसु किंचि किर अस्सत्थं कुसलं पुच्छिदुं अहं पत्थिदा ।

कञ्चुकी—स्वयमेव खलु देवी त्वामाह्वयति ।

युक्तिमती—(सविषादम् आत्मगतम्) हुं, जह मए चिंतिदं तह एव्व संवुत्तं । (प्रकाशम्) अज्ज, जइ एवं, भट्टिणीए पासं गमिस्सं । (निष्क्रान्ता)

कञ्चुकी—(परिक्रामन्) हन्त भोः ।

निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वाऽपि निजाभिजात्यपरवत्यः ।
बिभ्यति खलु कुलवनिताः परिवादलवादपि प्रायः ॥ १ ॥

युक्तिमती—(सुनकर) मुझे यह आवाज कौन दे रहा है ? (पीछे देखकर) क्या कंचुकी लब्धभूति हैं ?

(प्रवेश करके)

कंचुकी—अजी युक्तिमती आप ?

युक्तिमती—(समीप जाकर) आर्य, मुझे क्यों पुकार रहे हैं ?

कंचुकी—अभी आपका वहाँ जाना ठीक नहीं । तब तक आप देवी के पास ही रहें ।

युक्तिमती—(शंका करती हुई) हे आर्य, भट्टिनी की आज्ञा से इन दिनों अस्वस्थ स्वामिनी अंजना से कुछ कुशल-क्षेम पूछने के लिये चली हूं ।

कंचुकी—देवी खुद ही तुम्हें पुकारेंगी ।

युक्तिमती—(शोक के साथ, मन में) हाँ, जैसा मैंने सोचा था, वैसा ही हो गया ! (सुनकर) हे आर्य, यदि ऐसा है, तो भट्टिनी के पास ही जाती हूं । (निकल जाती है) ।

कंचुकी—(घूमते हुए) हतभाग्य अरे,
अपनी कुलीनता के अधीन रहने वाली कुलीन स्त्रियाँ (दूसरों के) निर्दोष शील, चारित्र को जानकर भी यत्किंचित् लोकापवाद से भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यावदिदानीं शाखानगरमेव गच्छामि। (परिक्रम्यात्मानं निर्वर्ण्य च)

गिरमविशदां कृच्छ्राद् बद्ध्वा व्रजन्नपहास्यतां
कुकविवदहो भूयो भूयः स्खलामि पदे पदे।
अवहितमना एव न्यस्यन् पदानि मृदून्यहं
परिणतिमपि प्राप्य प्रौढां कवेः समतां गतः ॥ २ ॥

अथवा

प्रतिनवसहकारोद्भिद्यमानप्रवाल-
प्रणयिनि सुकुमारेणाग्रहस्तेन बाला।
किमु रचयति पर्णं कर्णमूले विशीर्णं
परिणतिरपि जाता कुत्रचिद्गर्हणीया ॥ ३ ॥

(पुरो विलोक्य) इदं गोपुरम्। यावदनेन निष्क्रम्य शाखानगरं प्रविशामि। (परिक्रम्य) प्रविष्टोऽस्मि शाखानगरम्। (पुरो विलोक्य) एष हि विद्याधरभैरवस्य क्रूरस्य चेटो हिन्तालकः प्रतीतविकसितोत्पलपूलबन्धन-सनाथाग्रहस्तः सत्वरमितो धावति। तद्यावदेनमाह्वयामि। रे रे हिन्तालक—

प्रायः डर जाती हैं (१) अच्छा, इस समय नगर के परिसर (शाखा-नगर) में ही चलता हूँ।
(घूम कर और अपने को देखकर)
अविशद्-वाणी को बड़ी कठिनाई से बाँधकर मैं अपहास्यता को प्राप्त करता हुआ, कुत्सित कवि के समान प्रत्येक पद में बार-बार स्खलित हो रहा हूँ। (२) अथवा,

अत्यन्त नवोदित आम्र-पल्लवों के प्रवालों की प्रणयिनी बाला अपने सुकोमल हाथों के अग्रभाग से अपने कर्णमूल का श्रृंगार क्या जीर्ण-शीर्ण पत्तों से करती है ? (नहीं-नहीं) कभी-कभी अन्तिमावस्था भी गर्हणीय (निन्दनीय) हो जाती है (३) (आगे देखकर) यह गोपुर (प्रधान द्वार) हैं, तब इसी से निकलकर नगर परिसर में प्रवेश करता हूँ। (घूमकर) हाँ, शाखा-नगर में प्रवेश कर गया हूँ ! (आगे देखकर) यह क्रूर नामक विद्याधर-भैरव का हिन्तालक नामका चेट (दास) हाथ में विकसित कमल का पुलिन्दा लिये हुए तेजी से इधर ही दौड़ा आ रहा है। इसलिये इसे पुकारता हूँ—अरे—हिन्तालक ! (प्रवेश करके, पर्दा हटने के साथ ही निर्देशानुसार चेट)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रविश्य पटाक्षेपेण यथानिर्दिष्टश्चेटः)

चेटः—(दृष्ट्वा) कहं अज्जलद्धहूदी शअं आअदुअ मं शद्दावेदि। (उपसृत्य) भट्टालअ, एशे अहगे णमश्शामि। (प्रणमति।)

कञ्चुकी—हिन्ताल, मद्वचनात् क्रूरमिहैवाह्वय।

चेटः—भट्टालअ, ण खु एशे अवशले तश्श तुम्हालिशेहिं संजप्पिदुं।

कञ्चुकी—किमिति।

चेटः—(हस्तेन निर्दिश्य) भट्टालअ, एशे खु शुधाशूदिविवशलिशापाण-अकवालशणाहवामग्गहत्थए घग्घलिआघग्घलणिग्घोशमुहलचलणजुअले डमलुअतालणलोलदाहिणकले खंधुद्देशशमप्पिअतिशूलदंडए लत्तचंदणति-लअशोहिअणिडालपट्टए जवाकुशुमलोहिअभीशणलोअणे विअ वट्टइ भेलवे विज्जाहलभेलवे। अह अ—

एशे शामी कूले पाऊण शुलं शुदुल्लहं शुलहिं।
णच्चइ गायइ घुम्मइ पक्खलइ अकालणे हशइ॥ ४॥

कञ्चुकी—(विलोक्य) कथमुद्वृत्तो मदोन्मोहः। तथा हि—

चेट—(देखकर) क्या आर्य, लब्धभूति स्वयं ही आकर मुझे पुकार रहे हैं? (नजदीक जाकर, हे स्वामिन्, यह मैं आपको प्रणाम करता हूँ। (प्रणाम करता है।)

कंचुकी—अरे हिन्ताल, मेरे कहने से तुम क्रूर को यहीं बुलाओ।

चेट—हे स्वामिन्, उसका आप जैसों से वार्तालाप करने का यह अवसर नहीं है।

कंचुकी—क्यों? (हाथ से संकेत कर)

चेट—हे भट्टारक, यह चन्द्रबिम्ब के सदृश मदिरा से परिपूर्ण कपाल द्वारा सुशोभित बायें हाथ वाला, घूँघरू की घर्घर आवाज से मुखरित चरण-जुगल वाला, डमरू के बजाने से चंचल दाहिने हाथ वाला, कन्धे-पर त्रिशूल-दण्ड रखे हुए, लाल (रक्त) चन्दन के तिलक से सुशोभित ललाट-पट्टवाला, जपा-कुसुम के समान लाल और भयंकर नेत्रवाला, वह विद्याधर-भैरव बड़ा भयानक है। और वह,

"यह क्रूर स्वामी सुदुर्लभ सुगन्धित सुरा पीकर, नाचता है, गाता है, चक्कर खाता है, लड़खड़ाता है और अकारण ही हँसता रहता है। (४)

कंचुकी—(देखकर) मदिरा का नशा बढ़कर कितना हो जाता है? क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किमप्यन्तश्चिन्तानमितवदनस्तिष्ठति मुहु-
र्मुहूर्तं यत्किंचित्किल मृगयमाणो विहरति ।
अकस्माद्विस्मेरो विहसति मिथस्ताडितकरः
करीव क्षीवोऽयं त्यजति मदिराशीकरकणान् ॥ ५ ॥

(सवीभत्सम्) कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्नुता, यन्मयाऽपि तावदेतादृशैरपि निकृष्टचेष्टितैः सह संभाष्यते । भो हिन्तालक, किमत्र क्रियताम् ?

चेटः—भट्टालअ, जाव इमश्श मदावशाणं ताव तुम्हेहिं एत्थ जिण्णुज्जाणे पडिवालेदव्वं ।

कञ्चुकी—तथा कुर्मः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो विद्याधरभैरवः क्रूरः ।)

क्रूरः—(मदं नाटयन्, सबहुमानम्)

अवि जश्श णामहेयं शुलाशुला निशमिऊण वेवंति ।
एशे शे खु वकूले विज्जाहलभेलवे अहके ॥ ६ ॥
अह य—

वह कभी तो आन्तरिक चिन्ता से मुख झुकाये हुए ठहर जाता है, और कभी, क्षण भर के लिये कुछ ढूंढ़ते हुए घूमने लगता है । एकाएक चकित होकर ताली बजाते हुए हँसने लगता है । और कभी-कभी वह मतवाले हाथी के समान मदिरा के छोटे-छोटे कणों को बिखेरता रहता है । (५)

(घृणा युक्त होते हुए) पर-पदार्थों के प्रति लोलुपता निश्चय ही कष्ट उत्पन्न करने वाली है । मैं भी कैसा ? कि तब तक ऐसी निकृष्ट चेष्टा करने वाले के साथ बातें करता रहा । अरे हिन्तालक, अब इस समय मैं क्या करूँ ?

चेट—हे भट्टारक, जब तक इसका नशा उतरता है, तब तक आप इसी जीर्णोद्यान में प्रतीक्षा करें ।

कंचुकी—वैसा ही करें । (निकल जाते हैं)

(इसके बाद निर्देशानुसार विद्याधर भैरव क्रूर का प्रवेश होता है)

क्रूर—(मद का अभिनय करता हुआ, गर्व के साथ)

जिसका नाम सुनकर देव और असुर भी काँपने लगते हैं, यह वही मैं क्रूर नामका विद्याधर-भैरव हूँ (६), और भी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंतेण व जंतेण व तंतेण व णत्थि दुक्कलं णाम ।
मह् एत्तियम्मि लोए के अण्णे मालिशे पुलिशे ।। ७ ।।

चेटः—(उपसृत्य) शामिअ एशे अहके पणवेमि ।

क्रूरः—पियशिश्शा, जावज्जीवं मं शुश्शूशेहि ।

चेटः—एशे दाशे अणुगहिदे । एदाइ णवुउप्पलाइ ।

क्रूरः—अले हिंतालअ, एत्तिअं वेलं किंति तुमे विलंविअं ?

चेटः—शामिअ, अय्ये खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाए दाणिं तुमं पडिवालेन्ते चिट्ठइ । तं खु दट्ठूण चिलाइदं ।

क्रूरः—किं ति एण्हिं तुण्हिक्के चिट्ठशि । वाशेहि दाव उप्पलेहिं कुंभाशवं ।

चेटः—(हास्यं निरुन्धन्, आत्मगतम्) शुट्ठु कहाणं जाणिदे मए अवशले । (प्रकाशम्) जं शामी आणवेदि । (यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

क्रूरः—अले हिंतालअ, एहि दाव ।

मन्त्र से, यन्त्र से या तन्त्र से मेरे लिये कोई भी कार्य असम्भव नहीं । इस प्रकार, इतने बड़े लोक में मेरे समान दूसरा कौन पुरुष हो सकता है ? (७)

चेट—(समीप में जाकर) हे स्वामिन्, यह मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

क्रूर—हे प्रिय शिष्य, जीवन भर मेरी सेवा करते रहो ।

चेट—यह आपका सेवक अनुगृहीत हुआ । आपके लिए ये नव-कमल-पुष्प लाया हूँ ।

क्रूर—अरे हिन्तालक, इतने समय तक तुमने कहाँ विलम्ब किया ?

चेट—हे स्वामिन्, आर्य लब्धभूति इस समय जीर्णोद्यान में आपकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे हैं । (मैंने) उन्हीं को देखकर देर कर दी ।

क्रूर—तो इस समय तुम चुप्पी साधे हुए क्यों बैठे हो ? तब तक कमलों से घड़े की शराब को ही सुगन्धित करो ।

चेट—हँसी रोकते हुए मन ही मन में) अच्छा, कथा-कथन का अवसर मैं समझ गया । (सुनाकर), जैसा स्वामी आदेश दें (आदेशानुसार ही आचरण करता है) ।

क्रूर—अरे हिन्तालक, जरा यहाँ तो आओ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लाशंते तिशूलअं णच्चंते अ जहाशमीहिअं।
गाअंते महुलं धुवं विहिए विहलेमि शंपदं ॥ ८ ॥

(परिक्रामतः ।)

क्रूरः—(सहर्षं गायति ।)

शुहं पिवंतए शाहुपशण्णअं पए पए खलंते अ विशंथुलं।
महाणुभावए णिब्भलमत्तए शदा विजेदु विज्जाहलभेलवे ॥ ९ ॥

अह अ—

शलशं णिहिदुप्पलअं शुलअं पिबिऊण मए वि घडंतशुभे।
विहलेमि चलेमि खलेमि अले अहके कुलुले कुलुले कुलुले ॥ १० ॥

(स्खलन्)

अले, कहं चलेदि पुढवी।

(सहासम्)

होदि विइअं खु एदं मं बलिअं मदभलेण णिब्भलिअं।
अशमत्था धालेदुं शच्चं वशुंधला चलइ ॥ ११ ॥

मैं इस समय त्रिशूल को उल्लसित करते हुए, इच्छानुसार नाचते हुए तथा मधुर-ध्रुवा-विद्या का गान करते हुए विहार करता हूँ। (८)
(घूमते हैं)

क्रूर—(प्रसन्नता पूर्वक गाता है।)

मधुर-मदिरा का सुख पूर्वक पान करते हुए, पग-पग पर चंचलता पूर्वक लड़खड़ाकर गिरते हुए, अत्यन्त मत्त महानुभाव विद्याधर भैरव सदा विजयी रहें। (९) और भी,

कमल-पुष्प जिसमें रखे हुए हैं, ऐसी सरस मदिरा का पानकर मैं मत्तावस्था में भी कल्याण करता हुआ बिहार करता हूँ, चलता रहता हूँ, लड़खड़ाता रहता हूँ। अरे भाई, मैं क्रूर हूँ, मैं क्रूर हूँ, मैं क्रूर हूँ। (१०)
(लड़खड़ाता हुआ)
अरे, क्या पृथ्वी घूम रही ? (हँसते हुए)
ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त बलवती मदिरा के भार से दबी हुई यह वसुन्धरा मुझे धारण करने में सचमुच ही असमर्थ होकर घूम रही है। (११)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अले हिंतालअ, आवज्जेहि एत्थ आपाणअचशअम्मि कुंभएण वालुणिं। अहव तेण एव्व कुंभएण आअलं पिविश्शं। (तथा कृत्वा) अले शविशेशं खु शुलशा एशा शुला (मदं नाटयन्) कहं मं विणा एक्कं महापुलिशं शाम-ण्णमाणुशं शुलोएदि वलाए लोए। ता पडिबोहिश्शं दाव।

शुणुथ शुणुथ शव्वे शव्वहा शज्जणा ए
मह चिअ चलणाणं शाहु शुश्शूशएह।
पिबिअ पिबिअ हालं खेलखेलं खलंते
विहलइ चलअंते जे शलीलं शलीलं ॥ १२ ॥

चेटः—(निर्वर्ण्य) कहं अदिभूमिं आलूढे शामिणो मदभले। तह हि
गंडूशिअ शंपदं शुलं मुहु णिट्ठीवइ शीहलच्छडं।
विज्जाहलभेलवे शअं शशलीले शअले पिहं पिहं ॥ १३ ॥

क्रूरः—(परितोऽवलोक्य) अले कहं पलिदो वि पलावेदि शुलाशमुद्दए।

अरे हिन्तालक, पीने की इस प्याली में घड़े से वारुणी (मदिरा) निकालो। अथवा, उसी घड़े से कण्ठ तक पी लूंगा। (वैसा ही करता है) अरे, यह सुरा तो विशेष स्वादिष्ट है। (मद का अभिनय करता हुआ)
मुझ जैसे एक मात्र महापुरुष को छोड़कर यह बेचारा संसार अन्य साधारण पुरुष की प्रशंसा कैसे करेगा ? अतः तब तक इस बात को समझाता हूँ—

जो सर्वथा सज्जन हैं, वे सभी (मेरी बात) बारम्बार सुन लें। (वे) मेरे ही दोनों चरणों की ठीक से सेवा किया करें। जो हाला को पी-पीकर खेल-खेल पूर्वक स्खलित होते हुए एवं लीला-पूर्वक अपने शरीर को चलाते हुए विहार कर रहा है। (१२)

चेट—(ठीक से देखकर) स्वामी का मद-भार (उन्मत्तावस्था) भला कितना बढ़ गया है ? क्यों कि—

यह विद्याधर—भैरव इस समय सफेद कान्ति वाली मदिरा की कुल्ली करके उसे बार-बार उगल दे रहा है। और इस प्रकार वह स्वयं ही अपने सम्पूर्ण शरीर में अलग-अलग दिखलाई पड़ रहा है ॥१३॥

क्रूर—(चारों तरफ देखकर) अरे चारों ओर सुरा का यह समुद्र कैसे प्लावित हो रहा है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटः—कहं शुलामअभावदाए शव्वदो इमश्श शुलाशमुद्दए पडिहाअइ।

क्रूरः—(वीचीसंपातं नाटयति) कहं उव्वेलआ एदे तलंगआ। अले हिंतालअ, एहि तलिश्शम्ह (तरणं नाटयन्)

शमुच्चलंते लहलीशदेहिं शुलाशमुद्दे शहशम्हि मग्गे।
अले अले किं अहके कलिश्शं कहं तलिश्शं अहवा पिविश्शं ॥१४॥

(श्रमं नाटयन्) अले बलिअं खु दाणिं अहके पलिश्शंते। ता एदं पलिश्शमं इमिणा मंतजवेण शमइश्शं।

शुंडा शुला पशन्ना कल्ला काअंबली महू शीहू।
मइला मज्जं महुला मेलेई वालुणी हाला ॥ १५ ॥

(पुनः पुनः पठति।)

चेटः—कहं पलिश्शंते दाणिं शामी।

क्रूरः—अले कुत्थ एण्हिं विश्शमिश्शं।

चेट—सुरामय-भाव होने के कारण इसे चारों ओर कैसे सुरा-समुद्र प्रतीत हो रहा है ?

क्रूर—(तरंगों को छेड़ने का अभिनय करता है।) ये तरंगें कैसी उद्वेलित हो रही हैं ?

अरे हिन्तालक, आओ, हम दोनों तैरें (तैरने का अभिनय करता है) सैकड़ों तरंगों से चलायमान इस सुरा-समुद्र में मैं सहसा ही डूब गया हूँ। अरे-अरे, अब मैं क्या करूँ ? क्या उसे तैर जाऊँ अथवा पी जाऊँ ? ॥ १४ ॥

(परिश्रम का अभिनय करता हुआ) अरे, इस समय मैं अत्यधिक थक गया हूँ। अतः मैं इस श्रम को मन्त्र-जाप से शान्त करूँगा—

"शुण्डा, सुरा, प्रसन्ना, कल्या, कादम्बरी, मधु, शीधु, मदिरा, मद्य, मधुरा, मैरेयी, वारुणी तथा हाला। (ये सभी शराब के पर्याय हैं) ॥ १५ ॥

(बार-बार पढ़ता है।)

चेट—स्वामी, इस समय कैसे थक गये ?

क्रूर—अरे, मैं इस समय कहाँ आराम करूँ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटः—(आत्मगतम्) पलिश्शंते विअ शामिणो मदे। ता विण्णविश्शं दाव। (प्रकाशम्) शामिआ, अज्जे खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणम्मि को कालो शामिणं पडिवालेदि।

क्रूरः—अले हिंतालअ, किं ति खु एत्तिअं वेलं तुम्हे ण भणिअं।

चेटः—शामिआ, भणिदं खु मए पुव्वं। शामिणा मदभलपलव्वशेण ण आअण्णिदं।

क्रूरः—हुं, मे पमादे। जाव तहिं गमिश्शामो!

चेटः—इदो इदो। (परिक्रामतः।)

चेटः—शामिआ, एअं खु जिण्णुज्जाणं।

(उभौ प्रविशतः।)

चेटः—(अङ्गुल्या निर्दिश्य) शामिआ, एशे खु अज्जलद्धहूदी तुह आअमणं पडिवालेदि।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—चिरायते भैरवः। (दृष्ट्वा) कथमासन्न एव नृशंसः। य एषः-

आगच्छति वपुर्बिभ्रदतिमात्रभयानकम्।
क्रूरो मूर्तिमतीवासौ वृत्तिरारभटी स्वयम्॥ १६॥

चेट—(मन में) स्वामी का मद इस समय शान्त हो गया है, अतः अब निवेदन करता हूँ। (सुनाकर) हे स्वामिन्, आर्य लब्धभूति जीर्णोद्यान में आपकी कब तक प्रतीक्षा करें?

क्रूर—अरे हिन्तालक, अब तक तुमने क्यों नहीं कहा?

चेट—हे स्वामिन, मैंने पहले ही कहा था, (किन्तु) मदाधीन होने के कारण स्वामी ने नहीं सुना।

क्रूर—हाँ, यह मेरी भूल हुई, तब वहीं चलें।

चेट—इधर से, इधर से, (दोनों आगे बढ़ते हैं)

चेट—हे स्वामिन्, यही जीर्णोद्यान है। (दोनों प्रवेश करते हैं)।

चेट—(अँगुली से दिखाकर) हे स्वामिन्, यही आर्य लब्धभूति हैं, जो आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। (प्रवेश करके)

कंचुकी—भैरव देर कर रहा है। (देखकर) वह निर्दयी क्या नजदीक में ही है? जो यह—

अत्यन्त भयंकर शरीरधारी वह क्रूर चला आ रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों आरभटी-वृत्ति ने स्वयं ही शरीर धारण कर लिया हो॥ १६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रूरः—(उपसृत्य) किं अज्ज, मए कज्जं ।

कञ्चुकी—(सशङ्कं चेटं पश्यति ।)

क्रूरः—किं लाअलहश्शं ।

कञ्चुकी—अथ किम् ।

क्रूरः—हिंतालआ, तुमं इमश्श जिण्णुज्जाणश्श बाहिले मं पडिवालेहि ।

चेटः—जं शामी आणवेदि ।

(निष्क्रान्तः ।)

क्रूरः—विश्शद्धं दाणिं भणादु अज्जे ।

कञ्चुकी—देवी केतुमती त्वामाज्ञापयति ।

क्रूरः—चिलश्श खु कालश्श देवीए केदुमदीए शुमलिदो म्हि ।

कञ्चुकी—(सविषादम्) आः कष्टम् । मयापि तावदिदं संदिश्यते ।

क्रूरः—जं वा तं वा होदु । अणुल्लंघणिज्जा खु शामिणीशंदेशा ।

कञ्चुकी—(सबाष्पं कर्णे) एवमिव ।

क्रूर—(नजदीक जाकर) आर्य, मुझे क्या करना है ?

कंचुकी—(शंका के साथ चेट को देखता है ।)

क्रूर—क्या राजा का कोई गुप्त सन्देश है ?

कंचुकी—तो और क्या ?

क्रूर—अरे हिन्तालक, तुम इसी जीर्णोद्यान के बाहर मेरी प्रतीक्षा करो ।

चेट—जैसा स्वामी आदेश । (निकल जाता है ।)

क्रूर—अब आर्य विश्वस्त होकर कहें ।

कंचुकी—देवी केतुमती आपको आज्ञा दे रही हैं ।

क्रूर—बहुत दिन के बाद देवी केतुमती ने मुझे याद किया है ।

कंचुकी—(दुःख के साथ) ओह कितना कष्ट हो रहा है, अब मेरे द्वारा ही यह सन्देश दिलवाया जा रहा है ।

क्रूर—जो कुछ भी हो, स्वामिनी के सन्देश उल्लंघनीय नहीं होते ।

कंचुकी—(आँसू बहाते हुए कान में) इस तरह,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रूरः—(सविषादं कर्णौ पिधाय) अहह का गई।

(निष्क्रान्तः क्रूरः।)

कञ्चुकी—कथममुष्यापि नाम प्रकृतिनिष्ठुरस्य दुःश्रवमेतत् संवृत्तम्। किम् इदानीमत्र स्थीयते। निष्क्रान्तश्च दुरात्मा क्रूरः। तद्यावन्नगरीमेव प्रविशामि। (परिक्रामन्) दिष्ट्या मोचितोऽस्मि दुर्वृत्तजनसंपर्कात्।

इदं तावच्चिन्त्यं सपदि सुकृतादप्यसुकृतं
परं प्रेयः प्रायो भवति निखिलस्यापि जगतः।
भवत्वेवं तावत्तदिदमविवेकास्पदधिया—
मतत्त्वश्रद्धानव्यसनपरवत्ताविलसितम् ॥ १७ ॥

किं बहुना—

भो भो दुश्चरितप्रसक्तमनसः शृण्वन्तु सर्वे जनाः
किं युष्माभिरयं वृथैव सुमहान् कालो जडैर्नीयते।
तद्यावद् विनिवृत्य पाकविरसादह्नाय दुश्चेष्टिता—
द्वर्तव्यं पुरुषार्थसाधनपथे जैनेश्वरे साधने ॥ १८ ॥

क्रूर—(दुःख के साथ, दोनों कानों को बन्द करके) हाय क्या दशा हो गई ? (क्रूर निकल जाता है)

कंचुकी—ओह, प्रकृति से निष्ठुर इस क्रूर के लिये भी यह कथन किस प्रकार अश्रवणीय हो गया। अब यहाँ मैं क्यों ठहरूँ ? दुरात्मा क्रूर निकल गया। तब मैं स्वयं नगरी में प्रवेश करता हूँ। (घूमता हुआ) सौभाग्य से मैं दुष्टजन के सम्पर्क से मुक्त हो गया।

इस समय यह अत्यन्त ही चिन्ता का विषय है कि प्रायः सम्पूर्ण संसार को सुकृत की अपेक्षा असुकृत ही प्रेय (रुचिकर) हो जाता है। इस प्रकार अतत्त्व के श्रद्धान् की अभ्यास-परता अविवेकियों के विलास का कारण होती ही है ॥ १७ ॥

अधिक क्या——

अरे दुश्चरित्र में आसक्त मन-वाले सभी लोग इसे सुनो—तुम जैसे जड़ बुद्धियों के द्वारा यह अत्यन्त महत्वपूर्ण समय क्यों व्यर्थ ही नष्ट किया जा रहा है ? अतः अब नीरस परिणाम वाली दुश्चेष्टाओं से हट कर जिननाथ के साधना-रूप पुरुषार्थ-साधन के पथ पर चलो ॥ १८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(परिक्रामति)

(आकाशे) हा हा हदा मंदभाआ। किं एअं पि मए दक्खिअदि। सव्वाओ देवआओ, सरणं खु तुम्हे। मम पिअसहीए भट्टा पवणंजअ, रक्ख दे पदिणिं। हा अज्ज पहसिअ, दक्ख दे पिअसहपदिणिं। हा महालाअ पडिसूर, रक्ख रक्ख एआरिसिं भाइणेइं। हा महालाअ महिंद, एअं पि तुह दुहिआ अणुहवेदि। हा कुमार अरिंदम, हा पसण्णकित्ति, पेच्छह तुम्हाणं लालणिज्जं एवंभूअं कणीयसिं भइणीअं।

कञ्चुकी—(श्रुत्वा, सविषादं कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। कष्टं भोः कष्टम्। एष हि तपस्विन्या वसन्तमालाया आर्तविलापः। फलितमेव क्रूर-हतकस्य क्रौर्येण। तदितो वयम्। (परिक्रामन्) अये परिणतम् अहः। तथा हि—

(घूमता है)

(आकाश में) हाय-हाय, मैं अभागिन तो मारी गयी। क्या मुझे यह भी देखना था? हे समस्त देवतागण, अब तुम्हीं सब मेरे लिए शरण हो। हे मेरी प्रियसखी के स्वामी पवनंजय, अपनी पत्नी की रक्षा करो,। हाय, आर्य प्रहसित, अपने प्रिय मित्र की पत्नी को तो देखो। हा महाराज प्रतिसूर्य, अब अपनी भागिनेयी की रक्षा करो, रक्षा करो। हाय महाराज महेन्द्र, तुम्हारी यह पुत्री दुःख का अनुभव कर रही है! हाय कुमार अरिन्दम, हाय प्रसन्नकीर्त्ते! तुम दोनों इस प्रकार से विपत्तिग्रस्त अपनी लाड़ली छोटी बहन को तो देखो।

कंचुकी—(सुनकर, दुःख के साथ दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो, ओह, कष्ट ही कष्ट है। अरे यह तो तपस्विनी वसन्तमाला का आर्त्त-विलाप है। हत्यारे क्रूर की क्रूरता से ही यह कष्ट उत्पन्न हुआ है। अब यहाँ से मैं चलता हूँ। (चलते हुए) अरे, यह तो दिन का आगमन हो गया। क्योंकि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकपद एव संप्रति हतविधिना चक्रवाकमिथुनमिदम् ।
किमपि विवशं विघटितं परस्परप्रेमगुणबद्धम् ।। १९ ।।

(निष्क्रान्तः)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचिते अञ्जनापवनंजयनामनाटके चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

इस समय अधम विधाता ने परस्पर प्रेमगुण से बँधे हुए इस विवश चक्रवाक-युगल को एक साथ ही विघटित कर दिया है ।।१९।।
(निकल जाता है)

भट्ट गोविन्दपुत्र हस्तिमल्ल द्वारा प्रणीत अंजना-पवनंजय नामक नाटक का चतुर्थ अंक समाप्त हुआ ।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि-हस्तिमल्ल-विरचितं
मैथिली-कल्याण नाटकम्

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—(निर्वर्ण्य) अम्हो इमस्स सुहसेविदा-मंदवाअत्थ-सीअल-पदोसाणिल-कअ-परिरंभस्स पुणरुत्त-विवड्ढंत-पुप्फाउह-संरंभस्स पदोसारंभस्स । दार्णि खु साअंतण-धूविज्जंत-कालाअरु-धूव-कसणा कसण-कज्जलाधिवासिदे विअ कव्वुरे अंवरे उदअ-राअ-कम्हार-खोद-संमाणिदा पडिवालेदि रोहिणी-पड़ िंतिमिरच्छडच्छणील-कोसेअओगुंठिएण णातिपरिफुड-लक्खिज्जंत-तारागण-मोत्तहारा पुव्वदिसा ।

(विलोक्य) एसो अ दार्णि उदिओ णिरंतरुप्फुल्ल-रत्त-कंकेलिकुसुम-थवअ-विब्भमो विरहि-जण-धीर-सेल-णिम्मोडण-खंडासणि-सण्णिहो, विहडअ-मिहुण-माण-गह-जणिद-रोस-रंजिअ-वअणं विअ, मम्हस्स सज्जी-कओ विअ अधिवास-सोगंधिअ-माल-बंधो, जोण्हा महु-रस-पाण-सुंडाणं, चओर-मिहु-

---

चेटी—(ध्यान पूर्वक देखकर) ओह ! शीतल प्रदोषानिल का आलिंगन करने वाला, बार-बार कामदेव की वृद्धि करने वाला, इस सन्ध्यारम्भ का मन्दपवन सुखपूर्वक सेवन करने योग्य है । इस समय यह पूर्वदिशा, ऐसी प्रतीत हो रही है मानों सायंकालिकधूम के रूप में काले अगरु और धूप से कृष्ण वर्ण की होती हुई, काले काजल के समान विचित्र आकाश में (रंगीन साड़ी में) उदय लालिमारूप काश्मीरी-केसर के चूर्ण के समान सुन्दर अन्धकार रूपी नीले रंग की स्वच्छ रेशमी घूंघट ओढ़े हुए तथा अस्पष्ट दिखाई पड़ने वाले तारारूप मोतियों का हार पहने हुए, रोहिणीपति (चन्द्रमा) की ही सेवा कर रही हो ।

(देखकर) उदित हुआ चन्द्रमा, निरन्तर खिले हुए लाल-लाल कंकेलि-कुसुम के गुच्छे का भ्रम उत्पन्न करने वाला, विरही लोगों के धैर्य रूपी पर्वत को टुकड़े-टुकड़े करने के लिये वज्र के समान, बिछुड़े हुए युगल के मानग्रह से उत्पन्न क्रोधयुक्त वचन के समान, कामदेव की अत्यन्त सुगन्धियुक्त सजायी गयी माला की तरह, ज्योत्सनारूपी मधुरस के पान करने में निपुण, चकोरयुगलों के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाणं पडिट्ठिअ-णिअ-मुह-कंति-लद्ध-सोहा-दिसओ विअ मणि-दप्पणो राईए अमअ-महण-रभस-भंगुट्ठिओ विअ मंदर-गिरि-सिहरट्ठिओ-सोअरो-विण्हु-चूड़ामणि-किरण-वासण-दिउण-सोणिमं विअ सेस-फणि-फणा-मंडलं थणं-सुओवारिअ-एकत्थणाए इदरो विअ कुंकुम-पंक-पंकिलो थणो जोह्णा-वहुए जलणिहि-तरंग-विक्खितो विअ पवाल-पहा-पाडलिओ संखवो दिणअर-विरह-परिदाविआए थणंविअ सिसिरोवआर-कमलिणिपत्तो गअण-लच्छीए हरिचंदण-तिलअं विअ णिसह-गिरि-गअवरस्स। किल्ला-कंदुओ विअ णिसिहि-कण्णअए अणंग-विजअ-डिंडिम-पोक्खर-पवट्ट-वट्टुलो पदुम-णाह-णाहिसर परूढं विअ हेम-पोक्खरं कामुअ-जण-मणोरह-परिवट्टणेक्क-रहंग-भूदो मअरद्धअ-विजअ-रहंग-भूदो-सिंधूरिओ विअ एरावण-कुम्भो। लावण्ण-रस-णिहाण-रअण-कुम्भो अंभोइणो-सत्तू।

अज्ज हि कमलोअर-घरब्भंतर-णिग्गया मुदिद-कलहंस-णेउर रवा

मणि और दर्पण के समान विख्यात अपनी मुख-शोभा द्वारा अत्यन्त सुन्दरता को प्राप्त करने वाला, अमृत-मन्थन के प्रबल प्रवेग से उठे हुए शेषनाग के उन फणों के समान, जो मन्दराचल-शिखर पर स्थित, फुहारों से युक्त विष्णु की चूड़ामणि की किरणों के लगने के कारण द्विगुणित लाल-लाल हो गये हैं। एक स्तनवाली ज्योत्स्नारूपी वधू के उस स्तन के समान, जो कुंकुम से लेप किया गया है और उसके ऊपर का वस्त्र खिसक गया है, समुद्र के प्रवाह में फेंके गये शंख के समान जो मोतियों की कान्ति से लाल हो गया है, सूर्य के विरह से परितापित गगनरूपी लक्ष्मी के स्तनांग-राग से मानों लाल हो गया है, अथवा उसके शिशिरोपचार के लिये कमलिनीपत्र के समान, निषधपर्वत में रहने वाले गजवर के हरिचन्दनतिलक के समान, रात्रि-कन्या के लिये क्रीडाकन्दुक के समान, कामदेव-विजय के लिये नगाड़े का काम करने वाले कमल के समान गोल, भगवान् विष्णु के नाभि-सर में उत्पन्न स्वर्णकमल के समान, कामुकजनों के मनोरथों का परिवर्त्तन करने के लिये एक अंग के समान, कामदेव पर विजय के हेतु चक्र के समान, सिन्दूर से लिप्त ऐरावत के मस्तक के समान सौन्दर्यरूपी रस को धारण करने वाले रत्नकुम्भ के समान (दिखाई पड़ रहा) है।

आज तो कमलोदररूप घर के भीतर से निकली हुई कलहंस रूप नूपुर शब्द को रोकी हुई, सारस रूपी रसना (करधनी) को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विसंत-सारस-रसणा सीआ पडिणव-समाअम रस-रसिआ-अभिसारेइ तक्कालः समुच्छसंतं कुमुदाअरं लच्छी।

(विचिंत्य) एअं च सव्वं मे उपआरअं सिसिरोअवआर-किरिआए। जाव सज्जी-कअ-सिसिरोवआरं सज्जिअं चंद-अंत-दार-घरअं णिवेदेमि भट्टदारिआए कहिं खु दाणि सा वट्टइ ?

(ततः प्रविशत्यपरा चेटी)

चेटी—अणत्तम्हि भट्टिदारिआए सीदाए जह हंजे सुउमारिए वलवई खु मे दाणिं सोसावेअणा को कालो अ चंडअंतदारादरअं सज्जीकाउं गआए पिअसंहिए कोमुदीआए। ता तुए सिग्घं आणिअ आअंतव्वंति जाव तहिं गच्छेमि। (परिक्रामति)

प्रथमा—(विलोक्य) का उण एसा इदो अभिवट्टइ (निरूप्य) कहं पिअसहि सुहुमारिआ।

द्वितीया—(दृष्ट्वा) कहं पिअसहि कोमुदीआ।

प्रथमा—सहि कुदो आअच्छसि।

मुखरित करती हुई सीता के नये समागमरस की रसिक लक्ष्मी इस समय स्थित सरोवर के प्रति अभिसार कर रही है।

(कुछ विचार कर) शिशिरोपचार-क्रिया के लिये ये सब जब तक मेरे उपकारक हैं, शिशिरोपचार के साधन सुरक्षित कर दिये गये हैं, तब तक सुसज्जित चन्द्रकान्त धारागृह के विषय में स्वामिनी से निवेदन करती हूँ। इस समय वे हैं कहाँ ? (इसके बाद दूसरी चेटी प्रवेश करती है)

चेटी—स्वामिनी सीता ने मुझे आज्ञा दी है कि "हे सुकुमारिके ! इस समय मेरे सिर में अति तीव्र वेदना हो रही है। चन्द्रकान्त-धारागृह को सजाने के लिये प्रिय सखी कौमुदिका को गये कितना समय हो गया है ? अतः तुम (उसे) शीघ्र ही समझाकर आ जाओ। तब तक मैं वहीं जाती हूँ (आगे बढ़ती है)।

पहली—यह इधर कौन आ रही है ? (ठीक से देखकर) क्या प्रियसखी सुकुमारिका है ?

दूसरी—(देखकर) क्या प्रियसखी कौमुदिका ?

पहली—सखि ! कहाँ से आ रही हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया—हला कोमुदीए अहं खु इदो आअच्छंतीए तुमं चिराअसित्ति दाणिं दु भट्टदारिआए अग्गदो णिउत्ता। किं तुए सज्जीकअंतं धारा-घरअं ?

प्रथमा—आम ।

द्वितीया—हला चिट्ठदु एअं को णु एसो भट्टिदारिआए संदाओ जो सिसिरोवआरेहिंपि पच्चहं वड्ढेदि ।

प्रथमा—रहस्से खु दाव अप्पावि संकिदव्वो ।

द्वितीया—एव्वं एदं तहवि रहस्सेति भणंति । अइमेत्तं मं ऊसिएसि ।

प्रथमा—कहं वा पिअसहिए रहस्सं रक्खेमि सुणाहि दाव ।

द्वितीया—अवहिदह्मि ।

प्रथमा—हंजे एवं खु अहं तुमं विअ पुणो णिव्वंधिअ पुच्छंति पिअस-हीए भणिदम्हि कलावईए जह सहि कोमुदीए पुव्वं खु वसंतदोलारोहण-दिणे कामदेवघरब्भंतरे दिट्ठो भट्टदारिआए भट्टा रामो पुणो अ माहविवणे अप्पम्हि उक्कंठंतो दिट्ठो सो एव्व दाणिं भट्टिदारिआए संदावहेउत्ति ।

दूसरी—सखि कौमुदिके ! इधर से आती हुई भर्तृदारिका (स्वामिनी) ने मुझे आगे भेजा है कि तुम इस समय देर (क्यों) कर रही हो ? क्या तुमने उस धारागृह को सजा दिया है ?

पहली—'हाँ' ।

दूसरी—सखि ! भला यह बताओ, स्वामिनो को कौन सा ऐसा सन्ताप है, जो शिशिरोपचारों के होने पर भी प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है ?

पहली—रहस्य के विषय में अपने उपर भी संदेह रखना चाहिए ।

दूसरी—इस प्रकार "रहस्य" कहकर तुम मुझे और भी उत्सुक बना रही हो ।

पहली—प्रियसखी से रहस्य कैसे छिपा सकती हो ? सो सुनो

दूसरी—(मैं) सुनती हूँ ।

पहली—हे सखि, तुम्हारी ही तरह बार-बार आग्रहपूर्वक पूछती हुई मुझसे सखी कलावती ने कहा था—"हे सखि कौमुदिके ! पहले वसंत-दोलारोहण के दिन कामदेवगृह के भीतर स्वामिनी की पति राम पर दृष्टि पड़ी" और फिर माधवी-वन में वे स्वयं उत्कण्ठित होते हुए दिखलायी पड़ गये । वे ही इस समय स्वामिनी के संताप के कारण बने हुए हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया—हला जुंजइ।

प्रथमा—हला किं दाणिं अम्हे भट्टिदारिआ पासं गच्छेमो आदु चंद-अंतधाराघर एव पडिवालेमो।

द्वितीया—एव्वं खु अहं पिअसहिए भणिदह्मि विणीदाए जह सहि सुउमारिए बहुजणपलाव ण सहइ सीसवेअणादिरेअदो भट्टिदारिआ ता सहिअणंपि सव्वं पमअवणदुवारे एव्व णिसिहेहित्ति।

प्रथमा—तेण हि तुमं तं णिओअं अणुचिट्ठ, अहं पि सज्जीकअं धारा-घरअं भट्टिदारिआए णिवेदेमि।

द्वितीया—सहि तह।

(निष्क्रांते)

(ततः प्रविशति सीता विनीता चेटी च।)

सीता—हंजे कोमुदीए किं साहु सज्जिअं चंदअंतधाराघरअं।

चेटी—किं ण सज्जीकरेइ चंदअंतधाराघरअं कोमुदीआ।

दूसरी—सखि, ठीक कहती हो।

पहली—सखि, इस समय हम दोनों स्वामिनी के पास चलें अथवा चन्द्रकान्त धारागृह में ही प्रतीक्षा करें।

दूसरी—प्रियसखी विनीता ने मुझे कहा है कि "सखि, सुकुमारिके, शिरो-वेदना के आधिक्य से भर्तृदारिका बहुत लोगों की बातें सहन नहीं करती, इसलिए, सम्पूर्ण सखीजनों को प्रमदवन के द्वार पर ही रोक दो।

पहली—इसलिये तुम उस आदेश का पालन करो। मैं भी सजाये गये धारागृह को भर्तृदारिका (स्वामिनी) के लिये निवेदित करती हूँ।

दूसरी—सखि, ऐसा ही हो। (दोनों निकल जाती हैं)

(सीता, विनीता और चेटी का प्रवेश होता है)

सीता—सखी, कौमुदिके! क्या चन्द्रकान्त-धारागृह ठीक से सजा दिया गया?

चेटी—क्यों नहीं? कौमुदिका ने चन्द्रकान्तगृह को भलीभाँति सजा दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता---हला साहु भणिअं जाव तुमं गदुअ जह भट्टिदारिआ सीस-वेअणं सुणिअ ण किलम्मइ भट्टिणि वसुहा जहि तहि वा विहारावदेसणिवेदणेण अणिव्विण्णं करेहि ।

चेटी---जं पिअसहि भणादि । (निष्क्रांता)

विनीता---इदो इदो भट्टिदारिआ ।

(उभे परिक्रामतः)

विनीता---एअं पमदवणं जाव पविसम्ह ।

(उभे प्रविशतः)

सीता---(विचिंत्य) पिअसहि किं इमो अम्हाणं उज्जोवो कदाइअ-मोहो आदु हिअअस्स एस मोहो ।

विनीता---भट्टदारिअं एवं णिउज्जंतो मअणो भट्टिणंपि तुरिदं तुह पाहुडिअं कुणइ ।

सीता---संहि दुस्सहं खु तवइ चंदादवो जाव एअं परिहरंतिअ इमाए पच्छाआए वउलवालिआए च्छाहिं गच्छेमि (तथा परिक्रम्य) सहि सो एव्व वरं चंदादओ एत्थ खु उवरि णिवडंतेहिं कुसुमवाणविजयवाणेहिं विज्झेदि वउलकुसुमेहिं मे सरोरं ।

विनीता—सखि, ठीक कहा, स्वामिनी वसुधा जब तक भर्तृदारिका की शिरः पीड़ा सुनकर दुखी हों, उसके पहले ही विहार करने के बहाने उसे सुखी करो ।

चेटी—प्रिय सखी, जैसा कहें । (वह निकल जाती है)

विनीता—इधर से स्वामिनी, इधर से । (दोनों घूमती हैं)

विनीता—यही प्रमदवन है, तबतक हम इसमें प्रवेश करें । (दोनों प्रवेश करती हैं)

सीता—(सोचकर) हे प्रिय सखि, क्या हमलोगों का यह उद्योग सफल होगा, अथवा यह हृदय का मोह मात्र है ?

विनीता—कामदेव तुम्हारी स्वामिनी को नियुक्त करता हुआ शीघ्र ही उसके भर्त्तार को अतिथि बना देगा ।

सीता—हे सखि ! चन्द्रातप असह्य रूप में प्रदीप्त हो रहा है, तबतक इससे हटकर पीछे स्थित इस बकुल-वाटिका की छाया में चलती हूँ । (उसी प्रकार घूमकर) हे सखि, वह चन्द्रातप ही अच्छा है । यहाँ तो ऊपर से गिरते हुए कामदेव के विजय-वाणों के समान बकुल के फूलों से मेरा शरीर विद्ध हुआ जा रहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता--(अग्रतो निर्दिश्य) एअं चंदअंतधाराघरअं जाव पविसम्म ।

सीता--सहि तह ।

(प्रविशतः)

विनीता--भट्टिदारिए एअं सव्वदो सज्जीकअसिसिरोवआरं णिस्सं-दजंतधारासहस्सं चंदअंतधाराघरअं एसा अ एत्थ तमालपल्लवसज्जा ! जाव इदं एव्व तुह संताओ अवणिज्जदु ।

सीता--जं पिअसहि भणादि । (उपविश्य) हंजे विणीदे एताइ तमाल-दलाइ दलंतीव हिअअं उम्हाअताए ।

विनीता--तेण हि इमाइ चंदणपल्लवरसेण सिंचेमि । (तथा करोति)

सीता--हंजे णिप्पीडिदं विअ चंदणपल्लवेहिं सह मे हिअअं ।

विनीता--जाव इमाए गंधणीहारेण सिदाए जलंदाए वीजेमि । (तथा करोति) ।

सीता--हला गंधणीहारसेअदो सिण्णं मे सरीरं ।

विनीता—(आगे दिखाकर) यह चन्द्रकान्त-धारागृह है, तब हम इसमें प्रवेश करें ?

सीता—हाँ सखि, ऐसा ही हो । (दोनों प्रवेश करती हैं)

विनीता—हे स्वामिनी, पूर्ण रूप से सजाया गया, शिशिरोपचार से युक्त तथा जिससे यन्त्र द्वारा हजारों धाराएँ निकल रही हैं, ऐसा यह चन्द्रकान्त-धारागृह है और यह तमालपल्लवों की शैय्या है । तब तक हम यहीं आपका संताप दूर करें ।

सीता—प्रिय सखी, तुम जैसा कहो । (बैठकर) सखि, विनीते, ये तमाल के पत्ते मेरे हृदय को गर्मी की ज्वाला के समान लग रहे हैं ।

विनीता—अच्छा, इस समय मैं आपको इस चन्दनपल्लव के रस से सींच रही हूँ । (वैसा ही करती है)

सीता—हे सखि, चन्दन-पल्लवों से मेरा हृदय मानों पीड़ित हो रहा है ।

विनीता—अच्छा, तब तक इस चिकने एवं जल से भींगे हुए गंधनी के हार से हवा करती हूँ । (वैसा ही करती हैं)

सीता—सखि, गंधनीहार की सेक से मेरा शरीर कुम्हला गया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता—(स्पृष्ट्वा) कहं एसो गंधणीहारो से दुब्भेदो परिणदो जाव इमेहिं कप्पूरचुण्णेहिं पडीकरेमि। (तथा करोति)।

सीता—हंजे चुण्णेदि मे हिअअं कप्पूरचुण्णं।

विनीता—तेण हि इमिणा मोत्तापलक्खोदसल्लित्थेण केलिपत्तेण बीजामि (तथा करोति)।

सीता—हला, एअं मोत्तिअखोदधवलिअधारं केलिपत्तं असिपत्तं विअ अणंगस्स उल्लसंतं पेक्खंति भाअदि मे आदा ता जाव तं अण्णदो विक्खिव अहव मा खु तं मुंच एसो खु जंतणिवडंतचंदअंतणोसंदमंदहुंकारमुच्छिदो मं दाणिं मंदाणिलहदवो जाव तेण कअलीपत्तेण एअं मलआणिलं पडिवीजंती अण्णदो ओसरेहि।

विनीता—कहं एस णिवारिज्जइ सदागई जाव इमिणा चंदअंतणिस्संदपलाविदेण कल्लहारदलेण तुवं वीजेमि। (तथा करोति)

सीता—हंजे चंदअंतणिस्संदावदेसेण णिस्संदहि मे हिअअं जाव कमलिणीपत्ताइ समप्पेंति पडिअवच्छावेदि।

विनीता—(छूकर) यह गन्धनीहार इसके लिए दुर्भेद्य कैसे हो गया ? तब इन कपूर के चूर्णों से इसका प्रतिहार करती हूँ। (वैसा ही करती है।)

सीता—सखि, कपूर का चूर्ण मेरे हृदय को भी चूर-चूर कर रहा है।

विनीता—इसलिये इस मुक्ताफल के चूर्ण से लिप्त केले के पत्ते से हवा करती हूँ। (वैसा ही करती है।)

सीता—हला, यह मौक्तिकचूर्ण से धवलित अग्रभागवाला कदलीदल कामदेव की चमचमाती तलवार की तरह दिखलाई पड़ता है, जिससे मैं डर रही हूँ। इसलिये उसे अलग फेंक दो। अथवा, उसे मत छोड़ो, यन्त्र से निकलते हुए चन्द्रकान्त के मन्द हुंकार से मूर्च्छित, यह हत्यारा मन्द-पवन इस समय मुझे मूर्च्छित कर रहा है, इसलिये उसी कदली-पत्र से इस मलयानिल को प्रतिकूल हवा करती हुई दूसरी ओर हटा दो।

विनीता—यह सततगति वाला भला कैसे रोका जा सकता है ? इसलिये इस चन्द्रकान्त निष्यंद से धुले हुए कल्लहार-दल के द्वारा तुम्हें करती हूँ। (वैसा ही करती है।)

सीता—अरे, चन्द्रकान्तनिष्यंद के बहाने से मेरा तो हृदय ही पिघला जा रहा है, अतः कमलिनी-पत्रोंको लगाते हुए उसको (निष्यंद को) रोक दो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनोता—(तथाकुर्वंती) कहं मुणालिणीपत्ताइ अधिगमिअ अंगहत्थो वि मे उम्महाविज्जई। जाव संदावसुक्खपेरंताइ सिंचेमि मुणालिणीपत्ताइ एआदलरसेण। अहव ताइ सूखाइ मुणालिणीपत्ताइ परिचइअ चंदकलाकोमलाइ मुणालाइ इमिए अंगेसु समप्पेमि। (तथाकरोति)।

सीता—हला एआइ विसकंदाइ सच्चं विसकंदाइ।

विनीता—किं दाणिं करेमि होदु जाव इमाए अंगेसु भरिआइ एआइ सकुसुमाइ उप्पलकुसुमकंडाइ समप्पेमि। (तथा करोति)

सीता—हंजे एदे खु णं उप्पलकुसुमकंदा कुसुमबाणस्स कंदा ता किं तुए करिअदि।

विनीता—कहं विदेहोवि सअं दड्ढहुमम्महो दहइ अअं विदेहपुत्तिं (सचिंतं) हं किं करिस्सं होदु जाव एदाइ मोत्तिअसराइ संतप्पेंती लघुकरेमि इमाए संदावं। (तथा करोति)।

विनीता—(वैसा ही करती हुई) कमलिनी-दलों को प्राप्त कर भी इसके अंग कैसे गर्म हो रहे हैं ? अच्छा, तब तक संताप से जिनके छोर सूख गये हैं, उन मृणालिनीपत्रों को इलाइची दलों के रस से सिंचित करती हूँ अथवा, उन सूखे मृणालिनी-पत्रों को छोड़कर चन्द्रकला के समान कोमल मृणालों को ही इसके अंगों पर रख देती हूँ। (उसी प्रकार करती है।)

सीता—अरे, ये कमलनाल (विसकन्द) सचमुच ही विषकन्द (जहर के मूल) हो रहे हैं !

विनीता—अब इस समय क्या करूँ ? अच्छा, तब तक इसके अंगों पर पुष्प सहित रखे गये इन कमलनालों को ही रखती हूँ। (वैसा ही करती है।)

सीता—हे सखि, तुम क्या कर रही हो ? ये कमलनाल तो वस्तुतः पुष्पवाण के समुदाय ही हैं।

विनीता—शरीर रहित होकर स्वयं जला हुआ यह कामदेव विदेह-पुत्री को क्यों जला रहा है ? मैं क्या करूँ ? अच्छा तब तक इन मोतिशरों (मोती की लड़ियों) को जल से भिगाती हुई मैं इसके संताप को दूर करती हूँ। (वैसा ही करती है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीता—हला विणीदे एदे खु सरा सरा एव्व मम्महस्स ।

विनीता—भट्टदारिए पेक्ख दाव देक्खामहुरं कोमुदी गअणगंगं उडुवेण विअ अलंकरिज्जंतं उडुवेण ।

सीता—हला इमस्सिं अवारे चंदिकासमुद्दे मज्जंतं अलद्धुच्छासं अप्पाणं धारेदुं ण पारेमि ।

विनोता—हद्धि हद्धि ।

सीता—सहि सव्वंवि सहिदुं सक्कत एस पुण अणण्णसाहारणं खु मोहेइ मं चंदमोहो ।

विनीता—(सखेदं) कहं हरिणी वेधेण विअ चकोरिए चंडादवेण विअ चंदादवेण संधुक्खिदो इमाए संदावो ।

सोता—(संतापमभिनीय) संदावस्स तवति पडिआरो जइ खु कोमुदी एव्व सहि भण्णए एत्थ अण्णो पडिआरो कोमुदी एव ।

सीता—सखि, विनीते, ये शर (लड़ी) सचमुच ही कामदेव के शर (बाण) प्रतीत हो रहे हैं ।

विनीता—हे स्वामिनि ! देखो, देखने में मनोहर यह कौमुदी तारों सहित ऐसी लग रही है, मानों छोटी-छोटी नावों के द्वारा आकाश-गंगा को ही सुशोभित किया जा रहा है ।

सीता—सखि, मैं इस अपार चाँदनी रूपी समुद्र में डूबते हुए, साँस न लेते हुए, अपने को स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो पा रही हूँ ।

विनीता—हाय, धिक्कार है । बड़ा कष्टप्रद है ।

सीता—सखि, सबकुछ सहन किया जा सकता है, किन्तु यह चाँदनी-समूह मुझे विशेष रूप से मोहित कर रहा है ।

विनीता—(दुःख के साथ) व्याघ (शिकारी) के द्वारा हरिणी तथा उग्रआतप से चकोरी जिस प्रकार सन्तप्त रहती है, उसी प्रकार इसका सन्ताप ज्योत्स्ना के कारण और भी सुलग गया है ।

सीता—(सन्ताप का अभिनय करके) हे सखि, यदि इस सन्ताप का कारण कौमुदी (चाँदनी) ही है, तो इसका प्रतिकार (उससे बचने का उपाय) भी कौमुदी (कौमुदिका नामकी सखि) ही है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता--भट्टिदारिए दक्ख एदं खु गअणगंगाए सुरदंतिदंतवलिहा-घादेण अंताणुभिण्णा दीग्गवट्टं विअ विभाइ पवट्टिअकोमुदोणिम्मल-जलपवाहविक्खित्तणक्खत्तवुव्वुदजालं अमअमऊखविंबं।

सीता--हला एअं चंदहदअं णिज्झाअंतीए चंदअंतोवलं बिअ मे लोअ-णजुअलं होलजलाविलं।

विनीता--तेण हि मुणालहारपत्तबंधं जलपेडलं अच्छिसु कपोलेसु थणे-सु अ समेंप्पति अदिवाहेहि परिदावं (उपनयति)।

सीता--(आदाय तथाकृत्वा) हला दाणिं खु मे अहिअं उग्गलंति अच्छिणीवाहं वाहं च।

विनोता--हद्धि।

सीता--सहि तं करेहि मे सीसवेअण्णपडिकरिअं।

विनीता--तेण हि चंदणललाडिअं रचयेमि। (तथा करोति)।

सीता--सहि सअं विअ सीसवेअणा एस गोसीसलेओ।

विनीता—स्वामिनी, आकाश रूपी गंगा में चन्द्रबिम्ब को तो देखो, जिसके प्रकाश रूपी निर्मल-जल में नक्षत्र रूपी बूंदें सुशोभित हो रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों, ऐरावत के दन्ताघात से मृणाल-समुदाय ही टुकड़े-टुकड़े हो गया हो।

सीता—सखि, इस हत्यारे चन्द्रमा को देखते हुए मेरे दोनों नेत्र चन्द्रकांतमणि के समान अत्यन्त जलमय हो गये हैं।

विनीता—इसीलिये, आँखों, कपोलों और स्तनों पर मृणाल का हार, पत्तियों की पट्टी एवं जल के छींटे देती हुई अपने परिताप को दूर करें। (उन्हें ले आती है)

सीता—(लेकर तथा वैसा ही करके) सखि, इस समय मुझे आँखों का झड़कना और अश्रु-प्रवाह ये दोनों ही अत्यन्त कष्ट दे रहे हैं।

विनीता—हाय धिक्कार है।

सीता—हे सखि, ऐसा करो कि मेरी शिरोवेदना दूर हो जाय।

विनीता—इसीलिये उसके लिए चन्दन की पट्टिका बनाती हूँ। (वैसा ही करती है)।

सीता—हे सखि, शिरोवेदना के लिए स्वयं भी गोशीर्ष-लेप लगाती हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता—भट्टिदारिए एअं विसतंतुदुउलवासिणीं मुणालाभरणदारिणीं दिण्णचंदणचच्चकीं केसरकिअत्थासअं मालदिमालधारिणीं आमुक्कमल्लिआमउलभारं णोमालिआभालिआमेहलं चंदअंतपुत्तिअ आलिंगंती संदावं ते उद्धणाहि।

सीता—हला सुट्ठु भगिअं (तथाकृत्वां) सहि चंदअंतपुत्तिए किं मइत्तोवि अहिअदरं तुइ णिद्दओ एस मम्महहदवो। जेण तुवं वि एवं णाम परिकरसिसिरोवआरा एआरिस संदावं उव्वहेसि।

विनीता—भट्टिदारिए सिसिरोवआरो खु ण दे सिसिरोवआरो मण्णे सिसिरोवआरमोअणं व दाणि सिसिरोवआरोत्ति।

सीता—हंजे किं करेमि सव्वदोवलग्गं मअणसरासरो सरधि विअ खु मे आदा कुसुमाउहस्स।

विनीता—को अण्णो एसो आदा सरहि एव्व (इत्यर्धोक्ते)।

सीता—(सहर्षं) कहि कहिं अज्जउत्तो।

विनीता—हे स्वामिनी, विसतन्तु की साड़ी पहनने वाली, मृणाल के आभूषण-धारण करने वाली, चन्दन के लेप वाली, शरीर में केसर लगाये हुए, मालती की माला धारण किये हुए, मल्लिका के मुकुलभार को धारण करती हुई, नवमालिका की माला की करधनी पहिने हुए, इस चन्द्रकान्त पुत्रिका (चन्द्रकान्तमणि से बनी प्रतिमा) का आलिंगन करती हुई तुम अपने सन्ताप को दूर करो।

सीता—सखि, ठीक कहा। (वैसा ही करके) हे सखि, चन्द्रकान्तपुत्रि, क्या वह हत्यारा कामदेव मुझसे भी अधिक तुम्हारे ऊपर निर्दयी हो गया है, जो तुम शिशिरोपचारों को धारण करके भी इस प्रकार संतप्त हो रही हो?

विनीता—हे स्वामिनी। शिशिरोपचार निश्चय ही तुम्हारे लिये शिशिरोपचार नहीं है। मैं तो मानती हूँ कि इस समय शिशिरोपचार का त्यागना ही शिशिरोपचार है।

सीता—हे सखि, मैं क्या करूँ? सभी ओर से काम बाणों के लगने से मेरी आत्मा कामदेव के तरकस की तरह हो गयी है।

विनीता—क्या यह शरधि (बाण को धारण करने वाला राम) ही दूसरी आत्मा है। (इस प्रकार आधा ही कहने पर)

सीता—(खुशी के साथ) कहाँ हैं, कहाँ हैं, आर्यपुत्र?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता—भट्टदारिए एवं खु अहं वत्तुकामो को अण्णो एसो आदा सरहि एव्व दे आउंखणिमग्गपुप्फाउहवाणसहस्सोत्ति।

सीता—हंत कुदो मे तारिसा भाअदेआ जेण दाणिं अज्जउत्तो सअं आअदुअ अच्छीणं मे ऊसवं देइ।

विनीता—भट्टिदारिए मा खु तह संतप्पिअ अवस्सं खु पिअसहि कलावई ण दे अण्णहा भणाइ त्ता एत्थ पविट्ठ एव्व जाणिहि भट्टिणिआ वइदो मुहुत्तअं पडिवालेम।

(ततः प्रविशति रामो विदूषकश्च)

रामः—

तप्तव्योमा तपनकिरणैः वासरस्तु प्रकामं
संतापानां भवतु विषयो दुःसहानाममीषाम्।
सः स्यात्तस्यां निशि च शशिनो ज्योत्स्नया शीतलायां
चित्रं जातो द्विगुणितगुणो हंत संताप एषः ॥ १ ॥

विदूषकः—भो वअस्स पेक्ख पेक्ख मअरद्धअविजअरज्जाहिसे असलिलप्पवाहस्स विअ सोहग्गं जोह्णापूरस्स।

विनीता—हे स्वामिनी ! मैं यह कहना चाहती हूँ कि क्या यह आपकी दूसरी आत्मा शरधि ही है, जिसमें कामदेव के पंख सहित हजारों बाण डूबे हुए हैं।

सीता—हाय, मेरे वैसे सौभाग्य कहाँ ? जिससे कि इस समय आर्यपुत्र स्वयं आकर मेरी आँखों को उत्सव प्रदान करें।

विनीता—हे स्वामिनी ! इस प्रकार संतप्त न हों। प्रिय सखी कलावती ने निश्चय ही आपको असत्य नहीं कहा होगा। इसलिये भट्टिनी के कथन को यहाँ प्रविष्ट ही समझो। कुछ समय तक हम यहीं प्रतीक्षा करें।

(राम और विदूषक का प्रवेश होता है)

राम—सूर्य की किरणों से आकाश को तप्त करने वाला दिवस इन दुःसह संतापों का विषय भले ही हो जाय, किन्तु आश्चर्य का विषय तो यही है कि चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से शीतल रात्रि में भी वह (वासर) द्विगुणित संतापकारी हो गया है ॥ १ ॥

विदूषक—हे मित्र, देखो-देखो कामदेव की विजय-हेतु राज्याभिषेक के जल-प्रवाह की तरह चाँदनी-प्रवाह का सौन्दर्य दिखलाई पड़ रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामः—(निर्वर्ण्य) हंत शोचनीयाः खलु विरहिणः। ते हि

प्रसर्पंतीं ज्योत्स्नां मदनविजयारंभरभसा
प्रमर्दोत्थां धूलिं किल वियति पश्यंते विधुराः।
किमन्यं मन्यंते मलयगिरिवांताश्च पवनान्
सकोपं प्रोन्मुक्तान्यममहिषशूत्कारमरुतः ॥ २ ॥

विदूषकः—वअस्स किं ण णिव्वापेदि तुह हिअअं एसा णीहारबिंदु-कोमला कंठावलंबिणी हारलदा।

रामः—वयस्य मैवं पश्य।

न सोऽयं शीतांशुर्जरठतपतप्तो रविरसौ
न चैषा ज्योत्स्नाया शिखि सुहृदसावातपशिखा।
न चैते हारा यत्तरणिमणिमाला स्फुटमिमा
न चेदंगान्येवं प्रियसख तपेयुः कथमिव ॥ ३ ॥

विदूषकः—हंत कहं एसो वड्ढेदि संदावं वअस्सस्स वह्लबंधुकुमुदिणी-बंधू।

रामः—वयस्य आदेशय मार्गं प्रमदवनस्य।

राम—(देखकर) हाय, वियोगी लोगों की दशा चिन्तनीय है। क्योंकि वे—

लोग आकाश में छिटकती हुई चाँदनी को कामदेव के विजय-प्रस्थान के प्रवेगाधिक्य से उठी हुई धूलि के रूप में देख रहे हैं और क्या, मलयाचल से चली हुई हवा की वे (वियोगी) यमराज के भैंसे द्वारा क्रोध पूर्वक छोड़ा गया शूत्कारपवन मानते हैं? (२)

विदूषक—हे मित्र, ओस-कण के समान कोमल कंठ में लटकती हुई यह हारलता क्या तुम्हारे हृदय को सुख प्रदान नहीं कर रही है।

राम—मित्र, इसे ऐसा मत देखो। क्योंकि—

यह चन्द्रमा, चन्द्रमा नहीं है बल्कि इसे तेज ताप से तपता हुआ सूर्य ही समझो। यह चन्द्रिका नहीं है, अपितु आग से उठने वाली तप्त लपटें ही हैं। ये हार नहीं हैं, बल्कि स्पष्ट ही वह सूर्य-कान्त मणियों की माला है। यदि ऐसा न होता तो, हे प्रिय मित्र, मेरे अंग तप्त क्यों हो रहे हैं? (३)

विदूषक—हाय, यह दुष्ट चन्द्रमा, मेरे मित्र का संताप क्यों बढ़ा रहा है?

राम—मित्र, प्रमदवन का रास्ता दिखाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—एअं उत्तरदो माहविवणं एसा अ इमस्स दक्खिणदो पुप्फ-वाणिआ जाव इमाणं अंतरेण गच्छम्ह ता इदो पिअवअस्सो ।

(परिक्रामतः)

रामः—(मदनावस्थां नाटयन्) ।

निःशेषानद्य यूयं पिवत विनिपतच्चंद्रपादांश्चकोरा
हे राहो व्यात्तवक्त्रः सकलमपि गिल त्वं सुधासूतिविंवम् ।
वातानाचूषतैनान्मलयजफणिनश्चंदनामोदसांद्रान्
गृण्हीत ज्या द्विरेफा मधुपृषितमुचः कौसुमान् कामबाणान् ॥ ४ ॥

(विचिंत्य) अलमनया केवलमशोधितमूलया बहिर्जल्पलीलया । तदिदानीं मन्मथमेव मूलमनुशिष्मः ।(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा)

मनसिज विषयांस्तांस्त्वं मनस्विप्रणिंद्यान्
जहिहि न हि गुणस्ते तेषु संसर्ग एषः ।
न चरितमथवाहो तेऽन्यथा कर्तुमर्हं
भवति च मधुपानां यद्गणस्ते गुणाय ॥ ५ ॥

विदूषकः—वअस्स एदं पमदवणपच्छिमदुवारअं ।

विदूषक—उत्तर दिशा की ओर यह माधवीवन है और इससे दक्षिण में वह पुष्प-वाटिका रही । जब तब इन दोनों के बीच से हम चलते हैं, तब तक प्रिय मित्र हम लोग इधर से चलें । (दोनों घूमते हैं)

राम—(मदनावस्था का अभिनय करते हुए) ।

हे चकोरो, आज गिरती हुई सम्पूर्ण चन्द्रकिरणों को तुम लोग पी जाओ । हे राहु, मुँह फैलाकर, तू सम्पूर्ण चन्द्रबिम्ब को निगल जा । धनुष की डोरी बनने वाले हे मलयगिरि के सर्पों, चन्दनगन्ध से व्याप्त इन हवाओं को तुम सब चूस जाओ । हे भौंरों, मधु की बूंद-बूंद टपकानेवाले पुष्प-निर्मित कामबाणों को तुम पकड़ लो । (४)

(सोचकर) वास्तविकता से हटकर इस प्रकार वाह्य जल्पना व्यर्थ है । इसीलिये अभी मूलरूप से कामदेव को ही समझाता हूँ । (आकाश में लक्ष्य करके)—"हे काम ! तू मनस्वी लोगों द्वारा निन्दित उन विषयों को समाप्त कर दे । क्योंकि उनसे सम्पर्क रखना यह तेरा गुण नहीं, अथवा, तुम्हारा यह चरित्र बदलने लायक नहीं है । क्योंकि मधुपों (भ्रमरों) के समुदाय से सम्बन्ध रखना ही तुम्हारा गुण है ।

विदूषक—मित्र, यह प्रमदवन का पश्चिमी द्वार है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामः—यागत्प्रविशावः।

(प्रविशतः)

विदूषकः—वअस्स णिव्विसेहि एअं जोण्हापूरतरंगं मं विअ सुहसिसिर-परिस्सं पओसाणिलं।

रामः—

तामिस्र एव पवनो विरहिजनोत्पातपांशुवृष्टिरिव।
उत्फुल्लकैरवरजो धूसरितस्सत्त्वमपहरति ॥ ६ ॥

विदूषकः—वअस्स एसा खु सा तमालवीहिआ।

रामः—(निर्वर्ण्य) वयस्य वश्य।

प्रच्छायरम्यासु तमालवास-
यष्टिष्वसौ बर्हिगणः शयानः।
ज्योत्स्नालवैः पल्लवरंध्रदृष्टै-
र्विभाव्यते मेचकबर्हभारः ॥ ७ ॥

विदूषकः—(निर्दिश्य) वअस्स एअं खु तं परूढकअलिखंभतारेणरम-णिज्जं धाराघरेअदुवांरअं।

राम—अच्छा—हम प्रवेश करें। (दोनों प्रवेश करते हैं।)

विदूषक—मित्र ! इस चन्द्रिका-प्रवाह के तरंग से युक्त सायंकालिक पवन का प्रभोग करो, जो मेरे समान सुखदायी और शीतलस्पर्शवाला है।

राम—यह रात में चलने वाली एवं खिले हुए कैरव-पुष्प के पराग से धूसरित हवा, विरही-जनों के लिये उत्पात की लम्बी वृष्टि के समान है, जो चेतना का हरण कर रही है। (६)

विदूषक—मित्र, यह तमाल-वीथिका है।

राम—(देखकर) मित्र, देखो।

अत्यन्त रमणीक छायावाली जिन तमाल-यष्टियों में मयूर-समुदाय सो रहा है, उनके पल्लव-छिद्रों से होकर पड़ने वाली चाँदनी की किरणों द्वारा उनका काला पंख-समुदाय सुशोभित हो रहा है। (७)

विदूषक—(देखकर) मित्र, उगे हुए केले की शाखाओं के स्तम्भ से जो मुख्य-द्वार मनोहर लग रहा है, वही धारागृह का द्वार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामः—(निर्वर्ण्य सस्पृहं)।

शीतः कपोलार्पणदानयोग्य-
श्चंद्रातपस्वच्छदुकूलवासी
प्रियोरुसाम्याद्विददाति रंभा-
स्तंभो ममासौ परिरंभवांछाम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—मा तुवं उवमामेत्ते उक्कंठेहि उवमेअं चेअ दाणि लहसि।

रामः—तथास्तु।

विदूषकः—वअस्स दक्ख दाव जोहणीसवण्णं परिसाणुमेअं चंदअंत-णिस्संदपादं।

रामः—वयस्य सम्यगुपलक्षितं। तथाहि।

चंद्रोपलानां शुचिचंद्रकांता
निर्याणधारा गृहहर्म्यपृष्टात्।
निष्यंदधारा स्रवती प्रणाल्या
सुरस्रवंतीव हिमाचलाग्रात् ॥ ९ ॥

विदूषकः—अहो से सिरिअं।

रामः—वयस्य यावत्प्रविशावः।

राम—कपोलों से लगाने लायक शीतल एवं सफेद वस्त्र धारण किये हुए यह चन्द्रातप है और वह केले का स्तम्भ हमारी प्रिया की जंघा के तुल्य होने के कारण आलिंगन करने की इच्छा उत्पन्न कर रहा है। (८)

विदूषक—तुम उपमानमात्र में उत्कण्ठित न होओ। अब तुम उपमेय को ही प्राप्त कर लोगे।

राम—ऐसा ही हो।

विदूषक—मित्र, देखो, चाँदनी के रंग से मिलता-जुलता, केवल स्पर्श के द्वारा जानने लायक चन्द्रकान्त मणि का निष्पन्न प्रकाश है।

राम—मित्र, तु ने ठीक देखा। क्योंकि—

चन्द्रकांत मणियों से पवित्र निकली हुई जल-धारा, प्रासाद के पृष्ठभाग से होकर जल-मार्ग से इस प्रकार बह रही है, मानों हिमालय के शिखर से गंगा की धारा ही बह रही हो। (९)

विदूषक—अहो, आश्चर्य है, इसकी स्वतन्त्रता।

राम—मित्र, तब तक हम दोनों इसमें प्रवेश करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—इदो दाव।

(उभौ प्रविशतः)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) वअस्स एसा खु अत्तहोदि सीदा विणीदासहिदा तुमं पडिवालेदि।

रामः—(विलोक्य निर्वर्ण्य च)।

समन्मथा मत्प्रतिपालनोत्सुका
मनोरथानां कुरुते परां धृतिम्।
विवेष्टयंती परितापितां तनुं
तनूदरीयं तनुते शुचं च मे॥ १०॥

विदूषकः—पिअवअस्स एहि उवसप्पम्म।

रामः—वयस्य ममेदानीं तव सख्याः सीतायाः मन्निवंधनं विविक्त-संजल्पं श्रोतुं च सकौतुकं चेतः।

विदूषकः—तेण हि एत्थ एव्व मुहुत्तअं चिट्ठेमो।

रामः—सम्यगाह भवान्।

(उभौ तथा कुरुतः)

सीता—(सनिर्वेदं) हला विणीदे किं इमिणा अलद्धफलेण पडि-वालणेण।

विदूषक—इधर से। (दोनों प्रवेश करते हैं)।

विदूषक—मित्र, यह आदरणीय सीता, विनीता के साथ आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

राम—(देखकर और अनुराग पूर्वक विचार कर)
कामदेव से युक्त होकर यह कृशोदरी मेरे दर्शन के लिये उत्सुक होकर मेरे ही मनोरथों को परम धैर्ययुक्त होकर पूर्ण कर रही है। अपने परितापित शरीर को सम्हालती हुई वह मेरी चिन्ता को बढ़ा रही है। (१०)

विदूषक—प्रिय मित्र, हम दोनों यहाँ चलें।

राम—मित्र, इस समय तुम्हारी सखी सीता की मेरे विषय में गुप्त बातचीत सुनने के लिये मेरा मन व्याकुल हो रहा है।

विदूषक—इसलिये कुछ देर हम दोनों यहीं पर रुकें।

राम—आपने यह ठीक ही कहा है। (दोनों वैसा ही करते हैं)

सीता—(निराशापूर्वक) हे सखि विनीते, इस निष्फल प्रतीक्षा से क्या लाभ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता—भट्टिदारिए मा तुवं सोइअ जह तुमं माहविवणे समस्सासिदा तक्कालसण्णिहिदेण भट्टिणा रामेण तह दाणिंवि सो तुमं समस्सासइस्सिदि ।

सीता—को वा अदोवि परं समस्सासणकालो ।

विनीता—(आत्मगतं) जाव भट्टा आअच्छेदि दाव भट्टिदारिअं अणुऊलेण कीलावदेसेण विणूदेमि (प्रकाशं) भट्टिदारिए जाव माहविवणउत्तंतं अभिणअंतीए कंपि वेलं अदिवाहेमो ।

सीता—हला साहु भणिअं ।

विनीता—तेणे हि अहं भट्टा रामो होमि तुमं पुण भट्टिदारिआ चेअ होहि ।

सीता—हला जुत्तं आचक्खिअं ।

विदूषकः—कहं पुप्फगंधिआ पउत्ता ।

रामः—वयस्य निभृतमवलोकयामः ।

विनीता—स्वामिनी, तुम चिन्ता मत करो, जिस प्रकार माधवी-वन में तुम, उस समय सामने आये हुए स्वामी राम द्वारा आश्वासित की गयी थी, उसी प्रकार इस समय भी वे तुम्हें आश्वासित करेंगे ?

सीता—क्या इसके बाद भी आश्वासन का समय है ?

विनीता—(मन ही मन) जब तक स्वामी राम आते हैं, तब तक स्वामिनी सीता को अनुकूल क्रीड़ा के माध्यम से बहलाती हूँ । (सुनाकर) स्वामिनी, उस माधवी-वन के वृत्तान्त का अभिनय करती हुई हम कुछ समय व्यतीत करें ।

सीता—सखि, तुमने ठीक कहा ।

विनीता—अतः मैं स्वामी राम बन जाती हूँ और तुम फिर स्वामिनी सीता का अभिनय करोगी ।

सीता—सखि, ठीक ही कहा है ।

विदूषक—अरे, यह पुष्प-गन्ध कहाँ से आ रही है ?

राम—मित्र, शान्तिपूर्वक देखें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता— (रामभूमिकां गृहीत्वा मदनावस्थामभिनीय) अहो मकरकेतनस्य रणरणिकशालिता ।

कुसुमवृष्टिरसौ कुसुमेषुना
कुसुमचापधरेण निपातिता
विजयिनः पुनरस्य निपातिता
कुसुमवृष्टिरभूज्जयशंसिनी ॥ ११ ॥

विदूषकः—कहं इमाए कुंभदासीए जोरिओ वअस्सस्स सिणिद्धं धीरो सरो उदारं च सत्तं ।

रामः—संगीतकविदग्धा हि प्रायो राजकुलपरिचिता स्त्रियः ।

सीता—(आकाशे) हला विणीदे अविदिअभावे तस्सि जणे कहं ण लज्जेदि मे उक्कंठा । किं भणासि मा संतप्पिअ तंपि तुमं विअ उक्कंठं तं चेअ दक्खिस्सिस्सिति ।

कृतकरामः—(आकाशे) वयस्य गार्ग्यायण किं ब्रवीषि कियद्वा तत्कालः प्रतिपालयितव्यः यस्मिन्नेष संतापः शाम्यति इति (सस्मितं) वयस्य न दुर्जातं ब्रूयतां । शरदुत्सुको न तृप्यति कलहंसः शरदि विप्रकृष्टायां सीतार्थिनोपि ननु मे न धृतिस्तस्यामदृष्टायां ।

विनीता—(राम की भूमिका में मदनावस्था का अभिनय करती हुई) कामदेव की रणकुशलता आश्चर्यजनक है—

उस कामदेव ने पुष्पबाणों के द्वारा पुष्पों की वर्षा कर दी है, जिससे इसके द्वारा की गई यह पुष्पवृष्टि विजय का प्रचार कर रही है। (११)

विदूषक—इस कुंभदासी ने मित्र के स्निग्ध धैर्य, स्वर एवं उदार सत्त्व को किस प्रकार चुरा लिया है ?

राम—राजकुल से परिचित स्त्रियाँ संगीतकला में प्रायः दक्ष होती हैं ।

सीता—(आकाश की ओर देखकर) सखि विनीते, अज्ञात भाववाले उस व्यक्ति के प्रति मेरी उत्कण्ठा लजाकर दूर क्यों नहीं हो जाती ? क्या कह रही हो ? मुझे संतप्त करके क्या मेरे समान ही उसको भी उत्कण्ठित होते हुए देखोगी ?

कृतकराम—(आकाश की ओर देखते हुए) मित्र गार्ग्यायण, क्या कहते हो ? कितने समय तक प्रतीक्षा करनी होगी, जिससे कि यह संताप शान्त हो जाय ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीता—हला विणोदे किं भण्णसि दक्ख दाव एसो खु पुरदो भट्टा रामोत्ति तेण हि कियट्ठं मे चक्खू (दृष्ट्वा) अम्हो अज्जउत्तो ।

कृतकरामः— (आकाशे) वयस्य किं ब्रवीषि । इदमत्राश्चर्यं यदपहस्तिताखिलशिशिरोपचारस्य भवतस्तत्रभवति शैशिर्यमापादयतीति (सनिर्वेदं तूष्णीमास्ते) ।

सीता—(आकाशे) हला किं भणासि किं दाणिं तुस्ससित्ति ।

कृतकरामः—(आकाशे) वयस्य किं ब्रवीषि अपृष्टेनापि त्वया सीतां प्रजल्पतः कुतः खलु पृष्टेनापि न सीताप्रसंगे दीयते प्रत्युक्तिरिति (सनिर्वेदं) किं तया ।

सीता— (श्रुत्वा सखेदमिव) हंत किं ताए इति मं विहत्थेइ । हंजे किं दाणि एत्थ थीयदि ता गच्छम्ह अहव कहिं दाणि मए गच्छिअदि । (मोहं नाटयति) ।

(मुस्कुराते हुए) मित्र, क्रूर व्यंग्य मत करो । शरत्काल के लिये उत्सुक कलहंस शरद ऋतु के बीत जाने पर तृप्त नहीं होता, सीता के लिये इच्छुक मुझे उसके अदृष्ट होने पर अब धैर्य नहीं रहा ।

सीता—सखि विनीते, क्या कह रही हो ? "देखो, सामने ये पति राम उपस्थित हैं ।" इस कारण निश्चय ही मेरी आँखें कृतार्थ हो गयीं । (देखकर) अहा आर्यपुत्र !

कृतकराम—मित्र, क्या कह रहे हो ? "यह आश्चर्य है कि आपके सभी शिशिरोपचार दूर कर दिये गये हैं, क्योंकि आदरणीय सीता स्वयं आपके लिए शीतलता प्रदान कर रही हैं ।" (ग्लानि सहित चुप हो जाती है)

सीता—सखि, क्या कह रही हो ? "क्या इस समय सन्तुष्ट होओगी ?"

कृतकराम—(आकाश की ओर देखकर) मित्र, क्या कहते हो ! तुमसे नहीं पूछे जाने पर भी सीता विषयक जल्पना और सीता-प्रसंग का भी प्रत्युत्तर दिया जाता है ।" (निराशासहित) उससे क्या ?

सीता—(सुनकर खेद के साथ) हाय, "उससे क्या ? मुझे उपेक्षित किया जा रहा है । सखि, अब इस समय यहाँ क्यों ठहरें । हम दोनों चलें । किन्तु चला कहाँ जाय ? ।।११।।
(मोह का अभिनय करता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतकरामः—(कर्णं दत्वा) कथं स्त्रीजनसमाश्वासशब्दः।

रामः—(सहसोपसृत्य संज्ञया विनीतां विनिवार्य) प्रिये समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता—(समाश्वास्य दृष्ट्वा च सहर्षं सलज्जं चात्मगतं) कहं सअं चेअ परमत्थदो अज्जउत्तो। (गंतुमिच्छति)।

रामः—(हस्ते गृहीत्वा) अयि मुग्धे।

कृतव्यलीके प्रतिकूलया गिरा
मयि त्वया कोपरसोनुभावितः।
विकुंचितं भ्रूलतिकं तदीक्षणं
क्षिप स्मरस्येदमपश्चिमं शरम् ॥१२॥

विनीता—(विलोक्य) कहिं एअं वालचंदणतरुमूलालवालपरिपूरितवप्पं विलंघेई चंदअंतदवपूरो जाव अण्गदो एअं पवट्टेमि।

विदूषकः—होदि सिग्घं संविहेअं खु तं जाव वालासोअमूले पवट्टेदव्वं अहं पि दे सहाओ होमि।

(निष्क्रांता विनीता विदूषकश्च)

कृतकराम—(कान लगाकर) यहाँ स्त्रीजनों के समाश्वासन-शब्द कैसे (सुनाई पड़ रहे हैं)।

राम—(एकाएक समीप जाकर और संकेत से विनीता को हटा कर) प्रिये, धैर्य धारण करो।

सीता—(धीरतापूर्वक देखकर, हर्ष और लज्जा के साथ अपने मनमें) क्या परमार्थ के लिए आर्यपुत्र स्वयं ही यहाँ पधारे हैं ? (जाना चाहती है।)

राम—अजी मुग्धे—

मुझ दुःखी पर प्रतिकूल-वाणी के द्वारा कोप-रस का संचार कर दिया। पुनः मुझ पर टेढ़ी भौहों वाली दृष्टि डालो, जो कि कामदेव का प्रसिद्ध बाण है। (१२)

विनीता—(देखकर) चन्द्रकान्त मणि से पिघला हुआ जल-प्रवाह इस बाल चन्दन-वृक्ष की जड़ में निर्मित आलबाल को पूरा करके घिरावे को किस प्रकार पार कर रहा है ? तब तक मैं इसे दूसरी ओर प्रवर्त्तित करती हूँ।

विदूषक—हाँ, इसकी शीघ्र ही व्यवस्था करनी चाहिए। इसे बाल अशोक के मूल में प्रवर्त्तित करना चाहिए। मैं भी इसमें आपका सहायक हो जाऊँ।

(विनीता और विदूषक, दोनों निकल जाते हैं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीता—कहं पिअसहिवि एक्काइणिं मं परिच्चइअ गआ।

रामः—नन्वयमहं ते परिजननिर्विशेषः संनिहितः।

सीता—(लज्जां नाटयति, अन्यतो गंतुमिच्छति)।

रामः—हस्ते गृहीत्वा निवारयन्।

चिरस्य कालस्य समागते जने
तवाद्य बिंबोष्ठि समागमोत्सुके।
प्रसिद्धयुक्तं विनिगूहनं न ते
सुनिर्दयं चंडि कुरूपगूहनम् ॥१३॥

सीता—(अवस्थोचितं नाटयति)।

रामः—(आत्मगतं) असाधारणरमणीयं खलु नववधूविहृतं। तथाहि।

कथमपि परिरब्धा यात्यसौ पश्यतो मे
मयि पुनरधरोष्ठं पातुकामे प्रसह्य।
सकरुणमुपलाल्यं निर्दयं चाशु पेयं
प्रथयति मुखमंतर्बाष्पजिह्माकुलाक्षम् ॥१४॥

सीता—क्या प्रिय सखी भी मुझे अकेली छोड़कर चली गयी ?

राम—यह मैं आत्मीय व्यक्ति की तरह समीप आ गया हूँ।

सीता—(लज्जा का अभिनय करती है और दूसरी जगह जाना चाहती है)

राम—हाथ पकड़कर रोकते हुए—

हे बिम्बोष्ठि, चिरकाल के बाद आये हुए और समागम के लिए उत्सुक व्यक्ति के विषय में तुम्हारा यह दुराव, हे कोपशीले ! उचित ही नहीं, अपितु, सुनिर्दय और कुत्सित दुराव भी है ॥१३॥

सीता—(अवस्थानुकूल अभिनय करती है।)

राम—(मन में) नववधू का प्रेम-प्रदर्शन असाधारण सुन्दर होता है—क्योंकि—

"यह किसी-किसी तरह आलिंगन करने पर मेरे सामने से जाना चाहती है, पुनः बरबस मेरे अधरोष्ठ पान करने की इच्छा करने पर अपने मुखमण्डल को, आँसू और टेढ़े कटाक्षों से युक्त, करुणा योग्य, चंचल, कुछ दयाहीन और निरन्तर पान करने लायक बना देती है" ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनीता विदूषकश्च—(सत्वरं प्रविश्योपसृत्य च) आअच्छइ एत्थ एक्का इत्थिआ ता किं करिदुं ।

विनीता—भट्टा तुम्हेहि एत्थ अंतरिदेहि होदव्वं ।

रामः—यथाह भवती ।

(तथा तिष्ठतः)

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिदारिआ ।

सीता—सहि कोमुदिए कुदो आअच्छसि ।

चेटी—भट्टिदारिए एव्वं खु भट्टिणिए वसुहाए अहं आणत्ता जह होदि कोमुदीए को कालो पमदवणे विहारत्थं गआए वच्छाए सीदाए सीसिवेअणत्ति अ सुअं मए परिअणादो ता तुमं सिग्घं गदुअ तं इद आणेहि त्ति ता जह भट्टिणि ण किलम्मइ तह भट्टिदारिआ सिग्घं गंतव्वं ।

सीता—हं संकडे पडिअम्हि ।

विनीता—भट्टिदारिए तेण ही सिग्घं गंतव्वं ।

सीता—(आत्मगतं) हं अविणीदा खु विणीदा (प्रकाशं) जं पिअसहि भणादि ।

विनीता और विदूषक—(तेजी से प्रवेश करके और नजदीक जाकर) यहाँ एक महिला आ रही हैं, अतः क्या किया जाय ?

विनीता—हे स्वामिन् ! आप लोग यहीं छिप जायँ ।

राम—आप जैसा कहें । (दोनों उसी तरह छिप जाते हैं ।)

चेटी—(प्रवेश करके)—स्वामिनी की जय हो ।

सीता—सखि कौमुदिके, कहाँ से आ रही हो ?

चेटी—हे स्वामिनी, मालकिन वसुधा ने मुझे इस प्रकार आज्ञा दी है कि "हे कौमुदिके, मैंने अपने लोगों से सुना है कि प्रमदवन में विहार के लिये गयी हुई बेटी सीता को शिरोवेदना हो गई है । अतः तुम शीघ्र ही जाकर उसे यहाँ ले आओ ।" इस प्रकार जब तक मालकिन दुःखी न हों, आप स्वामिनी को वहाँ शीघ्र ही चलना चाहिए ।

सीता—मैं तो संकट में पड़ गयी ।

विनीता—अब स्वामिनी को शीघ्र ही (वहाँ) चलना चाहिए ।

सीता—(मन में) ओह विनीता तो निश्चय ही अविनीता है । (सुनाकर) जैसा प्रिय सखी कहें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटी—इदो इदो भट्टिदारिआ ।

(परिक्रम्य निष्क्रांता सीता विनीता चेटी च)

रामः—(सोत्कंठं) अहो दुस्सहता प्रियाविरहस्य । अद्य हि ।

अच्छिन्नपंक्तिशरसंधिकृताभिसंधि
पुष्पायुधस्य परितोपि विनिःपतंति ।
युंजत्फलानि विरहार्तविपत्फलानि
कुर्वन्त्यलं सुमनसो विमनस्कतां नः ॥१५॥

विदूषकः—वअस्स समासण्णो दिअहारंभो अज्ज खु वारुणिदिसं वोलंवंतो चओरवारणाणं दिअरी कसणवण्णां जोहणं मुंचंतो पच्चिमजल-णिहिबेलाविहाररसिओ विअ वोलंविज्जइ सीअंसु ।

रामः—कथं विभातप्राया विभावरी । संप्रति हि ।

विभातविश्लेषितपत्रबंधान्
मंदं विभिंदन्नरविंदकोशान् ।
आवाति वायुर्दिवसोत्सुकाना—
माश्वासनः कोककुटुंविनीनाम् ॥ १६ ॥

चेटी—इधर से, इधर से, स्वामिनी । (घूमकर सीता, विनीता और चेटी निकल जाती है)

राम—(उत्कण्ठा के साथ) अहो आश्चर्य है, प्रिया वियोग की दुःसहता का ।

आज तो निरन्तर पाँच-बाणों के समूह का सन्धान किये हुए कामदेव के फूलों के बाण, जिनके फल (नोंक) विरह व्यथितों के लिए विपत्ति रूप हैं, चारों ओर गिरते हुए मुझे अत्यन्त विक्षिप्त बना रहे हैं ॥ १५ ॥

विदूषक—हे मित्र ! प्रातःकाल समीप ही है । आज तो पश्चिम-दिशा में स्थित चन्द्रमा काली चाँदनी का परित्याग करता हुआ, पश्चिमी-समुद्र के तट पर विहार-रसिक के समान दिखाई पड़ रहा है ।

राम—यह रात सुबह में कैसे बदल गयी है ? अभी देखिये—

प्रभात के द्वारा जिनके पत्रबन्ध अलग-अलग कर दिये गये हैं, ऐसे कलम के कोशों को धीरे-धीरे खोलती हुई ऐसी हवा बह रही है, जो दिन के लिये उत्सुक कोक-परिवार के लिए आश्वासन का साकार रूप है ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदूषकः—वअस्स जाव वअंपि गच्छेमो ।

रामः—यथा भवानाह (परिक्रामन्)

भवत भवत सर्वे निर्वृताश्चक्रवाका
दिवसकरकराग्रैस्ता निरस्ता तमिस्राः ।
भजत सह वधूभिः स्वैरसंभोगयोग्यान्
विकचदलकरंडानाशु तान् पद्मखंडान् ॥ १७॥

विदूषकः—इदो पिअवअस्सो ।

(निष्क्रांतौ)

इति श्रीगोविंदस्वामिनः सूनुना हस्तिमल्लेन विरचिते
मैथिलीकल्याणनाटके चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

विदूषक—तब हम लोग भी चलते हैं ।

राम—जैसा आप कहें । (घूमते हुए)

हे समस्त चक्रवाको, तुम लोग आनन्दित हो जाओ—आनन्दित हो जाओ क्योंकि, सूर्य की तेज-किरणों के कारण वह अन्धकार बीत गया है, अपनी वस्तुओं के साथ सम्भोग करने के योग्य उस कमल-वन को प्राप्त करो, जिनके फैले हुए पत्तों का समुदाय छातों के समान हो गया है ॥ १७ ॥

विदूषक—प्रिय मित्र इधर से । (दोनों निकल जाते हैं)

श्री भट्ट गोविन्द स्वामी के पुत्र हस्तिमल्ल द्वारा प्रणीत
मैथिली कल्याण नाटक का चतुर्थ अंक समाप्त ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि नयचन्द्र सूरिकृत

रम्भामञ्जरी

दंष्ट्राग्रोद्धतपङ्कपिण्डवदियं विश्वा समस्ताप्यहो
गच्छन्ती प्रलयं वराहवपुषा येनोददध्रीय्यत ।
देवः श्रीकुचकुम्भपत्र रचनाचातुर्यचिन्तामणिः
स श्रेयांसि चरीकरोतु कृतिनां कल्याणकोटीश्वरः ॥१॥

गिरामधीश्वरीं स्मृत्वा स्मेरकाश्मीरवासिनीम् ।
प्रबन्धं जैत्रचन्द्रस्य वच्मि सज्जनवल्लभम् ॥२॥

अन्वयार्थ—वराहवपुषा येन–वराहावतार के रूप में जिसने । पंकपिण्डवद्–मिट्टी के पिण्ड के समान । प्रलयं–प्रलय में । गच्छन्ती–विलीन होती हुई । इयं–इस । समस्ता अपि विश्वा–समस्त पृथिवी को । अहो–आश्चर्य । उददध्रीय्यत–उठाकर । चिन्तामणि–चिन्तामणिरत्न के समान । श्रीकुचकुम्भ-पत्र-रचना-चातुर्य—लक्ष्मी के स्तन रूपी कलशों पर पत्र-चित्र-रचना में चतुर । कल्याण कोटीश्वरः सः देवः—कोटि-कोटि कल्याणों के देने में समर्थ वह देव । कृतिनां—सज्जनों को । श्रेयांसि चरी करोतु—मंगल प्रदान करे ।

अर्थ—वराहावतार के रूप में जिसने प्रलय में विलीन होती हुई मिट्टी के पिण्ड के समान समस्त पृथिवी को अपने दाँत के अग्रभाग पर उठाकर उसका उद्धार किया, चिन्तामणि रत्न के समान जिसने लक्ष्मी के कलश के समान स्तनों पर बड़ी चतुराई के साथ पत्र–(चित्र)–रचना की तथा जो कोटि-कोटि कल्याणों को वितरित करने वाला है, ऐसे विष्णु भगवान सज्जनों का कल्याण करें ॥१॥

अन्वयार्थ—स्मेरकाश्मीर वासिनीम्–अपने निवास से काश्मीर को सौन्दर्य प्रदान करने वाली । गिराम् अधीश्वरीम्–वाणी की देवी-स्वामिनी सरस्वती का । स्मृत्वा–स्मरण करके । सज्जनवल्लभम्–सज्जनों के लिए प्रिय । जैत्र-चन्द्रस्य–जैत्रचन्द्र के । प्रबन्धम्–प्रबन्ध–कथा को । वच्मि–कहता हूँ ।

अर्थ—अपने निवास से काश्मीर को भी सौन्दर्य प्रदान करने वाली वाणी की अधीश्वरी देवी सरस्वती का स्मरण करके सज्जनों के लिए अत्यन्त प्रिय राजा जैत्रचन्द्र की कथा को कहता हूँ ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्लाणं विरयंतु वम्महसरज्जालाउलाणं सया
राउम्मत्तचलंतकंततरुणीदीहच्छदोणिच्छडा।
पंचेहिंपि सरेहिं जा विरइया दोदोविभाया दसा
जेहिं अप्पतिहायमत्तफरसा ता तक्खणं निट्ठिदा ॥३॥

नमो नमो पोढवरंगणाणं
अउव्वभावाण कडक्खियाणं।
होऊग पुव्वं विसमं विसंपि
जे तक्खणं हुंति सुहाविसेसा ॥४॥

अन्वयार्थ—राउम्मत्त–राग में उन्मत्त, रागोन्मत्त। चलंत–चंचल। कंत–सुन्दर। तरुणी–नवयुवति। दीह–दीर्घ। अच्छ–नेत्र। दोणिच्छडा–द्रोणी के समान छटा वाली। वम्महसर–कामदेव। जालाउलाणं–ज्वाला से आकुल। सदा—निरन्तर। कल्लाणं विरयंतु–कल्याण करें। पंचेहि सरेहिं–पाँच बाणों से। जा–जो। दो दो विभाया दसा–दो-दो भागों में अर्थात् ५×२=१० (कामावस्था की दस दशाएँ)। विरइया—कर दीं। जेहिं–जिनके द्वारा। अप्पतिहाय मत्त फरिसा–नेत्र के कटाक्ष के स्पर्शमात्र से। ता–उसे, जिसे। तक्खणं–तत्क्षण। निट्ठिदा–नष्ट कर दिया।

अर्थ—कामदेव के बाणों की ज्वाला से व्याकुल प्रेमीजनों के लिए, राग में उन्मत्त, चंचल तथा अत्यधिक सुन्दर तरुणी पार्वती की, द्रोणी की आकृति के समान विशाल नेत्रों की छटा निरन्तर कल्याण प्रदान करती रहे।

इसी प्रकार, कामदेव के पाँच प्रकार के बाणों के द्वारा उत्पन्न दस प्रकार की कामावस्थाएँ जिनके (शंकर के) नेत्र के कटाक्ष के स्पर्श मात्र से ही तत्काल नष्ट हो गई हैं, ऐसे शंकर जी प्रेमीजनों का सदा कल्याण करें ॥३॥

अन्वयार्थ—अउव्वभावाण–अपूर्व अनुराग युक्त भावना वाले। कडक्खियाणं–कटाक्षों वाली। पोढवरंगणाणं–प्रौढ वाराङ्गनाओं के लिए। नमो नमो–बार बार नमस्कार हो। पुव्वं–पहले तो। विसमं विसं अपि होऊण–विषम विष के समान रहते हुए भी। जे–जो। तक्खणं—तत्क्षण ही सुहाविसेसा—अमृत–विशेष। हुंति–हो जाती है।

अर्थ—अपूर्व अनुराग युक्त भावना वाले नेत्र-कटाक्षों से युक्त उन प्रौढ़ वाराङ्गनाओं के लिए बार-बार नमस्कार हो, जो पूर्व में तो विषम विष के समान रहती हैं किन्तु अगले ही क्षण जो विशेष अमृत (सुधा) के समान हो जाती हैं ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमो पोढ़मयच्छोणं अच्छीभायाण सव्वया।
खणेण जे सुहायंते भुच्चावि विसमं विसं ॥५॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—नमह नमह लोया देवदेवं तमिक्कं
जणियजगपमोयं पाणनाहं रईए।
हरिहरपमुहेहिं वंचणातप्परेहिं
किमिह जगमसेसं जं विणा हि मियं व ॥६॥
झाणेण निव्वुइपयं जइ निच्चलेण
ता तन्न अत्थि सुरएवि कहिंपि दूरे।

अन्वयार्थ—प्रोढ मयच्छीणं–प्रौढा मृगाक्षियों के। अच्छीभायाण–नेत्र कटाक्षों के लिए। सव्वया नमो–सर्वदा नमस्कार हो। जे–जो। विसमं विसं–विषम विष-को। भुच्चावि–खाकर भी। खणेण–क्षणमात्र में। सुहायंते–सुधा (अमृत) का कार्य करते हैं।

अर्थ—प्रौढ़ा मृगाक्षियों के उन नेत्र-कटाक्षों के लिये सर्वदा नमस्कार हो, जो विषम विष का भोग करके भी क्षण भर में सुधामृत का सुख प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

(नाद्यन्ते)

सूत्रधार—

अन्वयार्थ—लोया–हे रसिक जनो। जणिय जगपमोयं–संसार को प्रमुदित करने वाले। रईए पाणनाहं–रति के प्राणनाथ। तं इक्क–उस एक मात्र। देवदेवं नमह नमह–देवों के भी देवता को बार-बार नमस्कार करो। इह–इस संसार में। वंचणातप्परेहिं–लोगों की वंचना करने में तत्पर। हरिहरपमुहेहिं किं–विष्णु, शंकर आदि प्रमुख देवताओं (की आराधना) से क्या लाभ ? जं (कामदेवं) विणा–जिस कामदेव के विना। जगमसेसं–समस्त संसार। मियं व–मृतक के समान है।

अर्थ—हे रसिकजनो, संसार को प्रमुदित करने वाले, रति के प्राणनाथ, उस एक मात्र देवों के देवता कामदेव को बार-बार नमस्कार करो। लोगों की वंचना में तत्पर विष्णु, शंकर आदि प्रमुख ३३ करोड़ देवताओं (की आराधना) से क्या लाभ ? क्योंकि उस एकमात्र कामदेव के बिना तो यह समस्त संसार मृतक के समान ही है ॥६॥

अन्वयार्थ—जइ–यदि। निच्चलेण झाणेण–निश्चल ध्यान से। निव्वइपयं–निर्वृति मार्ग को। ता–तब। तत् न अत्थि–वह नहीं हैं। सुरएवि–सुरत–क्रिया से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामीण जं रइरसेसु हविज्ज झाणं
जोईसराण न हु तं सिविणेवि मन्ने ॥७॥

अपि च,

जयंतु अन्नुन्नविलग्गचित्ता
जायावई उ गिरिजा हरुव्व ।
घुट्टंति निच्चं अहरामियं जे
ट्ठियावि मच्चंमि सुराविसेसं ॥८॥

(नेपथ्याभिमुखं) कः कोत्र भोः ।

नटः—(पटाक्षेपेण प्रविश्य) आणवेदु अज्जराऊ ।

कहिंपि दूरे–किसी भी तरह दूर । कामीण–कामीजन । जं–जो । रइरसेसु–रतिरस में । हविज्ज–होता है । झाण–ध्यान । जोइसराण–योगीश्वरों के । न हु–नहीं । तं–वह । सिविणे वि–स्वप्न में भी । मन्ने–मानता हूँ ।

अर्थ—यदि निश्चल ध्यान से निर्वृति पद (मोक्ष) प्राप्त होता है, तो वह (निर्वृतिपद) सुरत–क्रिया से भी किसी प्रकार दूर नहीं माना जा सकता, (अर्थात् सुरत–क्रिया से भी ध्यान की एकाग्रता तथा निर्वृति–पद प्राप्त किया जा सकता है) । क्योंकि रतिरस में कामीजनों का जैसा एकाग्र ध्यान होता है, वैसा योगीश्वरों को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता, ऐसा मैं मानता हूँ ॥७॥

और भी—

अन्वयार्थ—अन्नुन्न विलग्गचित्ता–एक दूसरे के चित्त में व्याप्त । जायावइ–रसिक पति–पत्नी । जयंतु–जयवन्त रहें । गिरिजा–पार्वती । हरुव्व–शंकर के समान । घुट्ठंति–पान करते हैं । निच्चं–नित्य । अहरामियं–अधरामृत । जे–जो । ट्ठियावि–रहते हुए भी । मच्चंमि–मर्त्य लोक में । सुराविसेसं–देवताओं के लिए निर्मित विशेष रूप से पेय ।

अर्थ—परस्पर में एक दूसरे के चित्त में व्याप्त वे रसिक प्रेमी–प्रेमिकाएँ शंकर-पार्वती के समान जयवन्त रहें, जो मर्त्यलोक में रहते हुए भी अधरामृत रूपी सुरा-विशेष का निरन्तर पान करते रहते हैं ॥८॥

(नेपथ्य को ओर घूमकर) अरे, कौन है यहाँ ?

नट—(पटाक्षेप के साथ मंच पर आकर) हे आर्य, हे राजन्, आज्ञा कीजिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्रधारः—अद्य मारिष गतप्राये शिशिरसमये दौर्भाग्यविषमविषदावदहनज्वालावलीढामिवावाचोमपहाय सौभाग्यपार्वणसुधांशुमण्डलगलत्सुधासेकसुस्नातामिवोदीचीमालिङ्गति भगवति गभस्तिमालिनि षट्त्रिंशद्राजन्यवंशभालस्थलललामायमानश्रीक्ष्वाकुवंशविभूषणस्य अपास्तसमस्तदूषणस्य अभिनवरामावतारश्रीमन्मदनवर्ममेदिनोदयितसाम्राज्यलक्ष्मीकरेणुकालानस्तम्भायमानबाहुदण्डस्य निजप्रतापतपनतापितानेकविपक्षपक्षक्षोणिपाल-

---

सूत्रधार—

अन्वयार्थ—अद्य—आज। मारीष—हे मित्र। गत प्राये शिशिर समये—शिशिर ऋतु के प्रायः समाप्त हो जाने पर। दौर्भाग्य विषम विष—विषम दुर्भाग्य रूपी विष के समान। दाव-दहन-ज्वाला अवलीढाम् इव—दावाग्नि की ज्वाला से व्याप्त के समान दक्षिण दिशा को। अपहाय—छोड़कर। सौभाग्य पार्वण सुधांशुमण्डल—सौभाग्य के समान पूर्णमासी के चन्द्रमा से। गलत्सुधासेक सुस्नाताम् इव—प्रवाहित सुधा के अभिषेक से स्नान करती हुई के समान। उदीचीम् आलिङ्गति—उत्तर-दिशा का आलिंगन कर रही हैं। भगवति गभस्तिमालिनी—भगवती सूर्य-किरणें।

सूत्रधार—हे मित्र, आज, शिशिर (शीत) ऋतु के समाप्तप्राय हो जाने पर, विषम दुर्भाग्य रूपी विष के समान तथा दावाग्नि की (भयानक) ज्वाला से व्याप्त भगवती सूर्य-किरणें दक्षिण दिशा को छोड़कर (इस समय) सौभाग्य के समान पूर्णमासी के चन्द्रमा से प्रवहमान सुधा के अभिषेक से शीतल स्नान करती हुई उत्तर दिशा का आलिंगन कर रही है।

अन्वयार्थ—षट्त्रिंशद्—३६। राजन्यवंश—राजन्यवंश। भाल-स्थल-ललामायमान—मस्तक पर सुशोभित। श्री इक्ष्वाकुवंश विभूषणस्य—श्री इक्ष्वाकुवंश-के विभूषण। अपास्त समस्त दूषणस्य—समस्त दोषों को नष्ट कर देने वाले। अभिनव रामावतार—अभिनव रामावतार। श्रीमन् मदनवर्म—श्रीमान् मदनवर्मा। मेदिनी दयित—पृथिवीपति। साम्राज्य लक्ष्मी—साम्राज्य-लक्ष्मी रूपी। करेणुका आलान स्तम्भायमान—हथिनी को बाँधने के लिए खम्भे के समान। बाहुदण्डस्य—बाहुदण्डवाले का। निज प्रताप तपन तापित—जो अपने प्रताप के संताप से सन्तप्त। अनेक विपक्ष-पक्ष क्षोणिपाल—अनेक शत्रु-मित्र राजा। पालि-परिपालित—पालन-पोषण, वशीकरण। प्रवर-प्रदेय दण्डस्य—प्रचण्ड रूप से दण्डित-करने वाला।

अर्थ—३६ राजन्यवंशों के सुन्दर मस्तक-मुकुट के समान इक्ष्वाकुवंश की लक्ष्मी के अलंकार, समस्त दोषों को नष्ट कर देने वाले, अभिनव रामावतार, श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालिपरिपालितप्रवरप्रदेयदण्डस्य त्रिभुवनभवनोदरवर्तमानासमाननाना-जनवदननलिनविनिर्यदूर्जितोर्जितमूर्त्तिमद्यत्प्रतापतपनयत्कीर्त्तिविस्फूर्तिसंश्र-वणसमुद्भूतप्रभूतप्रमोदपूरसंजनितमहास्वेदोदविन्दुनिवहनिषेकशाड्वलित-सर्वाङ्गीणगणवितीर्णलोमलतावितानोच्छ्रायमच्छायातलसुखासीनहरिहरहिरण्य-गर्भप्रभृतित्रयस्त्रिंशत्कोटिप्रमाणगोर्वाणगणवितीर्णनिखिलयवनक्षयकरोभव-भवेतिप्रवरवरस्य निजभुजपराक्रमातिरेकोद्वासितानेकविपक्षपक्षक्षोणिपाला-

---

मदनवर्मा (नाम के) पृथिवीपति हुए, जिनके बाहुदण्ड साम्राज्य-लक्ष्मी रूपी हथिनी को बाँधने के लिए सुदृढ़ खम्भे के समान थे।

जो अपने प्रताप के सन्ताप से सन्तप्त अनेक शत्रु एवं मित्र राजाओं का पालन पोषण करता था, वह उन्हें अपने वश में रखता था तथा (आवश्यकता पड़ने पर) प्रचण्ड रूप से दण्डित करता था।

अन्वयार्थ—त्रिभुवन-भवन-उदर-वर्त्तमान—त्रिभुवन के भव रूपी उदर में रहने वाले। असमान—असाधारण। नाना जनवदन-नलिन—नाना जनों के मुख रूपी कमल से। विनिर्यद—निकलने वाली। अर्जित-ऊर्जित-अर्जित ऊर्जा की। मूर्तिमत्—साक्षात् मूर्ति के समान। यत्—जिस (मदनवर्मा) के। प्रताप तपन यत्कीर्त्ति-स्फूर्ति संश्रवण समुद्भूत प्रभूत प्रमोद-पूर-संजनित—प्रताप के सन्ताप से तथा जिसकी कीर्ति के स्फुरण को सुनने से उत्पन्न प्रचुर प्रमोद के पूर (बाढ़) से उत्पन्न। महास्वेदोदविन्दुनिवह-निषेक—महान् स्वेद-बिन्दु-समूह के अभिषेक (सिंचन) से। शाड्वलित—हरी भरी। सर्वांगीण गण वितीर्ण—सर्वांगीण, वितीर्ण। लोम-लता वितान उच्छ्रायं छायातल सुखासीन—रोम-लता के मण्डप की छाया में सुख से बैठे हुए। हरिहर हिरण्यगर्भ प्रभृति—विष्णु, शंकर एवं ब्रह्मादि। त्राय-स्त्रिंशत् कोटि प्रमाण—३३ करोड़। गीर्वाण गण वितीर्ण—देव समूह प्रदान करें। निखिल यवन क्षयकरो—समस्त यवनों का क्षयकारी। भव भवेति—जन्म जन्मातरों तक। प्रवर वरस्य—श्रेष्ठ वरदान देने वाले का।

अर्थ—त्रिभुवन रूपी भवन में रहने वाले, असाधारण, नाना जनों के मुख-रूपी कमल से ऊर्जित होकर निकलने वाली ऊर्जा की साक्षात् मूर्ति के समान जिस (मदन वर्मा) के प्रताप के सन्ताप से तथा जिसकी स्फुरायमान कीर्त्ति को सुनने के कारण प्रचुर प्रमोद के पूर (बाढ़) से उत्पन्न महान् स्वेद-विन्दु-समूह के अभिषेक से शाड्वलितों के सर्वांगीण, वितीर्ण रोम लता-वितानों में जन्म-जन्मान्तरों तक समस्त यवनों के क्षयकारी वरदान को देने वाले विष्णु, शंकर एवं ब्रह्मादि ३३ करोड़ देवता सुख से बैठे हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रङ्कषसौधशिखरशिखासमुद्भूतप्रभूतदूर्वावनचर्वणतुन्दिलोत्सङ्गकुरङ्गस्थगित-पार्वणशर्वरीश्वरस्वरूपनिरूपणमात्राद्दशदिक्प्रधावमानमहातिमिरभरोद्रेका-काण्डाडम्बरितोड्डामरकुहूकालवालावलोकनचकितचकित जनतापरित्रास-सान्त्वनार्थंतदात्वस्फुट प्रकटितविश्वविश्वोदरंभरिप्रसरिसरत्करनिकर-विस्फुरद्यशः सुधाकरस्य प्रचण्डखड्गदण्डोल्लूनप्रकोपपावकामूलज्वलत्त्रि-शूलप्रहरणप्रहारव्रणविवरोच्छलच्छोणिताच्छधारोत्पतदनेकविन्दुसंदोहोद्भि-

---

अन्वयार्थ—निजभुज पराक्रम अतिरेक--अपनी भुजाओं के पराक्रम के अतिरेक से। उद्वासित अनेक विपक्ष-पक्ष--उद्भासित (निर्वासित) अनेक शत्रु एवं मित्र। क्षोणिपाल अभ्रङ्कष--राजाओं के गगनचुम्बी। शौधशिखर-शिखा समुद्भूत--राजमहलों के शिखराग्रों पर उत्पन्न। प्रभूत दूर्वावन चर्वण तुन्दिल--प्रचुर दूर्वा-वनों के चर्वण से पुष्ट हुए। उत्सङ्ग कुरङ्गस्थगित--हिरणों द्वारा स्थगित। पार्वण शर्वरि निरूपण-मात्रात्--पूर्णमासी के चन्द्रमा के निरूपण मात्र से। दश-दिक् प्रधावमान--दशों दिशाओं में दौड़ते हुए। महातिमिर भरोद्रेका-काण्ड--घने अन्धकार से भरे हुए अतिशय रूप से। आडम्बरित-उड्डायर-प्रकटित, रुचिकर या भयावह। कुहूकालवालावलोकन--अमावस्या के दिन के देखने से। चकित-चकित--बारम्बार चकित हुई। जनता परित्रास सान्त्वनार्थ--त्रस्त जनता की सान्त्वना के लिए। तदात्वस्फुट--तत्काल स्पष्ट। प्रकटित विश्व विश्वोदरंभरि--प्रकटित समस्त विश्व में परिव्याप्त। प्रसरिसरत्कर-निकर स्फुरद्--स्फुरायमान शरत्कालीन चन्द्र किरणें। यश--यश। सुधाकरस्य--चन्द्रमा का।

अर्थ—अपनी भुजाओं के पराक्रम के अतिरेक से निर्वासित अनेक शत्रु एवं पक्षधर राजाओं के गगनचुम्बी राजमहलों के शिखराग्रों पर उत्पन्न प्रचुर दूर्वावनों के चरने से पुष्ट हुए हिरण द्वारा स्थगित पूर्णमासी के चन्द्रमा के निरूपण मात्र के लिए दस दिशाओं में दौड़ते हुए घनान्धकार से भरे हुए अतिशय रूप से प्रकटित, भयावह अमावस्या के दिन के चन्द्र को देखने से बारम्बार चकित एवं त्रस्त जनता की सान्त्वना के लिए तत्काल स्पष्ट एवं प्रकटित, स्फुरायमान शरत्कालीन चन्द्रकिरणों के समान जिसका यश रूपी चन्द्रमा समस्त विश्व में परिव्याप्त है।

अन्वयार्थ–प्रचण्ड खड्ग दण्ड उल्लून–भयानक खड्ग एवं दण्ड से उन्मूलित। प्रकोप पावक आमूल ज्वलत्–प्रचण्ड क्रोधाग्नि से प्रज्वलित। त्रिशूल प्रहरण प्रहार व्रण–त्रिशूल को फेंककर मारने के कारण हुए घावों के। विवरः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्यमानदनुजभटकोटिप्रकटमुण्डमालाग्रथितोरुरुण्डमालालंकरणविराजमान-वक्षःस्थलनिरीक्षणसंजायमानप्रमोदपूरपुलकिततनुश्रीचर्ममुण्डाप्रभृतिनव-कोटिकात्यायनीजनातुच्छपुत्रवात्सल्यसमसमयोदीर्यमान जयजयेतिशब्दप्रघोष पल्लविताम्बर गह्वरस्य-

शशिवदनस्य प्रतिमदनस्य प्रवरपदस्य प्रहतमदस्य।
स्फुरदुदयस्य प्रथितदयस्य स्फुटनयस्य प्रकटनयस्य॥

छलच्छोणित–छिद्रों से छल–छलाकर खून को। अच्छधारोत्पतत् अनेक बिन्दु सन्दोहो उद्भिद्यमान–बिन्दु-समूह से उत्पन्न। दनुज भट कोटि प्रकट–करोड़ों दानव-योद्धाओं के स्पष्ट रूप में। मुण्डमाला ग्रथितोरुरुण्डमालालंकरण–मुण्ड समूह से ग्रथित भारी रुण्डमाला से अलंकृत एवं उससे। विराजमान वक्षस्थल निरीक्षण–सुशोभित वक्षस्थल के निरीक्षण से। संजायमान प्रमोद पूर पुलकित–उत्पन्न प्रमोद के पूर से पुलकित। तनुश्रीचर्म मुण्डा प्रभृति–शरीर-शोभा से युक्त चर्ममुण्डा आदि प्रमुख। नवकोटिकात्यायनीजना तुच्छ–कात्यायनीदेवी के ९ करोड़ विशिष्ट भक्तों द्वारा। पुत्र–वात्सल्य सम–समयोदीर्यमान–पुत्र–वात्सल्य-भाव से उसी समय उच्चरित। जय जयेति शब्द प्रघोष–जय-जयकार के प्रघोष से। पल्लवित अम्बर गह्वरस्य–जिसने समस्त आकाश को पल्लवित कर दिया था।

अर्थ—भयानक खड्ग एवं दण्ड से उन्मूलित, प्रचण्ड क्रोधाग्नि से प्रज्वलित, त्रिशूल को फेंककर मारने के कारण हुए घावों के छिद्रों से छल-छलाकर खून की स्वच्छ धारा के गिरने के कारण अनेक बिन्दु-समूह से उत्पन्न करोड़ों दानव-योद्धाओं के स्पष्ट रूप में मुण्ड-समूह से ग्रथित भारी रुण्डमाला से अलंकृत एवं उससे सुशोभित वक्षस्थल के निरीक्षण से उत्पन्न प्रमोद के पूर (बाढ) से पुलकित, शरीर-शोभा से युक्त, चर्ममुण्डा आदि प्रमुख कात्यायनी देवी के ९ करोड़ विशिष्ट भक्तों के द्वारा पुत्र-वात्सल्य-भाव से उसी समय उच्चरित जय-जयकार के प्रघोष से जिसने समस्त आकाश को पल्लवित कर दिया था, उसके,

अन्वयार्थ—शशिवदनस्य–पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाले। प्रति-मदनस्य–कामदेव की साक्षात् प्रतिमूर्ति। प्रवर पदस्य–श्रेष्ठ पदवाले। प्रहृत-मदस्य–मद को नष्ट कर देने वाले। स्फुरद् उदयस्य–प्रगति को स्फुरायमान करने वाले। प्रथितदयस्य–दया का दान करने वाले। स्फुटनयस्य–स्पष्ट नीति वाले। प्रकट नयस्य–स्पष्ट राजनीति वाले—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रतिमल्लप्रतापश्रीमन्मल्लदेवतनुजन्मनः सतीमतल्लिका श्रीचन्द्रलेखाकुक्षिशुक्तिमुक्तामणेः सकलराजमुकुटमणेः भवानीभुजाभोगभूषाभुजंगभगवद्भाललोचनशिरोऽर्चनार्थसुरसंचारितसरोजराजिविगलन्मकरन्दबिन्दुसंदोहायित भगवत्पुराणपुरुषकरकमलाङ्गुलिकीलिकाग्रनस्योतीकरणप्रवृत्तमहाव्यथाव्याकुलकालिया ह्वकरालकालव्यालविलोचनस्रवदश्रुधारायितगङ्गायमुनास्रोतस्विनीयष्टिद्वयमन्तरेण रिपुमेदिनीदयितदत्तदैन्यसैन्यसागरवरं प्रचालयितुमक्षमत्वात्पङ्गुरितिप्राप्तगुरुविरुदस्य श्रीमज्जैत्रचन्द्रनरेश्वरस्य शर-

---

अर्थ—तथा पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाला, कामदेव की साक्षात् प्रतिमूर्ति, श्रेष्ठ पदवाला, मद को नष्ट कर देने वाला, प्रगति को स्फुरायमान करने वाला, दया का दान करने वाला, स्पष्ट नीतिवाला, एवं स्पष्ट राजनीतिवाला वह—

अन्वयार्थ—अप्रतिमल्ल प्रताप श्रीमन् मल्लदेव तनुज—अपराजेय प्रतापी श्रीमान् मल्लदेव के पुत्र। सतीमतल्लिका—महिलाओं में श्रेष्ठ। श्रीचन्द्रलेखाकुक्षिशुक्ति मुक्तामणे—श्री (रानी) चन्द्रलेखाकी कोख रूपी सीप की मुक्तामणि के समान। सकलराजमुकुटमणे—समस्त राजाओं के मुकुटमणि के समान। भवानी भुजाभोग भूषाभुजंग भगवद् भाललोचन शिरोऽर्चनार्थ—पार्वती को भुजा रूपी सर्प के आभूषण में शंकर के भालस्थित नेत्र तथा मस्तक की पूजा के लिए, सुरसंचारित सरोज राजि विगलन—देवों द्वारा संचारित कमलों से विगलित। मकरन्द-विन्दु सन्दोहायित—मकरन्द–विन्दु समूह से व्याप्त। भगवत्पुराणपुरुष करकमलाड्गुलि कीलिकाग्र नस्योतीकरण प्रवृत्त—भगवान् विष्णु के कर-कमलों की अंगुलि रूपी कील के अग्र भाग से नासावेध में प्रवृत्त। महाव्यथा—व्याकुलकालियाह्वकराल व्याल—विलोचन—स्रवद्—अश्रुधारायित—महान् व्यथा से व्याकुल कालियानाग नामक भयानक सर्प के नेत्रों से चूँती हुई अश्रुधारासे। गङ्गा-यमुनास्रोतस्विनी—यष्टि—अन्तरेण—गंगा-यमुना नदी रूपि यष्टि के भीतर से। रिपुमेदिनीदवित—दत्तदैन्य-सैन्य—सागरवरं प्रचालयितुम्—पृथिवीपति—शत्रुओं की समुद्र के समान सेनाको दरिद्रता प्रदान कर उनके। अक्षमत्वात् पङ्गुरिति प्राप्त गुरु विरुदस्य—संचालन में असमर्थ रहने के कारण पंगु इस विरुद् (प्रशस्ति) को। श्रीमत् जैत्रचन्द्र नरेश्वरस्य—धारण करने वाले श्रीमान् राजा जैत्रचन्द्र का।

अर्थ—अपराजेय एवं प्रतापी श्री मल्लदेव एवं महिलाओं में श्रेष्ठ (महारानी) चन्द्रलेखा की कोख रूपी सीप में उत्पन्न मुक्तामणि के समान पुत्र (जैत्रचन्द्र) उत्पन्न हुआ, जो कि, समस्त राजाओं के मुकुटमणि के समान, पार्वती की सर्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसमयसमुदितपार्वणशर्वरीश्वरप्रसरिसरत्करनिकरवर्करसम्पर्कसंक्षुभ्यत्तरक्षीर-सागरविलोलकल्लोलमालानुकारिणो यशोभरस्य कर्णातिथिकरणप्रवृत्तप्रभूत-प्रमोदपूरादिवनटत्पशुपतिच्छुटद्विकटजटाजूटविगलितायाः श्रीमद्भगीरथसंततेः स्वर्गमनसोपान श्रेणीयमान रङ्ग-तरङ्गपरंपरायाः भगवत्या हरशेखरायाः प्रवाहेनपवित्रितपर्यन्तभूप्रदेशस्य अविश्रान्तविश्राणितप्रभूत पुष्पफल-

---

के समान सुन्दर भुजाओं के आभूषण स्वरूप शंकर के भालस्थित नेत्र तथा मस्तक की पूजा के लिए देवों द्वारा संचारित कमलों से विगलित मकरन्द-बिन्दु-समूह से व्याप्त, भगवान् विष्णु के कर-कमलों की अंगुलि रूपी कील के अग्रभाग के नास्यवेध में प्रवृत्त होने के कारण महान् व्यथा से व्याकुल कालियानाग नामक भयानक सर्प के नेत्रों से चूंती हुई अश्रुधारा से (प्रवाहित) गंगा-यमुना नदी रूपी यष्टि के द्वारा पृथिवीपति शत्रुओं के समुद्र के समान सेना को (हाँककर तथा) दरिद्रता प्रदान कर तथा उसके संचालन में असमर्थ रहने के कारण उसे "पंगु" इस विरुद (प्रशस्ति) को धारण करने वाला, श्रीमान् राजा जैत्रचन्द्र का—

अन्वयार्थ—शरत्समय समुदित–शरत्काल में उत्पन्न। पार्वण शर्वरीश्वर प्रसरिसरत्–पूर्णमासी के चन्द्रमा की विस्तृत। कर-निकर-वर्कर संपर्क–श्रेष्ठ किरण–समूह के सम्पर्क से। संक्षुभ्यत्तर क्षीरसागर–अत्यधिक क्षुब्ध क्षीरसागर की। विलोल-कल्लोल मालानुकारिणी यशोभरस्य–माला का अनुकरण करने वाली लहरों के समान (उसके) यश को। कर्णतिथिकरणप्रवृत्त प्रभूत–सुनने से उत्पन्न। प्रमोदपूरादिव नटत्पशुपति च्छुटद् विकट जटाजूट विगलितायाः–प्रमोद के पूर (बाढ़) से नाच उठने वाले, पशुपति के विकट जटाजूट के बिखर जाने से। श्रीमद् भगीरथ संततेः स्वर् गमन सोपान–श्रेणीयमान श्रीमान् भगीरथ की सन्तति के लिए स्वर्ग गमन की क्रमवद्ध सीढ़ी के समान। रंगतरंग परम्परायाः–विचित्र तरंगोंवाली। भगवत्या हरशेखरायाः–गंगा के। प्रवाहेन पवित्रित–प्रवाह से पवित्रित। पर्यन्त भू प्रदेशस्य--भूप्रदेश पर्यन्त के।

अर्थ—शरत्काल में उत्पन्न पूर्णमासी के चन्द्रमा की विस्तृत श्रेष्ठ किरण-समूह के सम्पर्क से अत्यधिक क्षुब्ध क्षीरसागर की, माला का अनुकरण करने वाली चंचल लहरों के समान उस (जैत्रचन्द्र) के यश को, सुनने से उत्पन्न, प्रमोद के पूर (बाढ़) से नाच उठने वाले, पशुपति के विकट जटा-जूट के बिखर जाने से विगलित श्रीमान् भगीरथ की सन्तति के लिए स्वर्गमन की क्रमवद्ध सीढ़ी के समान, विचित्र तरंगोंवाली गंगा के प्रवाह से पवित्रित भू-प्रदेश वाले—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पल्लवादिदानसंजनितस्फारपरोपकारव्यापारपुण्यनैपुण्यादिव दिवमनुसरद्भिरभ्रंकषशाखाशतशिखरैस्तरुप्रकरैर्वलयितस्य स्वर्गच्युतानं सुकृतवतां शेषसुकृतेनेव भुवमुपागतस्य स्वर्गलोकस्यैकखण्डस्येव श्रीकाशीतीर्थराजस्य विभोः श्रीविश्वनाथस्य पवित्रयात्रायैः चतुर्दिगङ्गनालिङ्गन प्रमुदितनानादेशसंनिवेशेभ्यः समागतानां सज्जनजनानां मनोविनोदाय कमपि प्रबन्धमभिनेतुं प्रतिजानीमहे।

अन्वयार्थ—अविश्रान्त विश्राणित प्रभूत—अनेक अविश्रान्त एवं विश्रान्त-यात्रियों के। पुष्पफल पल्लवादि दान सजनित पुण्य-फल, पत्ते आदि के दान से उत्पन्न। स्फार परोपकार व्यापार पुण्य नैपुण्याद इव—विस्तृत परोपकार करने के पुण्य के नैपुण्य के समान।

अर्थ—अनेक देशों से आए हुए अविश्रान्त एवं विश्रान्त यात्रियों के पुष्प फल, पत्ते आदि के दान से उत्पन्न विस्तृत परोपकार के नैपुण्य के समान—

अन्वयार्थ—दिवम् अनुसरद्भिः—दिन के अनुकरण के द्वारा। अभ्रंकष शाखा-शत शिखरैः—गगनचुम्बी सैकड़ों शाखा-शिखरों से। तरु प्रकरैः वलयितस्तस्य—वृक्ष-समूह से आवलित। स्वर्गच्युतानां सुकृतवताम्—स्वर्ग से च्युत परोपकारी। शेष सुकृतेन एव—शेष सुकृतों के द्वारा ही। भुवम् उपागतस्य—पृथिवी पर आकर। स्वर्गलोकस्य एकखण्डस्य एव—स्वर्ग लोक का एक खण्ड ही। श्रीकाशीतीर्थराजस्य विभोः—श्रीकाशी-तीर्थराज का स्वामी। श्रीविश्वनाथस्य पवित्रयात्रायैः—श्रीविश्वनाथ की पवित्र यात्रा के द्वारा। चतुर्दिगंगनालिंगन प्रमुदित—चारों दिशाओं रूपी महिला के आलिंगन से प्रमुदित। नानादेश संनिवेशेभ्यः—नाना देश संनिवेश वासी के लिए। समागतानां सज्जन जनानां-आए हुए सज्जनों के लिए। मनोविनोदाय-कम् अपि—मनोविनोद के लिए कोई भी। प्रवन्धम् अभिनेतुं प्रतिजानीमहे-चरित का अभिनय करना है, ऐसा हम जानते हैं।

अर्थ—तथा सूर्य के अनुकरण के द्वारा गगनचुम्बी सैकड़ों वृक्षों से घिरे हुए, स्वर्ग से लौटकर पृथिवी पर आने वाले सज्जनों को अवशिष्ट परोपकार करने के लिए ही मानों स्वर्ग के एक खण्ड के समान तीर्थराज काशी के स्वामी भगवान् विश्वनाथ की पवित्र यात्रा के लिए तथा चारों दिशाओं रूपी महिलाओं के आलिंगन से प्रमुदित विविध प्रकार के देशों से आए हुए सज्जनों के मनोविनोद के लिए हमें किसी भी प्रवन्ध (चरित-नाटक) का अभिनय करना है, ऐसा हम जानते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नटः—सुहापिहाणविसमयरविसकुम्भाणं व वयणमत्तमिट्ठाणं हियय-दुट्ठाणं महोच्चसिलुच्चयाणं व विप्फुडकूडाणं नडविडाणं नाणारायकुमाराणं कहाकहाणगादिसंसवणसूलाकिदकन्नाणं कहमेसिं रंगं उप्पाइउं पहवेदि भयवं ।

सूत्रधारः—(किमपि स्मृत्वा) हुँ ।

(उच्चैः प्रकाशम् शार्दूलविक्रीडितसदृक्बन्धमधिकृत्य ।)

जो इक्खागनरेसवंसतिलओ रूवेण जो कामिणी,
सव्वंगप्पसरंतपीइजणगो कामुव्व कामं सया ।
दाणेणं बलिभोयविक्कमकहानिव्वाहगो नायगो,
सो एसो जयचंदणाम ण पहू कस्सासये पीइदो ।।९।।

नट—

अन्वयार्थ—सुहापिहाण विसमयर विसकुंभाण–अमृ त के ढक्कन से ढँके हुए विषमतर विष के कलशों का । वयणमत्तमिट्ठाणं–वचन मात्र से मीठे लोगों का । हिययदुट्ठाणं–हृदय से दुष्ट लोगों का । महोच्चसिलुच्चयाणं–महान् शिलाओं के ऊँचे, ऊँचे ढेरों के समान । विप्फुडकूडाणं–अदृश्य एवं छिपे हुओं का । नडविडाणं–नट एवं विटों का । नाणारायकुमाराणं–नाना प्रकार के राजकुमारों सम्बन्धी । कहाकहाणगाणि संसरण सूलाकिदकन्नाणं–कानों में शूल के समान चुभने वाले कथा-कथानक आदि के संस्रवण से । कहमेसिं रंगं उप्पाइउं पहवेदि-भयवं–यह नाटिका उन तीर्थ यात्रियों का मनोरंजन करने में कैसे समर्थ होगी ?

अर्थ—अमृत के ढक्कन से ढँके हुए विषमतर विष के कलश के समान, वचनमात्र से मधुर, हृदय से दुष्ट, महान् ऊँची-ऊँची शिलाओं के ढेर के समान, अस्पष्ट एवं प्रच्छन्न नटों एवं विटों के कानों में चुभे हुए शूल के समान तथा नाना प्रकार के राजकुमारों सम्बन्धी कथा-कथानकों के सुनते रहने के कारण तुम्हारी यह नाटिका उन तीर्थयात्रियों का मनोरंजन करने में कैसे समर्थ हो सकेगी ?

सूत्रधार—(कुछ कुछ स्मरण करके) अहो, अरे-अरे,

(शार्दूलविक्रीडित छन्द में उच्च स्वर से)

अर्थ—जो इक्ष्वाकु राजाओं के वंश के लिए तिलक के समान है, जो सौन्दर्य में कामदेव के समान है, जिसके समस्त अंग, प्रत्यंग प्रीति को उत्पन्न करने वाले हैं, जो युवतियों की सभी मनोकामनाओं को निरन्तर पूर्ण करने वाला है, जो दान देने में राजा बलि, भोजराज एवं विक्रमराज की कथाओं का निर्वाह करने वाला है, वही इस नाटिका का नायक है, जिसका नाम जयचन्द्र है, जो सुप्रसिद्ध है । वही जयचन्द्र किसे प्रसन्नता प्रदान नहीं करेगा ?।। ९ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्यैव जैत्रचन्द्रनाम्नो नरेश्वरस्य नलनृपस्येव धीरललित-गुणोत्तरस्य दामोदरस्येव नानावराङ्गनाङ्गभोगप्रसङ्गरङ्गितानङ्गरससरित्प-रिस्फुरत्तरङ्गस्य शृङ्गाररससारनिबद्धं प्रबन्धमाविर्भाव्यन्तस्तेषां रङ्गमुत्पा-दयितुं प्रभवामः। यतः

सुकईहि सन्निबद्धा जहुत्तगुणनायगा पसन्नपया।
कस्स न हरन्ति हियं वरप्पबन्धा मियच्छिव्व॥ १०॥

नटः—सच्चं सच्चं सुकइकत्तिया पबन्धा छेयाण मणोविणोयगा चिर-यालपवट्टगा य हवन्ति न अन्ने। यदो,

जं दिट्ठं सुकईहि सारसरसं छेयाण पीइप्पयं
थोवं जेव हवेदि चिट्ठदि चिरं कव्वं रसालव्व तं।
जं गीयाइ पुणो हविज्ज सुबहुं चिट्ठिज्ज थोवं पि तं
कालंचिब्भडियाफलुव्व सुकरं लोएहि सव्वेहि वि॥ ११॥

अर्थ—लोकोत्तर, धीर ललित गुणों के धारक राजा नल के समान, नाना प्रकार की श्रेष्ठ युवतियों के अङ्ग-प्रत्यंगों के भोग-प्रसंगों में रंगे हुए होने के कारण दामोदर के समान काम-रस की नदी की तरंगों से स्फुरायमान, श्रृंगार-रस के सार से युक्त राजा जैत्रचन्द्र (जयचन्द्र) से सम्बन्धित इस नाटिका का आविर्भाव उन तीर्थयात्रियों के मन को प्रमुदित करने में सक्षम हो सकेगा। क्योंकि :—

अर्थ—मृगनयनी के समान वह श्रेष्ठ प्रबन्ध किसके हृदय का अपहरण नहीं करेगा, जो सुकवियों द्वारा सन्निबद्ध हो, शास्त्रोक्त गुणों के नायक से युक्त हो, तथा जिसके पद मन कों मुग्ध कर देने वाले हों ?॥ १०॥

नट—यह सत्य है, सत्य है। कि सुकवियों द्वारा विरचित प्रबन्ध ही सज्जनों के मन का विनोद करने वाले होते हैं और वही चिरकाल तक जीवित भी रह पाते हैं। अन्य दूसरे नहीं। क्योंकि—

सुकवियों द्वारा सज्जनों में प्रीति उत्पन्न करने वाले, सारभूत एवं सरस जो भी प्रबन्ध लिखे जाते हैं, वे संख्या में यद्यपि अल्प ही होते हैं किन्तु आम्रवृक्ष के समान वे चिरकाल तक जीवित रहते हैं। और, जो गीत आदि लिखे जाते हैं, वे यद्यपि अनेक जनों का मनोरंजन करते हैं, किन्तु वे चिरभटिका के फल के समान यद्यपि सभी को प्राप्त करने में आसान होते हैं किन्तु वे अल्पकाल तक ही जीवित रहने वाले होते हैं॥ ११॥ और भी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नं च

कविणह अक्खर गुंफणिण महिलण थोर थणेहिं।
अन्नति रसहथवक्कड छइल्ल छलिज्जहिं जहिं ॥१२॥

ता पगासउ भयवं को नाम जगज्जणमणोविणोयगस्स तारिसस्स पबंधस्स सग्गमग्गे सरसियसंभवस्स सोयरो।

सूत्रधारः—(तदर्थं सट्टकमाश्रित्य)

छब्भासासुकवित्तजुत्तिकुसलो जो सारदादेवया-
दिन्नपोढवरप्पसायवसओ रायाण जो रंजगो।
जो पुव्वाण कईण पंथपहिओ एयस्स सो कारगो
विक्खाओ नयचंदणामसुकई नीसेसविज्जाणिही ॥१३॥

अन्नं च

कप्पूरमंजरी जह पुव्वं कविरायसेहरेण कया।
नयचंदकई विरयइ इन्हि तह रंभमंजरिं एयं ॥१४॥
कप्पूरमंजरी कह रंभामंजरिं (ए) न अधिययरा।
कप्पूराउ न रंभा रंभाओ जेण कप्पूरो ॥१५॥

सुकवियों के अक्षर-विन्यास एवं युवतियों के कठोर वक्षस्थल रसिकों के हृदय एवं हाथों को प्रमुदित करते हैं। उन्हीं के द्वारा सज्जन-रसिक (छइल्ल) ठगे जाते हैं ॥ १२ ॥

अर्थ—तब आप (सूत्रधार को लक्ष्य करके) जगत् के लोगों का मनोविनोद करने में सक्षम उस प्रबन्ध (नाटिका) के कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के समान उसके जनक अर्थात् लेखक के नाम को प्रकाशित करें।

सूत्रधार—(उसके लिए सट्टक को आश्रित करके)

अर्थ—जो समस्त विद्याओं का निधि है, जो छहों भाषाओं (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश एवं संस्कृत) में युक्तिपूर्वक काव्य-रचना करने में निपुण हैं, जो शारदा देवी द्वारा प्रदत्त वरदान से प्रतिष्ठित हैं, जो अपनी काव्य-रचना से राजाओं का मनोरंजन करता है, और जो पूर्ववर्ती कवियों के पथ का पथिक है, वही सुप्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ कवि नयचन्द्र प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक है ॥ १३ ॥ और भी—

जिस प्रकार कवि राजशेखर ने पहिले कर्पूरमंजरी (सट्टक) का प्रणयन किया था, उसी प्रकार कवि नयचन्द्र ने इस रम्भामंजरी नाटिका (सट्टक) का प्रणयन किया है ॥ १४ ॥

(किन्तु यह) रम्भामंजरी (सट्टक) नाटिका (गुणात्मकता में) कर्पूरमंजरी से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नटः—ता किं एयारिसो वि अच्चब्भुओ कविराओ अत्ताणं वण्णयि-दुमुदासिवं व भजंतो संभावीयदि ।

सूत्रधारः—नहि नहि स खल्वात्मानमुपश्लोकितवानेव । यथा,

पीत्वा श्रीनयचन्द्रवक्त्रकमलाविर्भाविकाव्यामृतं
को नामामरचन्द्रमेव पुरतः साक्षान्न कुर्याद्ध्रुवम् ।
आदावेव भवेदसावमरता चेत्तस्य नो बाधिका
दुर्वारः पुनरेष धावतुतरां हर्षभ्रमश्चेतसि ॥ १६ ॥

कार्यात्कारणसंविदं विदधते नैकान्तमुत्सृज्य य-
त्तत्तेषामिव नोपि कर्हिचन किं चेतश्चमत्कारकृत् ।
नैवं चेन्नयचन्द्रसूरिसुकवेर्वाणीं विधायामृतं
श्रीहर्षं तमथामरं तमपि तत्किं संस्मरेयुर्बुधाः ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ क्यों न हो ? (अर्थात् श्रेष्ठ है ही) क्योंकि कर्पूर से रम्भा (केला) नहीं, बल्कि रम्भा (केला) से ही कर्पूर की उत्पत्ति होती है । (स्वातिनक्षत्र की बूंद केला में पड़ने से कर्पूर, सर्प के मुख में पड़ने से विष एवं सीपी में पड़ने से मोती बन जाती है) ॥ १५ ॥

नट—जब कविराज नयचन्द्र इतना अद्भुत कवि है, तब भी वह अपना परिचय देने में उदासीन क्यों प्रतीत होता है ?

सूत्रधार—नहीं नहीं, वह (आत्म-परिचय देने में) उदासीन नहीं है । उसने अपने विषय में तो कहा ही है कि—

उस कवि अमरचन्द्र को कौन नहीं जानता, जो कवि श्री नयचन्द्र के मुख रूपी कमल से उत्पन्न काव्य रूपी अमृत का पान कर सभी के सम्मुख चन्द्रमा के समान साक्षात् अमर हो गया (अर्थात् उसके सम्मुख कोई भी कवि ठहर नहीं सकता) । इस कवि अमरचन्द्र की अमरता से किसी को कोई बाधा नहीं किन्तु इस (नयचन्द्र कवि) की श्रेष्ठ रचनाओं के कारण यदि इस (नयचन्द्र कवि) के प्रति लोगों के चित्त में महाकवि हर्ष (नैषध-काव्य के लेखक) का (निरन्तर ही) भ्रम उत्पन्न होता रहे, तो यह भ्रम ही दुर्निवार है ॥१६॥

अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को छोड़कर जो कार्य से कारण की उत्पत्ति को प्रमाणित करते हैं हम (लेखक) उन एकान्तवादियों के इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते । उनका यह तर्क क्या चित्त को चमत्कृत कर सकता है ? अर्थात् नहीं ।

जब एकान्तवादियों का यह तर्क किसी के भी चित्त को चमत्कृत नहीं कर सकता, तब सुकवि नयचन्द्र सूरि की काव्य-वाणी रूपी अमृत का पान कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयचन्द्रकवेः काव्यं रसायनमिहाद्भुतम् ।
सन्तो मुदन्ति जीवन्ति श्रीहर्षाद्याः कवीश्वराः ॥ १८ ॥
लालित्यममरस्येह श्रीहर्षस्येव वक्रिमा ।
नयचन्द्र कवेः काव्ये दृष्टं लोकोत्तरं द्वयम् ॥ १९ ॥

नटः—ता किं पयोजणविसेसं पडिवज्जिय एस सट्टयप्पबंधबंधप्पारंभो।

सूत्रधारः—

इक्खागूण नरेसवंसतिलओ सो जेतचंदप्पहू
जुत्तीए परिणीय सत्तघरिणी रूवेण जा अच्छरा।
एयाणिं भविदुं जहुत्तविहिणा भूमण्डलाखंडलो
रंभं तं परिणेदि अट्ठमतियं एयम्मि सट्टे वरे ॥ २० ॥

विद्वज्जन क्या महाकवि हर्ष एवं महाकवि अमरचन्द्र को भी स्मरण कर सकेंगे ? अर्थात् नहीं ॥१७॥

अर्थ—कवि नयचन्द्र सूरि का यह काव्य इस संसार के लिए अद्भुत रसायन है। सज्जन पाठकगण तो इस कवि की रचनाओं को पढ़कर आनन्दित होते हैं और हर्ष आदि कवि इसकी रचनाओं के लिए जीवित रहना चाहते हैं ॥१८॥

अर्थ—कवि अमरचन्द्र के काव्य में लालित्य है और श्रीहर्ष के काव्य में वक्रिमा (वाग्मिता), किन्तु नयचन्द्र कवि के काव्य में उन दोनों (लालित्य एवं वक्रिमा) का लोकोत्तर समन्वय दृष्टिगोचर होता है ॥१९॥

नट—तो किस प्रयोजन-विशेष से कवि ने इस सट्टक-प्रबन्ध की रचना का समारम्भ किया है ?

सूत्रधार—इक्ष्वाकुवंश के नरेशों के तिलक स्वरूप इस राजा जैत्रचन्द्र ने रूप-सौन्दर्य में अप्सरा के समान सात स्त्रियों से विवाह किया है। यहाँ इस सट्टक में अब वह आठवीं रंभा से विवाह करेगा, जिससे कि वह समस्त भू-मण्डल का इन्द्र बन सके, जैसा कि भविष्य-वक्ताओं ने कहा है ॥२०॥

(नेपथ्य में) उनके लिये जो संसार की महानदी में मज्जित हो रहे हैं (और) जैत्र, जो कि प्रेङ्खादिपर्यङ्क विमान में निवास करता है और जो रंभादि नारियों का उपभोग करता है, उससे इन्द्र का पद अब दूर नहीं ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नेपथ्ये)

सरिद्वरायामिह मज्जतां नो
जैत्रं तदैन्द्रं पदमस्ति दूरे।
प्रेङ्खादिपर्यङ्कविमानवासा
रम्भादयो यत्र च भोगपात्रम् ॥ २१ ॥

(इति ध्रुवां श्रुत्वा) अहो प्रक्रान्तमेव नर्तकैः। अनन्तरकरणीयं संपादयामः। (इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

भाले कस्तूरिकायास्तिलकमथ वहन्कर्णपूरं च कर्णे
ताम्बूलं वक्त्रपद्मे वपुषि मलयजालेपनं शैत्यकारि।
पश्यन्नृत्यं पुरस्ताच्छ्रवणसुखकरं स्फीतगीतं च शृण्व-
न्निन्द्रोऽयं जैत्रचन्द्रो जनयति न दृशोः कस्य दृष्टः प्रमोदम् ॥२२॥

अपि च

केशा मोरकलावविब्भमहरा वत्तं ससंगोवमं
कंठो वेणुविलासआसवसई बाहू मिणालाकिदी।
लावण्णं मलयाचलद्दुमरसो नीलुप्पले लोयणे
किं किं रम्मयरं न जेतपहुणो दिट्ठं मणोपीइदं ॥२३॥

(इस ध्रुवा को सुनकर) अरे! नर्तकों के द्वारा नर्त्तन का समारंभ कर दिया गया है। हमलोग भी बाद के करणीय कार्यों का सम्पादन करें। (ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं।)

प्रस्तावना

ललाट प्रदेश पर कस्तूरी का तिलक लगाये हुए, कानों में कर्णपूर को धारण किये हुए, मुख में ताम्बूल चबाते, शरीर में शैत्यकारी मलयज का आलेप लगाये, आगे नृत्य को देखते हुए, श्रवण सुखद गीतों को सुनते हुए इन्द्रस्वरूप परिदृष्ट यह जेत्रचन्द्र किसकी आँखों को आनन्द (प्रमोद) प्रदान नहीं करता ? ॥२२॥

और भी—उसके केश मयूर के बर्हिभार के सौन्दर्य का हरण करने वाले हैं, मुख चन्द्रमा के समान है, कण्ठ बेणु की मधुर तान का आवास है, भुजायें मृणाल की आकृति के समान है, शरीर का लावण्य चन्दन के अनुलेप (चन्दन रस) के समान है, आँखें नील-कमल की तरह हैं, इस प्रकार राजा का कौन-सा अंग रम्यतर और मन को प्रीति देनेवाला नहीं है ? ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरि पेखिला मस्तकावरी केशकलापु।
तरि परिस्खलिला मयूरांचे पिच्छप्रतापु ॥
जरि नयनविषयू केला वेणीदंडु।
तरि साक्षाज्जाला भ्रमरश्रेणीदंडु ॥
जरि दृग्गोचरी आला विसाल भालु।
तरि अर्द्धचंद मंडलु भइला ऊर्णायुजालु ॥
भ्रूजुगल जाणु द्वैधीकृत कंदर्पचापु।
नयननिर्जित्तु जाला खंजनु निः प्रतापु ॥
मुखमंडलु जाणु शशांकदेवताचे मंडलु।
सर्वांगसुंदरता मूर्तिमतु कामु।
कल्पद्रुम जैसे सर्वलोक आशाविश्रामु ॥

(इति बन्दिवृन्दैः सप्रश्रयं प्रस्तूयमानः प्रेङ्खापर्यङ्कोत्सङ्गनिषण्णस्ततः प्रविशति श्रीजैत्रचन्द्रो नाम महीमहेन्द्रः। देवीसखी विदूषकपुरोहितादिः कियान्परिच्छदश्च।)

रूपेण साक्षाल्ललिता घृताची
भाना सची कल्पलता मघोनी।
राजीमती मेनकया समा सा
तिलोत्तमा मन्मथमञ्जरी च ॥ २४ ॥
अनङ्गलेखा गदिता सुकेशी
सप्तोर्वशी चैव वसन्तसेना।
कर्पूरिका राजवधू सखी सा
विदूषको रोहक नामधेयः ॥ २५ ॥

यदि मयूरों ने राजा के मस्तक पर केश-कलाप को देखा, तो उन्होंने अपने पुच्छ-प्रताप को ही भुला दिया। यदि केश-कलाप नयनों पर पहुँचा तो वह भ्रमरश्रेणियों का साक्षात् समूह ही प्रतीत होने लगा।

यदि (उस राजा का) विशाल भाल दिखा तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों अर्द्धचन्द्र ऊर्णा-जालों से ढँक गया हो। दोनों भौंहें, ऐसी लगती हैं जैसे कन्दर्पचाप (कामदेव का बाण) दो खण्डों में बँट गया हो, उसकी आँखों के द्वारा मानों खञ्जन के नयनों का सौन्दर्य ही जीत लिया गया हो, मुख चन्द्रमण्डल की तरह सम्मोहक प्रतीत होता है। यह आशा एवं आकांक्षाओं को पूरा करने में कल्पवृक्ष की तरह है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इति सर्वे परिक्रम्य औचित्यस्यानतिक्रमेणोपविशन्ति)

राजा—(परितो विलोक्य)

गीतं शुचि प्रौढवधूविनोदा
वाचां विलासाः सरसाः कवीनाम् ।
पुण्यं च तारुण्यमृतुर्वसन्तः
संसारसारं ध्रुवमेतदेव ॥२६॥

(इत्थंतरम्मि अंबयसिहरे महमहियमंजरिसणाहे ।
परहुयवहूयरडियं कुहूकुहूमहुरसद्देण) ॥२७॥

देवि, काश्यपकुलप्रदीपनन्दने अस्मद्विलोचनानन्दने विकसितविविध-कुसुमप्रकरपरिमलसुरभेः सुरभेः समारम्भेण वर्द्धाप्यसे ।

तथा सभी जनों एवं लोकों की विश्राम-भूमि है और सर्वाङ्गसुन्दरता में तो मानों वह मूर्त्तिमान् कामदेव ही है।

(इस प्रकार वन्दिवृन्दों के द्वारा प्रणयपूर्वक प्रशंसित प्रेङ्खापर्यङ्क के उत्सङ्ग में आसीन महीमहेन्द्र श्री जैत्रचन्द्र प्रवेश करते हैं। उनके साथ महारानी तथा उनकी सखियाँ, विदूषक, पुरोहित तथा अन्य सामान्य परिचारक उनका अनुगमन करते हैं।)

रूप सौन्दर्य में ललिता साक्षात् घृताची है, भाना शची है और कल्पलता मघोनी है। राजीमती मेनका के समान है और मन्मथ-मंजरी तिलोत्तमा है। अनङ्गलेखा सुकेशी के समान तथा वसन्तसेना उर्वशी की तरह प्रतीत होती है। कर्पूरिका राजवधू की सखी है और रोहक नाम का विदूषक है ॥२४-२५॥

(इस प्रकार सभी मंच की ओर चलते हैं और अपने-अपने उचित आसन ग्रहण करते हैं।)

राजा—(चारों ओर देखकर)

संगीत का माधुर्य और प्रौढ़ बधुओं का विनोद, सरस कवियों का वाग्विलास, सुन्दर एवं रसाकर्षक यौवन तथा वसन्त ऋतु, ये सब स्वयं ही संसार के सार पदार्थ ॥ २६ ॥

(इसी समय महमहाती मंजरियों से युक्त आम्रवृक्ष के शिखर पर कोयल (परभृतवधू) मधुर कुहू-कुहू की रट लगा रही है) ॥२७॥

हे देवी, काश्यप कुल के प्रदीप को प्रसन्न करने वाली, मेरी आँखों को आनन्द देनेवाली, अनेक विकसित फूलों के समूह की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

एदे दे मलयाचलाओ-पवणा वायंति सेयापहा
विल्लंति द्दुमपल्लवा नवनवा कंदप्पभल्लीनिहा।
गुंजंता महुरं भमंति भमरा रुक्खाओ रुक्खंतरं
संपत्ता सुरही महीवरवहूसोहग्गवित्थारगा ॥२८॥

देवी वसन्तसेना—देव! लाहगे पडिलाहणं खु ओचिदीमंचदि, नमुक्कारे पडिनमुक्कारो पडिभादि। ता अहंपि पडिवद्धावियापर्यावि पडिवत्तुमिच्छामि।

राजा—देवि शशाङ्कसखि, स्वैरं। किमत्र प्रष्टव्या वयम्?

देवी वसन्तसेना—

ते नूणं न बुहा भणंति मयणं वीरं वसंतेवि जे
पंचेसुं सिसिराइयेसु वि जहा लोयप्पवाहट्ठिया।
गीयं पुप्फभरा पिकज्झणि करा चंदस्स चित्ताणिलो
जेउं तस्स पवट्टियस्स भुवणं सव्वेहि इम्हं सरा ॥ २९ ॥

परिमल की सुरभि से वसन्त के समारम्भ के द्वारा तुम्हारा वर्द्धापन किया जा रहा है।

प्रस्वेद को दूर करने वाली यह मलयानिल बह रहा हैं, कन्दर्प के बाण की तरह ये नये-नये तरुपल्लव झूम रहे हैं, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के समीप गुंजन करते हुए भ्रमर चक्कर काट रहे हैं। मही की वरवधू के सौभाग्य को विस्तार देनेवाला यह मादक वसन्त आ गया है।

देवी व०—देव, उपायन और वर्धापन का निवर्त्तन सर्वथा उचित प्रतीत होता है। इसलिये मैं भी अपनी ओर से वर्धापन के द्वारा आपका स्वागत करना चाहती हूँ।

राजा—देवी, जैसा तुम चाहो, स्वेच्छा से करो। इसमें हमलोगों से अनुमति लेने की बात ही कहाँ उठती है?

देवी व०—वसन्त काल में भी जो लोग मदन (कामदेव) को वीर कहते हैं, वे निश्चय ही ज्ञानी नही है। गीत, पुष्पभार, कोकिल की मधुतान; चन्द्रमा की रजताभ किरणें और वासन्ती हवा—ये सभी कन्दर्प के बाण हैं। संसार को इस ऋतु में जीतने के लिए और कौन कटिबद्ध हो सकता है? ॥ २९ ॥ और भी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नं च,

इक्को वसंतसमओ अन्नं जइ फुल्लिया अहं जाई।
इयराओ वल्लीओ ता मुणिही को वराईओ ॥३०॥

इय चिंतिऊण चित्ते मन्ने एसा न फुल्लइ वसंते।
अहवा निच्छिदसगुणे परच्छिवंतो न महमहई ॥३१॥ (युग्मम्)

(नेपथ्ये) वैतालिकयोरेकः।

जय भरहरायकुलजणियसोह।
जय दूरविवज्जियदोहलोह ॥
जय माणिणिमाणपभंगदक्ख।
जय मग्गणवंच्छियकप्परुक्ख ॥
जय रूवविणिज्जियमग्रणदप्प।
जय अरिसिरिनिम्मिअअसिझडप्प ॥
जय राईमईरयभोयइंद।
जय-जय ललिताकुमुइणी चंद ॥
जय सरससरोरुहसरसपाय।
जय जयतचंद रायाणराय ॥

एक तो यह वसन्त ऋतु है और, जब यदि मैं स्वयं है फूलने के लिये प्रस्तुत हूँ, तब दूसरे फूलों की चिन्ता कौन करे? ऐसा सोचते हुए मैं तो ऐसा मानती हूँ कि यह बेचारी जूही (यूथिका) इसी कारण से वसन्त काल में नहीं खिलती। अथवा, अपने शील-गुणों के कारण ही वह वसन्त ऋतु में पुष्पित नहीं होती है। जैसे कि दूसरे स्पृहालु समानधर्मी पुष्प-पादप किया करते हैं ॥ ३०-३१ ॥

नेपथ्य में (वैतालिकों में से एक)

आपकी जय हो, जिसने भरत के राजकुल की शोभा को उत्पन्न किया है और जिसने द्रोह और लोभ को दूर कर दिया है। उसकी जय हो, जो मानिनी नायिकाओं के मानभंग में चतुर है। उसकी जय हो, जो याचकों के लिए अभिलषित फल को देने के लिए कल्प-वृक्ष के समान है। उसकी जय हो, जो अपने रूप-लावण्य के द्वारा मदन के दर्प को जीतने वाला है। उसकी जय हो, जो शत्रुओं के मस्तक में तेज खड्ग की नोंक भोंकने में चतुर है। राजीमति रानी के रतिभोग में जो इन्द्र के समान है; ललिता रूपी कुमुदिनी के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुहाइ भोदु देवस्स सुरहिसमारम्भो । यदो,

तं जुत्तं विहिणाऽतणू विरइओ जं कामवीरुन्नहा
आकन्नं सतणू स पूरिय सरा मुच्चिज्ज इन्हि जइ ।
मुच्छिज्जा सयलं पि ता तिहुयणं उम्मत्तदेवासुरं
इक्कं ताव विसं तओवि मिलिदं तिल्लेण किं वन्निमो ॥३२॥

राजा—(प्रमुदितसर्वाङ्गः) प्रिये, वसन्तसेने नाहं वर्द्धापकस्तव, नापि त्वमपि वर्द्धापिका मम। किंतु आवयोर्वर्द्धापकः परमहंसो नाम एष मङ्गलपाठकः । सत्यमेव वर्णयन्ति वुधाः वसन्तोऽयमृतुराज इति । यतः,

अन्नेवि हुंतु उइओ सरसा परं ते
एयेण णो सुरहिणा सिविणेवि मन्ने ।
वायंति जत्थ रयसेयभरं हरंता
चित्ताणिला मयणपावगबोहदक्खा ॥ ३३ ॥

जो चन्द्रमा के समान है, और जिनके कोमल-चरण सरस कमल की तरह हैं, उन राजाओं के राजा जयचन्द्र की जय हो ।

यह वसन्त ऋतु का समारम्भ आपके लिये सुखदायक हो । क्योंकि,—

यह ठीक है कि विधि ने कामदेव को अतनु (तनु रहित) बनाया है; यदि उसका शरीर होता तो जब वह धनुष की प्रत्यञ्चा को कानों तक खींच कर छोड़ता, तब सभी देव और असुर प्रेम में उन्मत्त हो जाते और सम्पूर्ण त्रिभुवन उसी प्रकार मूर्छित हो उठता जिस प्रकार की जहरीली विष से और वह भी यदि तैल-मिश्रित हो जाय तो उसका वर्णन हम कैसे कर पावेंगे ? ॥ ३२ ॥

राजा—(सर्वाङ्ग प्रसन्न होकर)

प्रिये वसन्तसेने । न तो मैं तुम्हारा वर्द्धापक हूँ और न तुम ही मेरी वर्द्धापिका, किन्तु हम दोनों का वर्द्धापक तो यह मङ्गलपाठ करनेवाला परमहंस है ।

सचमुच ही वसन्त को पण्डितजन जो ऋतुओं का राजा कहते हैं, वह उचित है । क्योंकि—

दूसरी ऋतुएँ भले ही मधुर एवं सम्मोहक हों, किन्तु दूसरी ऋतु स्वप्न में भी ऋतु वसन्त के समान नहीं हो सकती । क्योंकि रतिक्रीड़ा के कारण उत्पन्न पसीने की बिन्दुओं को सुखानेवाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवी वसन्तसेना—(अत्यच्छवस्त्राच्छादितगात्रा ईषच्चन्दनद्रवोपलिप्ताभ्यां स्तनाभ्यां मलयानिलस्य स्पर्शसुखमनुभवन्ती।) देव! अवितहं जदेवं परं वसंतस्स उईरायत्तेवि सोहग्गसारवन्नणा मलयाणिलस्सेव पडिहादि। यदो,

पत्ता जे मलयाचलस्स महता कट्ठेण पिट्ठे पुरा-
रोहेऊण कहंपि इत्थ पवणा पत्ते वसंतूसवे।
ते इन्हिं घणलित्तचंदणवहूपीणत्थणे चारिणो
मन्नंते मलये पुणोवि अचिरा संपत्तुमारोहणं ॥३४॥

विदूषक—भो भो, तुम्हे सव्वेवि कईसरत्तणे दक्खत्तणे अत्ताणं वण्णध, उत्ताणा होध। परं जाणामि जइ मं वज्जिय कोवि कूडक्खरमत्तमवि जाणादि। अकहिओवि अभासमाणोवि जइ किंचि कूडक्खरविउ ता इक्कुच्चिय अहं। (हृदये हस्तं ददत्पुलकिततां नाटयन्) जस्स मे पाणवल्लहाए पियामहो पण्डियाणं पुत्थयवाहमाणाणं वयल्लाणं आवालत्तणेऽहिगमओ विचारगे आसि।

और मदनपावक (कामाग्नि) को प्रदीप्त करनेवाली वसन्त ऋतु ही है ॥ ३३ ॥

देवी व०—(स्वच्छ वस्त्रों से ढँकी सुन्दर गात्रवाली ओर ईषत् चन्दन लेप युक्त दोनों स्तनों पर मलयानिल के स्पर्शसुख का अनुभव करती हुई।) देव! यह सत्य है, किन्तु वसन्त के ऋतुराज होने पर भी मलयानिल के सौभाग्य की वर्णना ही उचित है। क्योंकि—

पूर्व में तो वासन्ती हवायें घोर कष्ट के साथ मलयाचल पर आकर चढ़ीं और अब वसन्तोत्सव में वे उसी प्रकार के आरोहण का आनन्द ले रही हैं क्योंकि उन्हें अब यह सरल हो गया है। वे अब नारियों के चन्दन से लिप्त पीन-स्तनों पर संचरण कर रही हैं। अतः ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों उन वासन्ती हवाओं को अब मलयाचल पर आरोहण सहज प्राप्त हो गया है ॥ ३४ ॥

विदूषक—तुम सब भले ही अपने काव्यचातुर्य के वर्णन में अपने को दर्पित कर गर्व का अनुभव करो। किन्तु मैं जानता हूँ कि मुझे छोड़कर कोई भी कूटाक्षर नहीं जानता। यद्यपि मैं गर्व नहीं करता, तथापि यह सत्य है कि मैं ही एक मात्र कूटाक्षरों का जानकार हूं (हृदय पर हाथ रख करआनंद के साथ नाचते हुए) मैं उन लोगों को जानता हूं, जिनके पितामह ने बैलों को बनाया है और जो पण्डितों की पुस्तकों को ढोते रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेटिका—(करतालिकादानपूर्वकं अट्टहासकं कृत्वा) अहो पारंपज्जेणेव पवट्टिदा तुम्हाणं कुले विज्जा। ता तुह वि कूडक्खरविउत्ते किमच्चरियं।

विदूषकः—(सक्रोधं भृकुटीं ललाटेनालिङ्गितां कुर्वन्) हा चेटियापुत्ति, घट्टबहुधुत्ति, अम्हे एयारिसा मुक्खा जाया जं चेडिये, तुवंपि उपहससि। (दास्याः अधिशिरो हस्तं प्रसारयन्) पडउ पडउ एयस्स हत्थस्स तले अयालिया विज्जू। अन्नं च, नडणरोवभुत्तमुत्तसुरापुडपत्तलिहणसुणहरसणासणाहिरसणे! पडिसुन्नदेउलकोणरच्छाअंकिदपिट्ठवसणे अणेगखिगजणउव्वासियरसणे! नाणस्स सारं पच्चअज्जेव। किं सूरस्स दंसणाहिगमे जोईक्कंतरं गवेसीयदि।

कर्पूरिका—(उद्यन्तं शशाङ्कं संभाव्य) जुत्तं जेवेदं। ता वण्णय नहोमंडलमंडणं उइयंतं ससंकमंडलं।

विदूषक—तुह दासीए पुरओ वण्णइस्सं? हा हा उव्वसीभूदं असेसंपि जयं? किं रयणं कत्थवि गामे विक्कीयदि? किं मालईकुसुमं डब्भरज्जूए

चेटिका—(ताली बजाकर अट्टहास करती हुई) अरे! जब तुम्हारे कुल में परम्परा से ही विद्या प्रवर्त्तित है, तो फिर यदि कूटाक्षरों के रहस्य जानने में चतुर हो तो, इसमें आश्चर्य ही क्या?

विदूषक—(क्रोध पूर्वक भौंहें चढ़ाते हुये)। हा चेटिकापुत्रि! अनेक धूर्तकामियों से लिपटने वाली, क्या हमलोग ऐसे मूर्ख हैं कि तुम जैसी दासी की बेटी भी उपहास करती है? (चेटिका के माथे पर हाथ फैलाते हुए)। इस हाथ के नीचे आकालिक बिजली गिरे। नटों के द्वारा सुरापान कर छोड़े हुए पुटपत्रों (दोनों) को चाटती हुई तुम कुत्तों की तरह अपनी जीभ शीघ्रता से निकालो, जिसके पृष्ठभाग के वस्त्र प्रतिशून्य देवमन्दिर की राख से अंकित है, जिसके अधोवस्त्र विभिन्न अवसरों पर रस-लम्पटों के द्वारा उतारे गये हैं। ज्ञान का प्रमाण तो प्रत्यक्ष अनुभव ही है। सूर्य को देखने के बाद क्या कोई दूसरे नक्षत्रों की खोज करना चाहता है?

कर्पूरिका—(उदीयमान चन्द्रमा के उदय की संभावना करते हुए) ठीक है, नभोमण्डल के भूषण रूप उगते हुए चन्द्र-मण्डल की शोभा का वर्णन करो।

विदूषक—तुम जैसी दासी के आगे मैं चन्द्रोदय का वर्णन करूँगा? क्या समस्त संसार सज्जनों से खाली हो गया है? क्या रत्न कभी गाँव में भी बेचा जाता है? घास की डोरी में क्या मालती के कुसुम पिरोये जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुम्फीयदि ? अत्तणो सामियस्स देवस्स देवियाए य पुरदो उत्तीए अइउत्तीए अत्तणो किदं कव्वयुगं भणियस्सं। सा मुद्दा जा जक्खिणिदिट्ठीए पाडीयदि।

(इत्युक्ति पूर्वं राजाग्रे पठति।)

नक्खत्त अक्खयसणाहतले विसाले
थाले हिरम्मणिमए दिसिदेवियाए।
अंकच्छलेण तिलतिल्लगुडंसयुक्तो
चंदो विभादि गयणे बलिरुड्ढियव्व ॥ ३५ ॥

कर्पूरिका—एसा उत्ती !

विदूषक:—(तद्वचनमनाकर्णितमिव कृत्वा देवीमनुसंधाय)

सच्चं भणामि मह पाणहिया मुहेण
जित्तस्स दुक्खभरओ अइपंडुरस्स।
जुत्तातवस्स उवमा ससिणो किमन्ने
मुद्धा भणंति अहलं बहु वग्गजालं ॥ ३६ ॥

हैं ? अपने स्वामी और महारानी के समक्ष ही मैं कल्पनानुरञ्जित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण दो कविताओं (काव्ययुग्म) को सुनाऊँगा। निश्चय ही सच्ची मुद्रा वही है, जो यक्षिणी की आँखों को भी बन्द कर दे।

(ऐसा कहकर वह राजा के आगे पढ़ता है)।

दिशा रूपी देवियों के द्वारा स्वर्ण एवं रत्नों के विशाल थाल में अक्षत के कणों के समान नक्षत्रों को रखकर अपने काले धब्बों के साथ काले तिल और तेल एवं गुड़ से युक्त यह चन्द्रमा ऐसा लग रहा है मानों वह यज्ञवलि की तरह फेंक दिया गया हो ॥ ३५ ॥

कर्पूरिका—यह कितनी सुन्दर उक्ति है ?

विदूषक—(उसकी बातों को अनसुना जैसा कर देवी के समक्ष पढ़ता है।)

सत्य कहता हूँ, मेरी प्रिया के मुख-सौन्दर्य के द्वारा विजित होने के कारण अतीव पीला, और दुःख से भरा यह चन्द्रमा केवल सूर्य के साथ ही तुल्ना (उपमा) करने के योग्य है। किसी अन्य के साथ नहीं। फिर भी, मूर्ख जन चन्द्रवर्णन में व्यर्थ ही वाग्जाल का प्रयोग किया करते हैं ॥ ३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्पूरिका—(करतलचालनेनोपहासाभिनयं नाटयंती) देव, नियपाणहराए रक्खसियाए वब्बरियाए वयणेण [आ] तवस्स पराजयेण वब्बरियाए मुहस्स गोरत्तणसुंदरत्तणसूयगेण महज्झणिणा एसा अइउत्ती।

विदूषकः—(अर्द्धांगोल्लासितत्वेनाभिमानाभिनयं नाटयन्) ता भणसु तुमं कुत्ती।

देवी वसन्तसेना—सहि कप्पूरिए, अम्हाणं पुरओ जं किंपि भणसि परं पंडिच्चस्स। परिक्खा एरिसाणं महापंडियाणं कूडक्खरविऊमयल्लिगाणं ज्जेव अग्गदो संभावीयदि। सुवण्णस्स महग्घदा कस्सवट्टिए पव्वट्टणेण। ता भणसु तुमंपि अत्तणो किदं किंपि अउव्वं ससंकवन्नणाकव्वं।

कर्पूरिका—

चंदो विभादि निसिवारविलासिणीए
मुत्ताहलं व अरहट्टविवट्टमाणं।
अंकच्छलेण गुणवट्टणमग्गरंध-
सेसावगासउवदंसियभूविलासं ॥ ३७ ॥

कर्पूरिका—(तालियाँ पीटती हुई तथा विदूषक के प्रति उपहास का अभिनय करती हुई।)

हे देव निश्चय ही यह अतिशयोक्ति पूर्ण उक्ति है क्योंकि यह अपनी पत्नी राक्षसी बर्वरिका के मुख की आभा और सुन्दरता का निरूपण करता है जो कि सूर्य को भी पराजित कर देता है।

विदूषक—(अर्द्धाङ्ग को उल्लसित कर अभिमान का अभिनय करता हुआ) तब, कुत्ती, तुम भी बोलो।

देवी व०—सखि कर्पूरिके! हमलोगों के आगे जो चाहे सो बोलो, लेकिन उसके पाण्डित्य की परीक्षा तो उन महापण्डितों के आगे ही होगी, जो कूटाक्षरों के महापण्डित हैं। सोने की महार्घता तो कसौटी पर कसने के बाद ही आँकी जाती है। इसलिए चन्द्रमा के सौन्दर्य-वर्णन में तुम भी अपने चन्द्रोदय सम्बन्धी अपूर्व काव्य का पाठ करो।

कर्पूरिका—(काव्य-पाठ करती है।)

रहँट पर विवर्त्तमान यह चन्द्रमा रात रूपी विलासिनी के मुत्ताफल के समान चमक रहा है। उसका चिह्न उसकी भौहों की चाल है, जो छिद्र के द्वारा धागे के प्रयोजन के लिए देखा जाता है॥ ३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—देवो वसंतसेने, कर्पूरिका कर्पूरिकैव।

विदूषकः—हुंतु कप्पूरिया कप्पूरिया परं रोहगो रोहगुज्जेव।

राजा—(हसित्वा) सत्येनैव गर्वोद्धुरा भवदि कर्पूरिका यस्याः कवित्वमीदगर्थगम्भीरं यदवगाह्यमानं मर्मवेधितया धूनयतितमां महाकवीनामपि क्षणं शिरांसि। यदुक्तम्,

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥ ३८॥

देवी वसन्तसेना—महाराय, न खलु अज्जत्तणिज्जेव सुकइत्तणे एयाए पइट्ठा। महाकइणं पवत्ताए गणणाए एयाओज्जेव पढमं रेहा कविचक्कचूडामणित्ति। केणावि न माणिदा ता क्कि। तं क्खु तस्स बालिसत्तं ज्जेव।

विदूषकः—ता फुडं ज्जेव किन्न भणीयदि रोहगो मुक्खाणं सिरस्सेहरुत्ति। (किमपि विचिन्त्य शिरो धुन्वन्) आ कथिदं ज्जेव मह इहिं राउले आगच्छंतस्स जं जीवियव्वहरे एयम्मि राउले ण कोवि तारिसो जो तुम्हाणं

राजा—देवी वसन्तसेने! कर्पूरिका सचमुच कर्पूरिका ही है।

विदूषक—ठीक है, कर्पूरिका तो कर्पूरिका हो सकती है लेकिन रोहक भी तो रोहक ही हो सकता है।

राजा—(हँसकर) सचमुच कर्पूरिका गर्वोद्धुरा होती भी है जिसका कवित्व अर्थगाम्भीर्य से युक्त है, जिसमें अवगाहन करने पर मर्मवेधक होने के कारण महाकवियों के मस्तक को भी क्षण भर के लिए वह झुमा देता है। कहा भी गया है—

उस कवि के काव्य से क्या? उस धनुषधारी के बाण से क्या? यदि वह दूसरों के हृदय में प्रवेश कर उसके मस्तक को घूर्णित न कर दे?॥ ३८॥

देवी व०—महाराज! यह केवल आधुनिक कवियों के बीच ही प्रतिष्ठित नहीं है, अपितु सार्वकालिक कवियों की गणना के प्रसंग में भी उसका नाम अगली पंक्ति में आता है। वह कविचक्रचूड़ामणि है। यदि कुछ लोगों के द्वारा उसकी मान्यता नहीं भी है, तो भी उससे क्या? यह तो उन लोगों की मूर्खता का ही प्रदर्शन है।

विदूषक—तो स्पष्ट ही क्यों नहीं कहते कि रोहक मूर्खों का चूड़ामणि है। (कुछ सोचकर सिर धुनता हुआ)। जब मैं इस राजकुल में आ रहा था, तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणमाहप्पं जाणेदि । दासीओ अग्घीज्जंति, दासीओ पूइज्जंति । उत्तमाणं महाबम्हणाणं तुम्हारिसाणं कईसराणं कइत्तरहस्सं ण कोवि बुज्झेदि ।

कर्पूरिका—(हसित्वा) दिट्ठं जेव तुम्हाणं कइत्तणं चंदस्सतवोवमारोहणत्तणेण । पियमाए मुहस्सावि सुंदरत्तणं तवस्स पराजएण ।

विदूषकः—(तां च तद्वचनं चावहेलयन्) अहो समनासियाएवि तिस्सा दोहत्थनासियत्तं । अहो लहुसोत्ताएवि तिस्सा दीहसुत्तत्तं ।

कर्पूरिका—रोहग, अणुहूदमवि किं वीसरेसि ?

विदूषकः—अवहिदुम्हि, किं तं ?

कर्पूरिका—जहा दीहसोत्तत्तं तहापि लहुसोत्तत्तं । अगाहसोत्तत्तं च किं न वण्णीयदि । (इति सर्वे हसन्ति ।)

विदूषकः—(प्रत्यक्षोभूय राजानं प्रति) देव, किं न वारेसि इमं कुट्टणिं कुररिव्व कुरकुराइंतीं ।

कहा गया था कि यहाँ तुम जैसे लोगों के गुण-माहात्म्य को जानने-वाला कोई नही है । यहाँ दासी-पुत्रियाँ ही सम्मानित एवं पूजित होती हैं । महान् कवियों के कवित्व-रस को ओर मेरे जैसे ब्राह्मणों की न तो यहाँ कोई प्रशंसा करने वाला है और न ही कोई समझने वाला ही ।

कर्पूरिका—(हँसकर) चन्द्रमा की उपमा सूर्य से देने के कारण तुम्हारे कवित्व को देख लिया । तुमने अपने साथ स्वयं विश्वासघात किया है । अपनी प्रिया के मुख-सौन्दर्य के द्वारा सूर्य-सौन्दर्य के पराजय के कथन के कारण ।

विदूषक—(कर्पूरिका और उसकी बातों की अवहेलना करते हुए) । अरे, उसकी नासिका सम है, फिर भी वह दो हाथ लम्बी है । यद्यपि उसके कान छोटे हैं फिर भी वह लम्बकर्ण है ।

कर्पूरिका—अपने द्वारा अनुभव किये गये का भी क्या विस्मरण कर रहो हो ?

विदूषक—मैं अवहित हूँ । वह क्या है ?

कर्पूरिका—जैसा दीर्घश्रोत्रत्व वैसा लघुश्रोत्रत्व । तुम अगाधश्रोत्रत्व का वर्णन क्यों नहीं करते ? (सभी हँसते हैं)

विदूषक—(राजा की ओर) देव ! इस कुररी जैसी कुरकुराती हुई कुट्टनी को मना क्यों नहीं करते ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—रोहक, अस्यास्तव च कवित्वादिगुणागुणविचारे परस्पर-मर्मादि-भाषणे च कमपि युक्तायुक्तं परिज्ञातुं युवयोरेव प्रभविष्णुता, वयमत्र चञ्चापुरुषवन्मध्यस्था एव।

विदूषकः—धिधी अज्जवि अम्हे इत्थ पइट्ठा लद्धुं इच्छीयदि। देवेणावि काणपुरिसेणव्व एसा दासी अहं च विप्पवरो एगया दिट्ठीए दिस्सामो। यदो,

रोएइ जं पहूणं तं जेव कुणंति सेवगा णिच्चं।
मूलविणट्ठा तुंबी जइ ता पत्तेसु कडुयत्तं ॥ ३९ ॥

ता भद्दं भोदु एयस्स रायकुलस्स। अज्जप्पभिदि रइरसोपमद्दक्खमस-वलसिवलकिंसुगाइकुसुमसिज्जमारुहियप्पसुत्ताए नियवल्लहाए पाणहराए रयकुंडिगोदगोवसित्तदिणयरकरवीरुमत्ताइकुसुमविंजणेणं सोयं सुरहिं मंदं मारुदं पक्खिवंतो सामियत्तसुहसयमणुहवंती गिहेज्जेव चिट्ठिस्सं। इह नागमिस्सं। (इति निष्क्रामति।)

राजा—रोहक, कवित्वादि के गुणागुण विचार में, परस्पर विचार-विमर्श एवं भाषण में, युक्त तथा अयुक्त के परिज्ञान में केवल तुम दोनों की ही प्रभविष्णुता है। हमलोग तो यहाँ चञ्चपुरुष के समान मध्यस्थ के समान हैं।

विदूषक—विधि यहाँ भी हम दोनों को प्रतिष्ठा दिलाना चाहती है। काने पुरुष की तरह यह दासी और मैं विप्रवर दोनों ही देव के द्वारा एक ही दृष्टि से देखे गये हैं। क्योंकि,

सेवक को नित्य वही करना चाहिए जो स्वामी को रुचिकर लगे। तुम्बी का मूल यदि विनष्ट हो जाय तो उसके पत्तों में भी कड़वापन आ जाता है॥ ३९ ॥

इस राजकुल का कल्याण हो। आज से मैं घर पर ही रहूँगा और अपनी प्रिया को उस समय प्रेम-पात्र में डूबे अर्क और करवीर-पुष्पों से धीरे-धीरे पंखा झलूँगा, जब वह रतिरसोपम, दक्ष शवल, शिवल और किंशुक पुष्पों की शय्या पर सोयी हुई रहेगी। इस प्रकार मैं स्वामित्वसुख (पति होने के सुख) का अनुभव करूँगा। अब मैं यहाँ नहीं आऊँगा। (ऐसा कह कर वह निकल जाता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्पूरिका—तहा गच्छ जहा मे माउम्महीए बालत्तणसाहुलिया गदा। (सर्वे हसन्ति)

विदूषकः—(कन्धरां वक्रयित्वा) तुमंपि तहा गच्छ जहा मह पियामहस्स सिसुत्तणकच्छुट्टिया गदा। (सर्वे हसन्ति)

राजा—कर्पूरिके, अनुनय रोहकम्।

कर्पूरिका—दुक्खं मे अणुणेदि, तहा जादु जहा न दीसदि एदस्स मुहं।

विदूषकः—(गच्छन्नैवोच्चकैः) ता पिच्छपएसं पिच्छ।

कर्पूरिका—पिच्छपएसं पिच्छउ वव्वरिया जं अत्तणो जीवियहारिणो मन्नेसि।

विदूषकः—ता अग्गप्पएसं पिच्छ। (इति कथयन्नेव निष्क्रान्तः)

राजा—हृदयं प्रस्तरं कृत्वा गत एव रोहकः।

कर्पूरिका—हुं गदो रोहगो! इयाणिं जेव एस्सदि वरागो।

विदूषकः—(जवनिकान्तरितः कर्णश्रुतिकया शृण्वन्) हुं, इयाणिं जेव एस्सदि वरागो, अदिट्ठासि तुमं।

कर्पूरिका—वहाँ चली जाओ जहाँ मेरी मातामही के बचपन का दुपट्टा चला गया है। (सभी हँसते हैं)

विदूषक—(कंधे को टेढ़ा कर) तुम भी वहीं जाओ जहाँ मेरे पितामह के बाल्यकाल की कछौटी (लंगोटी) चली गयी है। (सभी हँसते हैं।)

राजा—कर्पूरिके! रोहक को मनाओ।

कर्पूरिका—मुझे कोई भी दुःख नहीं। वह वहाँ चला जाय जहाँ से उसका मुंह भी न दिखे।

विदूषक—(जाता हुआ जोर से चिल्लाता है)। तो तुम मेरा पृष्ठभाग देखो।

कर्पूरिका—वर्वरिका ही तुम्हारे पृष्ठभाग को देखे, जिसे तुम जीवनधारिणी मानते हो।

विदूषक—तो तुम मेरे अग्र प्रदेश को ही देखो। (ऐसा कहकर वह बाहर निकल जाता है)।

राजा—अपने हृदय को पत्थर बनाकर रोहक चला गया है।

कर्पूरिका—अरे, क्या रोहक चला गया? वह बेचारा इसी क्षण आ जायगा।

विदूषक—(जवनिका में छिपा हुआ अपने कानों से सुनता हुआ) अरे, क्या इसी क्षण वह बेचारा चला आयगा? क्या तुम भविष्यवाणी करने वाली हो गई हो?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्पूरिका—देव, कहं चिट्ठदि अम्हेहिं विणा रोहगो, रोहगं विणा अम्हे। जदो,

रासहवसहतुरंगा जूआरा पंडिया डिंभा।
न सहंति इक्क इक्कं इक्केण विणा न चिट्ठंति ॥ ४० ॥

दुन्हंपि गद्दहमित्ती अम्हाणं सो कहंपि न विहडेति।

रोहकः—हा तियचरित्तकुच्छिभरिए, तिल्लेण विणा निट्ठीवणेण अणुहवसिद्धं अभिजणं करेसि। एयारिसिहिं वयणेहिं ण गिज्जा अम्हे। कुट्टिणियाए कुट्टिणिया नासएज्जेव नमणं भोदि न उण पाणिग्गहणवग्गणं।

देवी—(वसंतं स्मृत्वा)

मयंको सप्पंको मलयपवणा देहतवणा
कुहूसद्दो रुद्दो सुमसरसरा जीविदहरा।
वराइयं राई उवजणइ निद्दंपि न खणं
कहं हा जोविस्सइ इह विरहिया दूरपइया ॥४१॥

कर्पूरिका—देव ! रोहक क्या हमलोगों के बिना रह सकता है ? और क्या रोहक के बिना हम लोग भी रह सकते हैं ? कहा भी गया है—

गदहों, साँढ़ों, घोड़ों, जुआरिओं, विद्वानों तथा बच्चों में से कोई भी एक दूसरे को सहन नहीं कर सकते और ठीक इसी प्रकार एक दूसरे के बिना रह भी नहीं सकते।

हम दोनों की यह गर्दभमैत्री कभी भी टूट नहीं सकती।

रोहक—हा, स्त्रीचरित्रकुक्षिभरित (नारी के दोषों की थैली) तुम अपने अनुभव-सिद्ध, तेल के बिना खल्ली से मेरा अभ्यंगन (मालिश) कर रही हो ? हमलोग तुम्हारी इन बातों के भुलावे में नहीं आ सकते। कुट्टनियों के बीच कुट्टनियों की नाक ही झुकती है। वहाँ पाणिग्रहण का प्रदर्शन कहाँ सम्भव है ?

देवी—(वसन्त का स्मरण कर)

अन्वयार्थ—मयंको–मृगांक। सप्पंको–सर्पांक। मलयपवणा–मलयानिल। देह-तवण–देह को तपाने वाला। कुहू सद्दो–कोयल की आवाज। रुद्दो–रौद्र। सुमसरसरा–कामदेव का बाण। जीविदहरा–प्राण लेने वाला। वराईयं–बेचारी। राई–रात्रि। उवजणइ–उत्पन्न करती है। णिद्दंपि–निद्रा भी। ण–नहीं। खणं–क्षणभर के लिए भी। कहं–कैसे। हा–शोक। जोविस्से–जीवित रहूँगी। इह–इस वसन्त काल में। विरहिया–विरहावस्था में। दूरपइया–जिसका पति परदेश गया हुआ है ॥ ४१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(चन्द्रं दृष्ट्वा)

तमभरप्पसराण णिरोहगो
विरहिणीविरहग्गिविबोहगो ।
ससहरो गयणम्मि समुट्ठिदो
सहि न कस्स मणस्स विणोयगो ॥ ४२ ॥

राजा—(नारायणदासं स्मृत्वा । प्रकाशम् ।) नायिकाया रम्भाया मदनेन कृतसंरम्भाया पाणिपीडनप्रवृत्तिं गृहीतुं गतः किमद्यापि चिरयति प्रियवयस्यो नारायणदासः ।

वसन्तागमन के समय एक विरहिणी के विरह का चित्रण

वसन्त ऋतु के समय जिसका पति परदेश गया हुआ है, वह विरहिणी नायिका इस संसार में जीवित कैसे रह सकेगी ? उसके लिए तो चन्द्रमा भी सर्प के समान प्रतीत होने लगता है । मलयानिल (वासन्ती शीतल वायु) देह के लिए सन्तापकारी प्रतीत होने लगती है । कोयल की मधुर वाणी रौद्र प्रतीत होने लगती है और कामदेव के वाण जीवन को अपहरण करने जैसे प्रतीत होने लगते हैं । ऐसी स्थिति में वह बेचारी विरहिणी रात्रि में एक क्षण भी नींद नहीं ले पाती । (४१)

(चन्द्रमा को देखकर)

अन्वयार्थ—तमभरप्पसराण–अन्धकार के भार के प्रसार को । णिरोहगो–रोकने वाला । विरहिणी–विरहिणियों की । विरहग्गि–विरहाग्नि को । विवोहगो–प्रज्ज्वलित करने वाला । ससहरो–चन्द्रमा । गयणम्भि–आकाश में । समुट्ठिदो–उदित हो गया है । सहि–सखि । ण–नहीं । कस्स–किसके । मणस्स–मन का । विणोयगो–विनोद ॥ ४२ ॥

चन्द्रोदय का वर्णन

(चन्द्रमा के उदित होने पर रानी अपनी सखी से कहती है कि) हे सखि—अब आकाश में चन्द्रोदय हो गया है । उसे देखकर किसका मन प्रसन्न नहीं होगा ? वह अन्धकार को दूर करने वाला और विरहिणी नायिकाओं की विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाला है । (४२)

राजा—(नारायणदास का स्मरण कर, जोर से) मेरा मित्र नारायणदास जो कि मदन मित्र-नायिका रंभा के पाणिग्रहण के समाचार को लाने हेतु गया है, आज तक लौटकर नहीं आया है । इतनी देरी क्यों कर रहा है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रविश्य पटाक्षेपेण)

विदूषकः—(प्रमोदपुलकिततनुः सत्वरागतिः नर्त्तकीव नृत्यन्) आसणं, आसणं अग्घं अग्घं, देव, वद्धावीयसि वद्धावीयसि।

राजा—(ससंभ्रमम्) रोहक, किमागतः प्रियवयस्यो नारायणदासः।

विदूषकः—चउरिग्राइपाणिग्गहणसामग्गीसणाहमण्डवत्था निबद्धपाणिग्गहणकंकणा देबी रंभावि।

(ततः प्रविशति नारायणदासः। विदूषकेन पदन्यासाय प्रसार्यमानजीर्णोत्तरीए दत्तस्मितमधुरदृष्टिः। तेनेवकरचालनाभिनयेन पुनः पुनः उत्तार्यमानोत्तारणकः।)

नारायणदासः—

ईसो जयउ सफ़णि कंकणपाणिपद्म-
आलंबियाइ गिरिजाइ पकंपिरीए।
कामेण किं भयवसेण किमेइ एसा
दट्ठुं व झत्ति हिययम्मि कयप्पवेसो॥ ४२॥

अपि च,

जाओ जम्मि दिणम्मि एस सुकिदी चंदे जुए भीइणा
पत्तं तम्मि दसण्णगेसु पवलं जं खप्पराणं बलं।

विदूषक—(आनन्द से पुलकित नर्त्तकी की तरह नाचता हुआ) यह आसन है, यह आसन है, यह अर्घ्य है, देव! बधाई है, बधाई है।

राजा—(शंका पूर्वक) रोहक, क्या प्रियमित्र नारायणदास आ गया है?

विदूषक—पाणिग्रहण के कंकण को हाथ की कलाई में बाँधे हुए रंभा और पाणिग्रहण की समस्त सामग्री और वस्त्राभरण के साथ चतुरिका मण्डप में प्रतीक्षा कर रही है।

(नारायणदास विदूषक के द्वारा उसके पदन्यास के लिए बिछाये गये जीर्ण उत्तरीय पर मधुर दृष्टि डालते हुए हँसता है। विदूषक के द्वारा वारम्बार करचालन के अभिनय के द्वारा वह अपनी वेशभूषा को उतारता है।

ना० दा०—उन शिव की जय हो, जिन्होंने गिरिजा के हृदय में यह देखने के लिए प्रवेश किया कि कामराग से या सर्पवलय से युक्त पाणिपद्म में लिपट कर क्या वह भय से काँपती है?॥ ४२॥

और भी।

शत्रुओं का दलन करने वाले राजा जैत्रचन्द्र के आज दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिस दिन इस राजा का जन्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जित्तं झत्ति पियामहेण पहुणा जेतंति नामं तओ
दिन्नं जस्स स अज्ज वेरिदलणो दिट्ठो जयंतप्पहू ॥४४॥

अपि च,

अन्नेसिं पत्थिवाणं गलियभुयवलो झत्ति राउत्ति सद्दो
वुड्डो मिच्छप्पहूणं पवलहलहलल्लेतिरुद्दे समुद्दे।
तम्हा उक्खालयित्ता सपदि विरइओ एस जेणं दुरुत्तो
सो एसो जेतणाहो सयलजणमणाणंदणो राउराओ ॥४५॥

स्वस्त्यस्तु भगवते श्रीभरतकुल प्रदीपाय श्रीजैत्रचन्द्रनरेश्वराय सपरिवाराय।

राजा—(सविनयनमस्कारपूर्वं) इदं समीपस्थमासनमुपविशतु भवान्। का वार्ता ? किं चिरायितम् ?

नारायणदासः—(तथा स्मृत्वा)

वार्ताखिला शुभफलेव चिरायितुं तु
सद्दूतलक्षणमितो बहु किं वदामः।

हुआ था, उस दिन चन्द्रमा अभिजित राशि पर था। दशार्णों के बीच खर्पर लोग अपना मस्तक उठा रहे थे किन्तु तत्कालीन राजा उसके पितामह ने उसे जीत लिया था। फलतः उन्होंने ही उसका नाम जयन्त रखा था। (४४)

और भी—

पृथ्वी के अन्य शासकों के सन्दर्भ में राजा की उपाधि म्लेच्छ राजाओं के द्वारा क्रियान्वित प्रवल खलवली के रौद्र-समुद्र में डूब गयी। उसे उसने वहाँ से निकाल कर बचाया और एक नये राज्य की स्थापना की। इसलिये सम्पूर्ण जनों के मन को रंजित करने के कारण यह राजा जयन्त राजाओं का भी राजा (राजाधिराज) कहा जाने लगा (४५)

भरतकुल के प्रदीप नरेश्वर श्री जैत्रचन्द्र की सपरिवार स्वस्ति हो।

राजा—(सविनय नमस्कार पूर्वक) इस समीपस्थ आसन पर आप बैठें। क्या बात है ? देर कैसे हुई ?

ना० दा०—(उसी प्रकार स्मरण कर)

सभी समाचार अनुकूल है, शुभफल के लिए ही देर लगायी। इससे अधिक अच्छे दूत के लक्षण मैं और क्या कहूँ ? विधाता ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वां पुङ्क्षु तां च युवतीषु विधिर्व्यधत्त
संयोज्य संप्रति पुनः सफलाश्रयोस्तु ॥४६॥

(नेपथ्ये)

जाया किम्मीरवंसे जगजणमहिदे पोत्तिया देवरन्नो
रूवेणं सेलजाया निवमयणसुया कंकणुब्भासिहत्था।
रन्ना हंसेण दिन्ना अवि अवहरिदा माउलेणं सिवेणं
रंभा रंभव्व पत्ता तुमवि अहिमुहं एहि इंदव्व किंपि ॥४७॥

(राजा नारायणदासमुखमवलोकयति)

नारायणदासः—देब, अभिमुखं गत्वा प्रवेशयितुमुचिता श्रीलाटदेशाधिपतेः श्रीमदनवर्मनरेश्वरस्य तनूजा खल्वसौ।

(राजा कतिचित्पदानि गत्वा तथा करोति।)

(ततः प्रविशति नरविमानाधिरूढ़ा सकलपाणिग्रहणोपस्करयुता नायिका। श्रेयान्कियानपि तत्परिवारश्च। सर्वेऽपि यथोचितमुपविशन्ति।)

पुरुषों में आपको और युवतियों में उसको सर्वश्रेष्ठ बनाया है। संप्रति आप दोनों को संयोजित कर विधाता को सफल होने दें।

(नेपथ्य में)

विश्व-विख्यात किम्मीरवंश में उत्पन्न देवराज की वह पौत्री है। वह रूप सौन्दर्य में ठीक पार्वती के समान है। वह मदनवर्मा की राजपुत्री है, जिसके हाथ वैवाहिक कंकणों से उद्भासित हैं और जिसे राजा हंस ने आपको प्रदान किया है। वह दिव्य-नायिका रंभा के ही समान है, फिर भी, वह बलात् अपने मामा शिव के द्वारा हर ली गयी है। अतः आगे बढ़ें और इन्द्र के समान उसे प्राप्त करें ॥४७॥

(राजा नारायणदास का मुँह देखता है)।

ना० दा०—यह सर्वथा उचित है कि आप उसके पास जायें और उसको प्राप्त करें। यह रंभा श्रीलाट देश के अधिपति श्रीमदन वर्मा की राजपुत्री है।

(राजा कुछ पद आगे चलकर वैसा ही करता है)

इसके बाद पालकी में बैठी (नरविमानाधिरूढ़ा) रंभा पाणिग्रहण के समस्त उपस्करों से युक्त प्रवेश करती है। उसके साथ ही उसके परिवार के अन्य लोग भी प्रवेश करते हैं और यथोचित आसन पर बैठते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहक:—(नायिकामवलोक्य नारायणदासमपवार्य)

मन्ने पंचसरो पुरा भगवया ईसेण हूऊ सयं
कोहंधेण सआसुगोविसधणुद्दंडोवि णित्ताणले।
देवेहिं सुपसाइएण सयला तत्तो य सिट्ठा पुणो
कामोयं जयतप्पहू धनुसरा रंभाइभूलोयणा ॥४८॥

नारायणदास:—सत्यमेवमेवेदं रोहक, एतदपि संभाव्यते—

तम्मिच्छा नणु रक्खिदा सपइणा सद्धिं वयंती रई
एयाऊ वि तियाउ सा सुचरिदा जाया निकिट्ठा हु किं।
दट्ठा किंतु पियेण तेण वि पुणो पुन्नेण तिस्सा दुवे
जया सो जयतप्पहू सुमसरो एसा वि रंभा रई ॥४९॥

राजा—(रोहकमपवार्य)

एयाए सवणेहिं किन्न खलिदं नित्ताण दीहत्तणं
वित्थारोवि थणाण दोभुयलयामूलेहि रुद्धो न किं।
मन्ने भंगभयेण मज्झकिसिदा कामं हवंति ट्ठिदा
पिट्ठे छिद्दभयेण णाहिकुहरे गंभीरिदा संकिदा ॥५०॥

रोहक—(नायिका को देखकर तथा नारायणदास को हटाकर) मैं मानता हूँ कि भगवान् शिव ने पंच शरों वाले कामदेव और उसके धनुष एवं प्रत्यंचा को अपने नेत्र के अनल में जला दिया था और अब भगवान् शिव ने पुनः प्रसन्न होकर उन सभी की सर्वथा नवीन सृष्टि की है। राजा जयन्त तो स्वयं कामदेव है और रंभा की दोनों भौंहें और आँखें ही धनुष और बाण हैं (४८)

ना० दा०—रोहक। (यह सब ठीक है, पर इसकी भी सम्भावना है।)

यह सर्वथा मिथ्या है कि रति को सती होने से बचाया गया और वह अपने पति के साथ सती न हो सकी। क्या सुन्दर चरित्र वाली नायिका सामान्य स्त्रियों से निकृष्ट है? निश्चय ही वह अपने पति के साथ जल गयी थी किन्तु अपने पुण्य के प्रभाव से उन दोनों ने पुनः जन्म ले लिया है। राजा जयन्त ही पुष्पशरों वाला कामदेव है और रंभा साक्षात् रति।

राजा—(रोहक को हटाकर)

क्या उसके नेत्रों की दीर्घता उसके श्रवणों तक नहीं निकल आयी है? क्या उसके दोनों स्तनों का विस्तार उसकी दोनों भुज-लताओं के द्वारा रोक नहीं दिया गया है? मध्यभाग की कृशता दो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नं च,

एसो कडक्खाण सुतिक्खभावो
दिट्ठो अहो कोवि अदिट्ठपुव्वो।
अमुक्कठाणोवि निरेइ पिट्ठे
भित्तूण अम्हाणवि जो हियाइं ॥५१॥

रोहकः—

जो चंदो गयणम्मि भादि भणिदुं जुत्तो ससंगुत्ति सो
एयाए वयणं पुणो हवदि जो नेयो मयंगुत्ति सो।
एयस्संकपयं गयस्स हरिणस्साकण्णसंचारिणो
जं दीसंति तरंगभंगतरला एदे फुडं लोयणा ॥५२॥

तदङ्गन्यस्तान्याभूषणानि पश्यन्)

एयाए य पइप्पईयमहिला आरोविदा जं अलं-
कारा सारसुवण्णवण्णरयणा खीरंबुखोमाणि वा।
तं सव्वं जइ मंगलत्थमहुणा एसिं सहावोहवा
एसो कोवि न भूसभूसणविही एहेहिं तेसिं जऊ ॥५३॥

भागों में टूट जाने के कारण अपने उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकी और नाभिकुहर की गहराई स्वयं इस भय से अवरुद्ध हो गयी है कि कहीं पीठ में छिद्र न हो जायें ॥ ५० ॥

और भी—

अहो ! आँखों की यह तीक्ष्णता पहले कभी नहीं देखी गयी। अपये स्थान को वह छोड़ नहीं सकती, फिर भी हमलोगों के हृदय को बेध कर वह हमलोगों के पृष्ठ भाग तक चली गयी है।

रोहक—आकाश में जो चन्द्रमा उग आया है, उसे शश-अंक से युक्त ठीक ही कहा गया है लेकिन उसके मुखचन्द्र को मृगाङ्क ही कहना चाहिए क्योंकि मृग की आँखें आकर्णसंचारिणी होती हैं, तरंगभंगतरला उसकी आँखें स्पष्ट ही कानों तक पहुँच जाती हैं, जो उसके मुख पर दृष्टिगत होती है ॥ ५२ ॥

(उसके अंगों पर विन्यस्त आभूषणों को देखकर)

अर्थ—उस युवती के अंगों पर आरोपित अलंकारों के समूह की चमक रत्न एवं स्वर्ण के सार की तरह है। उसके वस्त्र क्षीरसागर के धवल जल की तरह हैं। ये सभी विवाह के मांगलिक अवसर के लिए हैं अथवा वे सभी स्वाभाविक हैं। वे उसके अंगों के अलंकरण के निमित्त नहीं है, जो नैसर्गिक होता है, उसे कृत्रिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नं च,

आरोविया अलंकारा जं एयाए वि सुब्भुवो।
दिट्ठा सा किं न पच्चक्खं सोहग्गोवरि मंजरी ॥५४॥

राजा—

एगो अप्पपयट्ठिओ मयि पुणो वीओ समासंगओ
तेओ पासदि जो इमं विणिहिदुं तं कामवाणी किदो।
एयाए नयगाण ताव सहलं एयं तिहायत्तणं
अन्नाणं वणियाण जाणदु जणो एसक्कमुन्नोऽहवा ॥५५॥

अन्नं च,

(नयनयोः कज्जलरेखां संभावयन्)

अंजणेण किया रेहा एयाए नयणेसु जा।
ते किं कामेण साणग्गे न नियारोविदा सरा ॥५६॥

आभूषणों की अपेक्षा नहीं होती। भूषण की कोई ऐसी विधि नहीं है, जो इसमें न हो। (५३)

और भी।

सुन्दर भौंहों वाली इस सुन्दर नायिका के द्वारा अंगों पर जो अलंकार धारण किए गये हैं, क्या सौभाग्य के ऊपर मञ्जरी के विस्तार को उसने प्रत्यक्ष नहीं देखा है? क्या यह सौभाग्य मंजरी (सौन्दर्य) का प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं? (५४)

राजा—एक अंश तो उसके अंगों के साथ रहता है और दूसरा अंश मेरे पास चला आया है ओर तीसरा अंश जो भी (रसिक) उसकी ओर देखता है, उसको मारने के लिए वह कामदेव के बाण की तरह कार्य करता है। इस प्रकार उसकी आँखों के तीनों भाग सार्थकरूप में कार्य अवश्य करते हैं। (भले ही) अन्य वनिताओं के सन्दर्भ में यह हो अथवा न हो। (५५)

और भी,

(नेत्रों में लगी हुई कज्जलरेखा को देखकर)

उसकी आँखों में काजल की रेखा जो बनायी गई है, वह ऐसी लगती है, मानों कामदेव ने अपने बाणों को शाण के अग्रभाग पर आरोपित कर दिया हो। (५६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नं च,

वाहू जेण मिणालकोमलयरा तेणं न थड्डा थणा
दिट्ठी जेण तरंगभंगतरला तेणं न मंदा गई।
मज्झं जेण कियं न तेण घडियं घोरं नियंवत्थलं
एयाए विहिणा वि तन्न घडिदा एगेण मन्ने तणू ॥५७॥

(नेपथ्ये)

लग्गं एदं पवट्टइ पवलगहबलं सामिसोमाइजुत्तं
चावं पोढप्पहावं उवह उवगओ मत्थए एस हत्थो।
तो सव्वे सावहाणा हवह दियवरा इत्थ जोण्हापहाणा
उग्घाडिज्जंति एदे सुगह सुणह भो एग दो तिन्नि विस्सा ॥५८॥

अन्वयार्थ—बाहू–भुजा। जेण–जिस ब्रह्मा ने। मिणाले–मृणाल। कोमल-यरे–अत्यन्त सुकुमार। तेण–उस ब्रह्मा ने। घट्टा–निर्मित किया। थण–वक्ष-स्थल, स्तन। दिट्ठी–दृष्टि। जेण-जिस ब्रह्मा ने। तरंगभंग तरला–अत्यन्त चंचल। तेण–उसने। न मंदा गई–मन्द गति नहीं बनाई। मज्झं–कमर। जेण किय–जिसने बनाई। न तेण घड़ियं–उसने नहीं बनाई। थोर–विशाल। नियं-वत्थल–नितम्बस्थल। एयाए–इन सभी अंगों के लिए। विहिणवि–अकेले ब्रह्मा ने भी। तन्न घडिदा–उन्हें नहीं बनाया। एगेण–अकेले। मन्ने–मानता हूँ। तणू–शरीर।

नायिका के अंगों के सौन्दर्य का वर्णन

जिस विधाता ने इस नायिका की मृणाल के समान कोमल बाहुओं को बनाया है वही विधाता उसके कठोर वक्षस्थल को नहीं बना सकता। अतः बाहुओं का निर्माता तो अन्य कोई विधाता है और वक्षस्थल बनाने वाला अन्य कोई दूसरा विधाता ही। जिसने इसकी चंचल दृष्टि बनाई है, वही विधाता इस नायिका की मन्द गति को नहीं बना सकता। जिस विधाता ने इस नायिका की कमर को पतला बनाया है, वही विधाता इसके नितम्बों को स्थूल नहीं बना सकता। इन सब विषमताओं को देखकर यही लगता है कि इस नायिका का निर्माण अकेले एक विधाता ने नहीं, बल्कि अनेक विधाताओं ने मिलकर किया होगा। ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ५७ ॥

(नेपथ्य में)

अपने सोमादि स्वामियों से युक्त प्रबल ग्रहबलों का लग्न प्रव-र्त्तित हो रहा है, धनुराशि अपने प्रौढ़ प्रभाव को दिखा रही है और माथे पर हस्त नक्षत्र आ पहुँचा है, ज्योत्स्ना का प्रहाण हो रहा है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पुरोहितः ससंभ्रमं समुत्थाय वेदिकामधिकृत्य कुलोक्तविधिना श्रीत्रिपुरसुन्दरी-कुलदेवताया मातरादीनां चार्चनादिविधिं विदधाति । आचार्यः तारस्वरं वेदमन्त्रान्समुच्चरन् वधूवरयोरञ्चलादियोजनं नाटयति ।)

रोहकः—(प्रमोदातिशयं नाटयन्नुच्चैः स्वरम्)

अन्नोन्नं सिचयंचलेण सिचयं दिट्ठीइ दिट्ठिं तहा
पाणिं पाणियलेण वेयविहिणा संजोजयित्ता फुडं ।
विप्पुच्चारिदमंगलं अविहवुग्गायंतिनारीगणं
जाऊ जेतनरिंदरंभवहुया दुन्हंपि पाणिग्गहो ॥५९॥

उलूलु गायंति झुणिं सभत्ति-
पुत्ता तिओ चच्चरियाउ दिंति ।
नच्चंति नट्टा पभणंति विप्पा
वज्जंति भेरीपमुहा मुयंगा ॥२०॥

अतएव सभी द्विजवर सावधान हो जायें आप सभी सुनें, एक, दो, तीन विश्वस् स्वयं प्रकट हैं ॥ ५८ ॥

(पुरोहित चौंककर उठ जाता है और उठकर वेदिका पर जाकर कुलोक्त विधि से त्रिपुरसुन्दरी, कुलदेवता तथा माताओं की अर्चना-विधि को सम्पन्न करता है । आचार्य ऊँचे स्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण करता हुआ वर-वधू के अंचलों को जोड़ने का नाटक करता है ।)

रोहक—(अतिशय आनन्द का प्रदर्शन करते हुए ऊँचे स्वर में) वस्त्र को वस्त्र से, आँखों को आँखों से और हाथों को हाथों से वेदविधि के द्वारा जोड़ दिया गया । विप्रगण वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं, सधवा एवं विवाहिता नारियाँ गा रही हैं, जैत्रनरेन्द्र तथा रंभा वधू दोनों का पाणिग्रहण हो गया है । (५९)

विवाहिता स्त्रियाँ उलूलु स्वर का गान कर रही हैं, नाचने-वाली लड़कियाँ चर्चरादि गीत-नाट्य प्रस्तुत कर रही हैं, नर्त्तक नाच रहे हैं । ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे हैं तथा भेरी और मृदंग बजाये जा रहे हैं । (६०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नेपथ्ये)

वैतालिकयोरेकः—

देंतो निसाए इह अद्धचंदं
एगं दुईयं तिमिरस्स कंठे।
किन्चेव बिंबं ससिणं दुहंडं
उएइ एसो कमलाण बंधू ॥६१॥

द्वितीयः—

स एसो लोयाणं वियरिहइ लच्छि समहुणा
इमं पूरेमो ता गहिवि लहु एयस्स य अओ।
इई उग्घाडितो कमलमउलं वो सुहयरा
जइत्तखोणिंदो दिणयरकरा हुंतु पवरा ॥६२॥

राजा—अये विगतैव रजनी जातमेव प्रभातम्। यतः,

करशरनिकरैर्वर्षति दिनकरवीरेऽन्धकारनिधनाय।
विरलविरलीवभूवुस्ताराः स्वस्मिन्निव प्रहारभयात् ॥६३॥

(नेपथ्य में) एक वैतालिक—

चन्द्र बिम्ब को दो टुकड़ों में बाँट कर कमल बन्धु सूर्य का उदय हो रहा है। एक को रात के गले में और दूसरे को अन्धकार के साथ इसलिए जोड़ रहा है ताकि रात और अन्धकार दोनों नष्ट हो जायँ। (६१)

दूसरा वैतालिक—

राजा जैत्र को प्रसन्न करनेवाली सूर्य की किरणों को यह अनुमान कर सर्वत्र फैलने दो कि राजा दान के क्रम में अपनी लक्ष्मी को छोड़ देगा। इस विचार से सूर्य की किरणें कमल की पंखुड़ियों को खोल रही हैं ताकि उन्हें कमलों से जो प्राप्त हुआ है, उसे वे विस्थापित कर सकें। क्षोणीन्द्र जैत्र और दिनकर की किरणें प्रबल हों। (६२)

राजा—अरे! रात बीत गयी, प्रातःकाल हो गया है।

अन्धकार के निधन (विनाश) के लिए सूर्य किरण रूपी बाणों के समूह को बरसा रहा है। अपने ऊपर प्रहार के भय से तारे एक के बाद एक विरल हो रहे हैं। (६३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवि दिनकरलेखे, इमां स्वां भगिनीं पुरस्कृत्य यूयं सर्वा अप्यन्तःपुरमलंकुरुत। (देवी सपरिजना तथा करोति।)

नारायणदास ! वयमपि सांध्येन विधिना संध्यामनुसंधाय सदनमनुसरामः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

प्रथमं जवनिकान्तरम्

देवी दिनकरलेखे—अपनी इस बहिन को आगे कर तुम सब भी अन्तःपुर को अलंकृत करो।

ना० दा०—हमलोग भी साान्ध्यविधि के द्वारा प्रातःकालीन सन्ध्या-वन्दन कर अपने-अपने सदनों का अनुसरण करें। (ऐसा कहकर सब निकल जाते हैं।

(प्रथम जवनिकान्तर समाप्त)

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि हस्तिमल्ल के नाटकों का संक्षिप्त समीक्षात्मक अध्ययन

१. सुभद्रा नाटिका–कथावस्तु

आशीर्वादात्मक मंगलाचरण से सुभद्रा नाटिका की कथा प्रारम्भ होती है। वह चार अंकों में विभाजित है। भरत-चक्रवर्त्ती दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में अनेक स्थानों का भ्रमण करते हैं, जिनमें गंगासागर, दक्षिणापथ, मलयाचल, उत्तरभारत, मन्दाकिनी-संगम तथा काण्डकप्रताप-गुहा आदि स्थानों का रमणीक वर्णन किया गया है।

जब वे विजयार्द्ध-पर्वत पर विहार कर रहे थे, तब एक अशोक-वृक्ष के नीचे लाक्षा-रस से चिह्नित एक पदपंक्ति दिखाई देती है। राजा को विश्वास हो जाता है कि ये किसी विद्याधर-सुन्दरी के पद-चिह्न हैं, जो अशोक वृक्ष में पद-प्रहार के द्वारा पुष्पोद्गम की अभिलाषी रही है। वे उन पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए वहीं पहुँच जाते हैं, जहाँ सुभद्रा अपनी सखी मन्दारिका के साथ रहती हैं। दोनों को एक दूसरे के दर्शन हो जाते हैं। उसी समय सुभद्रा की सखियाँ उसे पुकार लेती हैं और वह चली जाती है। राजा भी उत्कण्ठित हो जाता है। इसके बाद राजा की ज्येष्ठा रानी वैलाती वहाँ आती है और उन पद-चिह्नों को देखकर शंका करती है कि राजा इन्हीं के पीछे-पीछे गया होगा। विदूषक वैलाती रानी के समक्ष राजा को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा करता है।

द्वितीय अंक में राजा भरत सुभद्रा के लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं और उसी मन्दार वृक्ष के नीचे बैठकर सुभद्रा का चित्र बनाने लगते हैं। चित्र बन जाने पर उसी से आत्म-विनोद करने लगते हैं। सुभद्रा और मन्दारिका वहीं पहुँच जाती हैं और ओट में छिपकर राजा का क्रिया-कलाप देखती हैं। दूसरी ओर से रानी वैलाती भी अपनी चेटी के साथ पहुँचकर देखती है कि राजा चित्र-फलक के साथ मनोविनोद कर रहा है। वह राजा के पास जाती है और वह चित्र-फलक देख लेती है एवं वहाँ से कुपित होकर चली जाती है।

विदूषक उस चित्र को रखने के लिए हरचन्दन-लतागृह में जाता है। वहाँ उसे सुभद्रा दिखलाई पड़ जाती है। राजा सुभद्रा से आँसू निकलने का कारण पूछता है, तब उसे विदित होता है कि सुभद्रा ने रानी की घटना को छिपकर देख लिया है और उसी के कारण दुखी होने से ये आँसू निकले हैं। राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसादनार्थ सुभद्रा का हाथ ग्रहण करता है। तभी सखियों द्वारा सुभद्रा को पुकार लिया जाता है। उसी समय सन्ध्या हो जाती है।

तृतीय अंक में सुभद्रा काम-व्यथा से व्यथित है। मन्दारिका उसे प्रेमी से मिलन का आश्वासन देती है। सुभद्रा हरिचन्दन के रस से अशोक के पत्ते पर अनंग-लेख लिखती है, जिसे मन्दारिका अशोक-वृक्ष पर रख आती है। राजा भरत अशोक वृक्ष की शोभा को देख रहे हैं और छिपकर सुभद्रा और मन्दारिका की बातचीत भी सुन रहे हैं। जब मन्दारिका अर्घ-कुसुम लेकर अपने द्वारा पुष्पित मालती-लता रूपी कन्या का दान अशोक के लिए दे रही है, तो उसी में यह अर्थ भी गर्भित है कि सुभद्रा-कन्या का दान राजा के लिए दिया जा रहा है। राजा अवसर प्राप्त कर सुभद्रा के पास पहुँच जाता है और उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता है। थोड़ी देर में रानी वैलाती भी वहाँ पहुँच जाती है, उसे देखकर राजा सुभद्रा के हाथ से अपना हाथ हटा लेता है। राजा, रानी-वैलाती की अनुनय करता है किन्तु वह क्रोधित होकर चली जाती है।

उधर मंजरिका चेटी सुभद्रा को यह शुभ सूचना देती है कि महाराज नमि ने अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह चक्रवर्त्ती भरत से करने का निश्चय किया है। इस समाचार से सुभद्रा उदासीन हो जाती है, क्योंकि वह समझती है कि चक्रवर्त्ती भरत अन्य कोई दूसरा ही व्यक्ति है। अतः वह मूच्छित हो जाती है।

चतुर्थ अंक में राजा सुभद्रा के लिए बेचैन है और दूसरी ओर रानी वैलाती के क्रोध को शान्त करने के सम्बन्ध में चिन्तित भी। उसी समय तार्क्ष्यदत्त नामक दूत के द्वारा उन्हें यह समाचार मिलता है कि नमि-विद्याधर सुभद्रा रूपी स्त्रीरत्न को लेकर आ रहे हैं। राजा प्रसन्न होता है किन्तु रानी वैलाती के अप्रसन्न होने की चिन्ता उन्हें बनी ही रहती है। ठीक इसी समय विदूषक राजा भरत को यह समाचार सुनाता है कि वैलाती प्रसन्न हो गई है। नमि भी विद्याधरों के साथ आकर विधि पूर्वक अपनी बहिन राजा भरत को सौंप देते हैं और भरत-वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है।

नाटिका का स्वरूप एवं सुभद्रा नाटिका

कवि धनंजय ने 'दशरूपक' में उपरूपक के जो भेद गिनाए हैं, उनमें एक भेद नाटिका भी है। सुभद्रा-नाटिका भी उसी के अन्तर्गत आती है। नाटिका के कुछ प्रमुख शास्त्रीय लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) कवि-कल्पित-कथावस्तु (२) प्रख्यात-नायक, (३) शृंगार-रस अंगीरूप में, (४) स्त्री-पात्रों की प्रधानता, (५) नायक-नायिका-मिलन, (६) नायिका और (७) नाटिका-गठन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. कवि कल्पित कथावस्तु—नाटिका का कथानक इतिवृत्तात्मक न होकर कवि-कल्पित होता है। सुभद्रा-नाटिका की कथावस्तु भी कवि-कल्पित है। त्रेसठ-शलाका-पुरुष-चरित के जिन ग्रन्थों में राजा भरत की पट्टमहिषी सुभद्रा का उल्लेख मिलता है, उनमें कहीं भी सुभद्रा-नाटिका की कथावस्तु नहीं पाई जाती। भरत की ९६००० रानियों में ज्येष्ठा रानी वैंलाती के नाम का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

प्रस्तुत रचना में दो स्थलों पर कवि ने स्वयं ही 'नाटिका' शब्द का उल्लेख किया है। प्रथम अंक के प्रारम्भ में सूत्रधार से नटी पूछती है कि कौन सा प्रयोग तुम्हें रसानुभूति द्वारा सभा का आराधक दिखाई देता है? तब सूत्रधार प्रत्युत्तर में कहता है कि भट्टार गोविन्द के पुत्र हस्तिमल्ल की रचना "सुभद्रा-नाटिका" ऐसी ही है। इसी प्रकार तीसरे अंक में मन्दारिका ने भो "नाटिका" शब्द का उल्लेख किया है।

२. नायक—नाटिका का नायक प्रख्यात होता है। सुभद्रा-नाटिका का नायक भी प्रख्यात है। जैन-साहित्य के अनेक ग्रन्थों में तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत का उल्लेख हुआ है। नायक भरत में कलापरायणता, भोग-प्रवणता, सुकोमलता एवं शृंगारी-भाव आदि सभी गुण वर्तमान हैं।

३. शृङ्गारी-रस—नाटिका में शृंगार-रस अंगी रस के रूप में रहता है। सुभद्रा-नाटिका में भी प्रथम अंक से चतुर्थ अंक तक शृंगार-रस की व्याप्ति है। शृंगार से ही इसका प्रारम्भ होता है और उत्तांग, मन्द-धाराओं के रूप में प्रवाहित होते हुए उसकी समाप्ति भी उसी रस में होती है। प्रथम अंक में आरम्भ से ही संयोग-शृंगार की व्यंजना है। राजा भरत और सुभद्रा परस्पर में संयोग का अनुभव करते हैं और प्रत्येक अंक में उनका मिलन होता है, जिससे संयोग-शृंगार की निष्पत्ति होती है।

४. स्त्री पात्रों की प्रधानता—नाटिका में स्त्री पात्रों की प्रधानता रहती है। शृंगार-रस की सफल अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक भी है। सुभद्रा-नाटिका में यह विशेषता साक्षात् दृष्टव्य है। इसमें सात स्त्री-पात्र हैं—नायिका सुभद्रा, सखी मन्दारिका, ज्येष्ठा रानी वैलाती, उसकी चेटी, सुभद्रा की प्रथम चेटी, द्वितीय चेटी एवं प्रतिहारी जित्वरिका। चारों अंकों में स्त्री-पात्रों की प्रधानता है। पुरुष पात्र के रूप में राजा भरत और विदूषक ही रहते हैं। केवल चतुर्थ अंक में कुछ पुरुष पात्र आते हैं और तुरन्त ओझल भी हो जाते हैं।

५. नायक-नायिका मिलन—नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं। उनमें ज्येष्ठा नायिका राजकुलोत्पन्न होती है। वह मानिनी होती है और नायक को सदैव शंकित दृष्टि से देखती है। नाटिका में ज्येष्ठा नायिका नायक और कनिष्ठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नायिका के मिलन में बाधक बनती है। उक्त नाटिका में भी रानी वैलाती राजा भरत और सुभद्रा-समागम में बाधा उत्पन्न करती है।

राजा ज्येष्ठा रानी से भयभीत रहता है। सुभद्रा से साक्षात्कार होने पर भी वह रानी वैलाती के कारण चिन्तित रहता है। राजा भरत को ज्ञान हो जाता है कि महाराज नमि ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह मुझसे करने का निश्चय कर लिया है, तब भी वे चिन्तित रहते हैं क्योंकि सुभद्रा की प्राप्ति रानी वैलाती की प्रसन्नता पर ही निर्भर है।

६. **नायिका**—नाटिका की नायिका मुग्धा, अत्यन्त रूपवती और राज-कुलोत्पन्न होती है। नायिका के आधार पर ही नाटिका का नाम रखा जाता है। सुभद्रा-नाटिका में सुभद्रा मुग्धा नायिका है। वह नवयुवती है और अतीव सौन्दर्य-शालिनी भी। अपने पदविन्यास के चिह्न मात्र से राजा को आकर्षित कर लेती है। उसे देखकर राजा के मुख से सहसा ही निकल पड़ता है कि "विधाता की रचना का चातुर्य कैसा विस्मयकारी है ? नाटककार ने शृंगार-रस के अनुकूल उचित पात्रा की रचना की है। सुभद्रा की सुन्दरता से विदूषक भी चकित है और कह उठता है कि संसार में इतना चमत्कारी-सौन्दर्य भी सम्भव है।

नाटिका-शिल्प और स्थापत्य

नाटिका की सबसे बड़ी विशेषता है उसमें चार अंकों की योजना और कैशिकी-वृत्ति के चारों अंगों का प्रयोग। सुभद्रा-नाटिका इस कसौटी पर खरी उतरती है। उसकी कथा-वस्तु का गठन चार अंकों में हुआ है, जो नाटिका के लिए सर्वथा उपयुक्त है। कैशिकी-वृत्ति, मनोरंजक गीत, वाद्यादि, शृंगारादि-प्रधान व्यापारों में होती है। कैशिकी वृत्ति के निम्नलिखित चार अंग माने गए हैं :—

१. **नर्म**—नायक को अपना बना लेने के लिए जो कुशल क्रीड़ाएँ नायिका द्वारा की जाती हैं, उसे 'नर्म' कहते हैं। सुभद्रा-नाटिका में नर्म के कई प्रसंग आये हैं। जैसे—विदूषक का कथन है—"जिस राजा भरत के लिए चार समुद्र-पर्यन्त वसुधा समुचित कर (टैक्स) देती है, उसी राजा भरत को तुम (सुभद्रा) अपना कर (हाथ) नहीं देती।"

२. **नर्मस्फिंज**—नायक-नायिका के मिलन में वह शृंगार-व्यापार, जिसके आरम्भ में सुख हो, किन्तु अन्त में भय, वह 'नर्मस्फिंज' कहलाता है। नाटिका के तृतीय अंक में राजा भरत सुभद्रा का हाथ अपने हाथ में लेता है, उसे आनन्द का अनुभव तो होता है किन्तु साथ ही रानी वैलाती के डर से बिछुड़ने का भय भी बना रहता है। अतः यहाँ नर्मस्फिंज है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. **नर्मस्फोट**—विविध भावों के द्वारा हास्य की अल्प सूचना 'नर्मस्फोट' कहलाती है। द्वितीय अंक में लज्जा से नम्रमुखी सुभद्रा को देखकर राजा उससे कहता है कि इस लज्जा को छोड़कर मेरे हाथ का अवलम्बन लो। यहाँ लज्जा से सुभद्रा का रति-भाव व्यंजित हो रहा है। अतः नर्मस्फोट है।

४. **नर्मगर्भ**—काम बनाने के लिए नेता का रहस्यमय व्यवहार 'नर्मगर्भ' कहलाता है। सुभद्रा-नाटिका के तृतीय अंक में जब मालती-लता एवं बालाशोक की उद्वाह-विधि सम्पन्न हो रही है, तब राजा छिपकर देखता है और विधि सम्पन्न होते ही वह प्रकट हो जाता है। यहाँ 'नर्मगर्भ वृत्ति' कार्य कर रही है।

अर्थ प्रकृतियाँ—फलरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेक अवान्तर घटनाएँ जब मिलकर व्यापार करती हैं, तब कहीं जाकर फल की प्राप्ति होती है। उन्हें ही अर्थ-प्रकृति कहते हैं। यहाँ "अर्थ" का तात्पर्य है—प्रयोजन और "प्रकृति" का अर्थ है कारण। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं। अतः इनका नाम अर्थ-प्रकृति है। इनके पाँच भेद होते हैं—(१) बीज (२) बिन्दु (३) पताका (४) प्रकरी एवं (५) कार्य।

१. **बीज**—सुभद्रा-नाटिका में मुख्य कार्य राजा भरत और सुभद्रा का मिलन है। उसकी हेतु-रूप 'बीज' नामक अर्थ-प्रकृति प्रथम अंक के छठवें छन्द से १६वें छन्द तक चलती है।

२. **बिन्दु**—जहाँ कथा दूसरे प्रसंग से विच्छिन्न होने लगती है, वहाँ मूल कथा से जोड़ने वाला कारण विन्दु कहलाता है। इस नाटिका में विन्दु अनेक स्थलों पर है। प्रथम अंक में रानी वैलाती के आने से मूल कार्य विच्छिन्न हो जाता है फिर दूसरे अंक के आरम्भ में विदूषक राजा की बेचैनी की सूचना देता है और चित्र की घटना चलती रहती है। 'विन्दु' अर्थ-प्रकृति का कार्य दूसरे अंक में अन्त तक चलता रहता है।

३. **पताका**—बालाशोक और मालती-लता के विवाह की कथा इस नाटिका की "पताका" अर्थ प्रकृति है।

४. **प्रकरी**—चतुर्थ अंक में नमि-विद्याधर द्वारा राजा भरत के पास समाचार भेजने और विद्याधरों का उपहार लेकर आगमन की सूचना देने वाले दूत की कथा "प्रकरी" है।

५. **कार्य**—अन्तिम अंक में विदूषक का यह कथन कि देवी प्रसन्न हो गई हैं और सुभद्रा का दान तक 'कार्य' नामक अर्थ प्रकृति है।

अवस्थाएँ

नायक की कार्य के प्रति मनोदशा 'अवस्था' कहलाती है। नाटक में कार्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धि या फल-प्राप्ति की पाँच अवस्थाएँ होती हैं--(१) आरम्भ, (२) प्रयत्न, (३) प्राप्त्याशा (४) नियताप्ति और (५) फलागम।

१. आरम्भ—नायक या नायिका की फल के प्रति उत्सुकता को 'आरम्भ' कहते हैं। प्रथम अंक में राजा भरत और सुभद्रा का परस्पर औत्सुक्य जागृत हो जाता है और दोनों के मन में प्राप्ति की कामना जाग जाती है। यह 'आरम्भ'-अवस्था द्वितीय अंक के २७वें छन्द तक पाई जाती है।

२. प्रयत्न—राजा सुभद्रा का चित्र बनाना प्रारम्भ करता है। यहाँ से 'प्रयत्न' की अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है।

३. प्राप्त्याशा—द्वितीय अंक में रानी वैलाती राजा को सुभद्रा के चित्र से बातें करते देख लेती है, तब राजा तथा छिपी हुई सुभद्रा भयभीत हो जाते हैं। यहाँ "प्राप्त्याशा" का प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि रानी के क्रोधित हो जाने से सुभद्रा-मिलन की आशा क्षीण हो गई है। यह स्थिति चतुर्थ अंक में २२वें छन्द तक चलती रहती है।

४. नियताप्ति—चतुर्थ अंक में विदूषक जब राजा को यह समाचार सुनाता है कि विद्याधर राजा नमि अपनी बहिन सुभद्रा को लेकर विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने आ रहे हैं तथा रानी वैलाती भी सुभद्रा को पाकर अत्यन्त प्रसन्न है, तब राजा बहुत प्रसन्न हो जाता है। यहाँ दोनों का मिलन होने का निश्चय हो जाता है। अतएव यहाँ नियताप्ति अवस्था है।

५. फलागम—चतुर्थ अंक में राजा नमि जलदान पूर्वक सुभद्रा को प्रदान कर देते हैं, तब राजा को पूर्ण रूप से अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। यह "फलागम" अवस्था है।

सन्धियाँ—सन्धि का अर्थ है—जोड़। कोई भी वस्तु बिना जोड़ों के नहीं होती। अनेक जोड़ों को समुचित रीति से मिला देने पर समग्र रूप से एक विशिष्ट वस्तु का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार नाटक भी अनेक सन्धियों से समन्वित होता है।

ये सन्धियाँ पाँच प्रकार की मानी गई हैं। यथा :—

१. मुख-सन्धि—प्रथम अंक में राजा सुभद्रा को देखकर आकर्षित होता है, यही मिलन का बीज है। यहीं से 'मुख-सन्धि' प्रारम्भ होती है, जो प्रथम अंक के अन्त तक चलती है।

२. प्रतिमुख-सन्धि—दूसरे अंक में राजा भरत सुभद्रा के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठता है। वह सुभद्रा के चित्र से मनोविनोद कर ही रहा था कि इतने में वैलाती रानी आकर चित्र देख लेती है और कुपित होकर चली जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस प्रकार राजा के अनुराग में विघ्न उपस्थित हो जाता है। इस प्रसंग में 'प्रतिमुख-सन्धि' नियोजित हुई है।

३. गर्भ-सन्धि—तीसरे अंक में बालाशोक और मालती-माला-दान-विधि के अवसर पर दोनों का मिलन-अवसर आने से बीज का दर्शन पुनः हो जाता है। किन्तु रानी वैलाती के आगमन से मिलन रूपी बीज अदृष्य हो जाता है। मिलन बीज का बार-बार अन्वेषण होने से इस प्रसंग में 'गर्भ-सन्धि' है।

४. अवमर्श या विमर्श सन्धि—चतुर्थ अंक में राजा भरत काम के वशीभूत होकर विमर्श कर रहा है कि राजा नमि अपनी बहिन सुभद्रा का परिणय मेरे साथ कर देंगे। परन्तु रानी वैलाती के क्रोध को कैसे शान्त किया जाय ? यही प्रसंग यहाँ 'अवमर्श-सन्धि' है।

५. निर्वहण-सन्धि—विदूषक द्वारा जब राजा एवं सुभद्रा को यह सूचना मिलती है कि रानी प्रसन्न हो गई है, यहीं से 'निर्वहण-सन्धि' प्रारम्भ हो जाती है और वह नाटिका के अन्त तक चलती है। इस प्रकार राजा भरत तथा सुभद्रा के मिलन के हेतु रूप बीज, जो यत्र-तत्र बिखरे हुए थे, वे सब कार्य-सिद्धि के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए यहाँ 'निर्बहण-सन्धि' की योजना है।

सट्टक का स्वरूप

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सट्टक वह उपरूपक है, जिसमें प्रवेशक और विष्कंभक नहीं होते। अंकों का नाम जवनिका होता है और उनकी संख्या चार होती है। उसमें अद्भुत-रस का प्राचुर्य होता है और आदि से लेकर अन्त तक प्राकृत-भाषा में रचित होती है, जैसा कि कर्पूरमंजरी में राजशेखर ने भी कहा है :—

सो सट्टओ त्ति भण्णइ दूरं जो णाडिआइ अणुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसउविक्कंभकाइं ण केवलं होंति।

नाटिका और सट्टक में अन्तर

नाटिका में प्रवेशक और विष्कंभक होते हैं, किन्तु सट्टक में ये दोनों नहीं होते। नाटिका में "अंक" शब्द का प्रयोग होता है, जबकि सट्टक में जवनिका का। नाटिका में संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है, किन्तु सट्टक की रचना आदि से लेकर अन्त तक प्राकृत-भाषा में होती है, नाटिका में नहीं। अतः 'सुभद्रा-नाटिका' नाटिका है, सट्टक नहीं।

भरत का चरित्र-चित्रण

इस नाटिका के नायक राजा भरत हैं। नायक वस्तुतः चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत। नाटिका के अनुकूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नायक धीरललित होता है। वह सचिव आदि पर कार्यभार छोड़ देता है। स्वभावतः ही वह निश्चिन्त, कलाप्रेमी, सरस, सुखद और सुकोमल होता है।

राजा भरत इसी प्रकार के नायक हैं। वे समस्त निधियों के स्वामी हैं, निश्चिन्त हैं और कला-ज्ञान के लिए उन्हें अनुकूल वातावरण मिला हुआ है। उन्होंने विभिन्न देशों का भ्रमण किया है और विविध कलायें सीख ली हैं। वे मानिनी-नायिका को मनाने की कला में भी निपुण हैं तथा जब सुभद्रा सखियों को खोजने के लिए जाने लगती है, तब राजा यह कहते हैं कि "मुझमें तुम्हारे चरणों की थकान होने पर उनके संवाहन के कार्य का नैपुण्य भी प्राप्त है।

राजा भरत चित्र-कला में भी दक्ष हैं। वे एक बार सुभद्रा का दर्शन कर लेने पर उसका सुन्दर चित्र भी बना लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सुभद्रा स्वयं ही वहां उपस्थित हो गई हो।

धीरललित नायक भोगों के प्रति सदैव आसक्त होता है। उसके अन्तःपुर में अप्सरा जैसी रानियाँ, हैं, फिर भी सुभद्रा को देखते ही उन्हें अपना राज-पाट और यौवन सभी व्यर्थ लगने लगते हैं। राजा भरत अत्यन्त भोग-प्रवण भी हैं।

नाटिका में अनेक स्थानों पर उनके मृदु-स्वभाव की व्यंजना हुई है, जो श्रृंगार-रस की प्रधानता के अनुकूल है। दिग्विजय-यात्रा के समय राजा के सुकुमार भाव के कारण समुद्र नायक रूप में गंगा नायिका का आलिंगन करता दृष्टिगोचर होता है। यह प्रसंग राजा के हृदय की सुकुमारता का परिचायक है, जब वे सुभद्रा से कहते हैं—"कर्कश अशोक-वृक्ष के स्कन्ध पर ताडन के लिए रखा गया प्रवाल की तरह तुम्हारा सुकुमार-चरण सकुशल तो है ?"

राजा भरत में नायकोचित सभी गुण विद्यमान हैं। वे विनीत, मधुर, दक्ष, प्रियंवद, कुलीन-वंशोत्पन्न, लोकरंजक, वार्त्ता-कुशल, त्यागी, शास्त्रज्ञाता एवं धार्मिक हैं। वे भगवान् ऋषभनाथ के पुत्र और चक्रवर्त्ती सम्राट हैं। वे प्रख्यात कुल के हैं, नेपथ्य से किन्नरों के गीत से भी यह ज्ञात हो जाता है कि वे प्रख्यात वंशीय हैं।

धीरललित-नायक श्रृंगारी और प्रियवादी होता है। भरत भी प्रियंवद हैं। राजा भरत कई स्थलों पर अपने प्रियंवद होने का परिचय भी देते हैं। जब सुभद्रा सखियों के अन्वेषण का बहाना करती है, तब राजा भरत कहते हैं— 'सुन्दरि, सखित्व साप्तपदीन होता है। क्या मेरे सम्बन्ध में पर्याप्त सखित्व नहीं है ? मैं तुम्हारी निरन्तर सेवा कर सकता हूँ। मुझे भी नवीन सखित्व प्रदान करो। मैं यह अंजलि बाँधता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा भरत प्रज्ञा-सम्पन्न हैं। वे प्रथम अंक में अशोक-स्कन्ध पर जब लाक्षा-रंजित चरणों को देखते हैं, तो अपनी तीक्ष्ण-बुद्धि के द्वारा समझ जाते हैं कि ये किसी सुन्दरी के चरण हैं तथा यह भी अनुमान लगा लेते हैं कि वह सुन्दरी सघन आम्र-वृक्ष की डालियों का सहारा लेकर क्षण भर विश्राम के लिए भी रुकी थी।

राजा भरत सुभद्रा-नाटिका में दक्षिण नायक के रूप में चित्रित हैं। जिस नायक की एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं, वह दक्षिण-नायक कहलाता है। वह अपनी ज्येष्ठा-पत्नी के प्रति सहृदय है और कनिष्ठा को प्राप्त करना चाहता है। राजा का दाक्षिण्य नाटककार ने स्वयं स्पष्ट किया है। जब सुभद्रा मंदारिका से यह कहती है कि चित्र को देखते ही राजा वैलाती के नाम से भयभीत हो उठा, तब वह उत्तर देती है कि जिसके हृदय का तुमने हरण किया है, वह अन्य में अपना चित्त लगाए हुए भी अपने दाक्षिण्य की रक्षा करता है।

इस प्रकार सुभद्रा-नाटिका के नायक राजा भरत का चरित्र सर्वगुण-सम्पन्न एवं नाटिका के सर्वथा अनुकूल है।

सुभद्रा-चरित्र चित्रण

प्रस्तुत नाटिका की नायिका सुभद्रा है। नाटिका का नामकरण उसी के आधार पर हुआ है। सुभद्रा महाराज कच्छ की पुत्री और नमि की बहिन है। महाराज कच्छ राजा भरत के सगे मामा हैं। इस प्रकार सुभद्रा उनकी ममेरी बहिन हुई।

सुभद्रा नवयुवती है। उसमें यौवन के प्रवेश के साथ ही युवावस्था की भावनाएँ भी प्रकट होने लगती हैं। इसलिए वह बालाशोक और मालतीलता के परिणय द्वारा आत्म-परिणय की व्यंजना कराती है। वह परमसुन्दरी है। शरत्-पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उसका मुख है। नेत्र विशाल और भौंहें नम्र हैं। प्रबाल की भाँति सुकुमार-चरण हैं। वह स्तनों के भाराधिक्य से झुकी हुई और शरीर से कृश है। उसकी सुन्दर नाभि और उरु रम्भा के समान हैं। उसके अनिन्द्य सौन्दर्य की प्रशंसा सभी लोग करते हैं। उसके अपरिमित सौन्दर्य का यही प्रमाण है कि उसके पद-विन्यास के चिह्न-मात्र से ही राजा आकर्षित हो जाता है और उनका अनुसरण करता हुआ सुभद्रा तक पहुँच जाता है।

सुभद्रा मुग्धा नायिका है और उसके अनुरूप ही उसमें सुकुमार-भावों की सृष्टि हुई है। नायिका के प्रथम दर्शन पर भरत के मुख से आश्चर्यजनक शब्द निकल पड़ते हैं, कि विधाता की रचना कितनी चातुर्यमय है कि उसने शृंगार-रस के अनुकूल, इस पात्रा की सृष्टि की है। उसमें सभी गुण शृंगार-रस के अनुकूल हैं। वह मुग्धा-नायिका होते हुए भी मध्यात्व की ओर बढ़ती जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रा इतनी रूपवती है कि उसे बाह्य अलंकरण की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वह केवल उतना ही अलंकरण करती है, जो उसकी स्वाभाविक शोभा-वृद्धि में सहायक हों। पर पैरों में अलक्तक लगाती है। कानों में कर्णोत्पल, वक्षस्थल में मुक्तावली, पैरों में नूपुर धारण करती है और नेत्रों में अंजन का प्रयोग करती है।

सुभद्रा की सबसे बड़ी विशेषता उसका लज्जा गुण है, जो भारतीय आदर्श नारी का प्रतिरूप है। वह अत्यन्त लज्जाशील नारी है। राजा भरत के प्रथम दर्शन पर वह लज्जा के वशीभूत हो सखियों के खोजने का बहाना करके वहाँ से चली जाती है। दूसरे अंक में भी सुभद्रा भरत के समक्ष लज्जा से नतमुखी बनी रहती है, तब राजा कहता है कि इस लज्जा को छोड़कर मेरे हाथ का अवलम्बन ग्रहण करो। विवाह के समय भी जब उसमें लज्जा का भाव बना रहता है, तब रानी वैलानी को कहना पड़ता है कि हे लज्जालुके, मेरी ओट में रहती हुई इधर आ जा।

सुभद्रा अत्यन्त बुद्धिमती है। वह अनंग-लेख लिखने की सामग्री प्रकृति के उपकरणों से ही तैयार करती है। अशोक-पल्लव को कागज के रूप में प्रयुक्त करती है, आँसू से आर्द्र स्तन का अंगराग स्याही का कार्य करता है और नखाग्र ही उसकी लेखनी बन जाता है।

सुभद्रा सहृदया और विदग्धा है। मन्दारिका श्लेष से जब बालाशोक के सम्बन्ध में कथन करती है, तभी वह समझ जाती है कि इसके वचन अर्थान्तर से गर्भित हैं। सुभद्रा सहृदया और मुग्धा है, इसलिए सुकुमार-भाव वाली है। राजा के द्वारा किया जाने वाला चित्र-दर्शन जब रानी वैलाती द्वारा बाधित किया जाता है, तब सुभद्रा के आँसू गिरने लगते हैं। राजा इसका कारण पूछता है, तब सखी उसके भयभीत होने की बात कहती है। राजा उत्तर में उसे मुग्धा शब्द से सम्बोधित करता है और सुभद्रा का हाथ ग्रहण कर लेता है। उसकी सहृदयता का दूसरी बार परिचय उस प्रसंग में मिलता है, जब वह यह समाचार सुनती है कि उसके भाई ने भरत-चक्रवर्त्ती के साथ सुभद्रा के विवाह का निश्चय किया है, तब भरत चक्रवर्त्ती को अपने अनुरागी व्यक्ति से भिन्न समझकर मूर्च्छित हो जाती है। उसके मन में यह लोभ जागृत नहीं होता कि मैं चक्रवर्त्ती के साथ विवाही जाऊँगी, अपितु उसके हृदय में तो वही व्यक्ति श्रेष्ठ है, जिसके साथ एक बार उसका हृदय लग चुका है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटिका की नायिका सुभद्रा सर्वगुण सम्पन्न श्रेष्ठ स्त्री-रत्न है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंजना-पवनंजय नाटक की कथावस्तु

इस नाटक की कथावस्तु को नाटककार ने सात अंकों में नियोजित किया है। प्रथम अंक में राजा महेन्द्र अपनी सुपुत्री अंजना का स्वयंवर रचाते हैं। उसमें उपस्थित होने के लिए दूर-दूर के राजकुमार आते हैं। इन्हीं में से आदित्यपुर के राजा प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय भी है। स्वयंवर से पूर्व ही पवनंजय अंजना के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर अपने मित्र प्रहसित से उसे देखने की इच्छा व्यक्त करता है। तत्पश्चात् स्वयंवर होता है और वरमाल का अधिकारी स्वयं पवनंजय ही बन जाता है।

द्वितीय अंक में अंजना की विदाई हो जाती है और वसन्तमाला के द्वारा यह सूचना दिलवाई जाती है कि आदित्यपुर-नगरी विद्याधर-लोक के अलंकार के समान है। थोड़े ही समय बाद राजा प्रह्लाद वरुण पर आक्रमण करने हेतु प्रयाणभेरी बजवा देता है।

तृतीय अंक में पवनंजय मुद्गर नामक सेनापति के साथ युद्ध करने के लिए चला जाता है। युद्ध करते-करते चार मास व्यतीत हो जाते हैं। एक दिन सन्ध्या के समय उन्होंने विरह-व्याकुल चक्रवाकी का रुदन सुना। उसे सुनकर उन्हें अंजना की विरह-व्यथा का स्मरण हो आया और वे उसी समय विमान से अंजना के पास पहुँच जाते हैं।

चतुर्थ अंक में पवनंजय उसी रात्रि में अंजना से मिलकर प्रातःकाल ही युद्ध-भूमि में पहुँच जाते हैं। अंजना-पवनंजय के मिलन की जानकारी अंजना की अंतरंग सखी वसन्तमाला के अतिरिक्त अन्य किसी को न थी। पवनंजय चार मास पश्चात् आने का कह जाते हैं लेकिन चार माह के बाद भी उनका आ पाना सम्भव न हो सका। यहाँ अंजना के गर्भचिह्न प्रकट होने लगते हैं। उसकी सास केतुमती उसकी बात का विश्वास न करके उसे क्रूर भैरव के द्वारा निर्वासित करके उसके पिता महेन्द्र के पास भेज देती हैं। किन्तु अंजना की सास ने, जो कलंक लगा कर भेजा था, उस स्थिति में वह पिता के घर न जाकर मार्ग में भूधरवाट नामक वीथी में ही उतर जाती है।

पंचम अंक में अंजना अपनी सखी के साथ मातंगमालिनी नाम के वन में जाती है। वहाँ से अमितगति नामक एक श्रमण-साधु से उसकी भेंट होती है। वे बतलाते हैं कि पूर्व-जन्म के कारण तुम्हें इतने कष्टों का सामना करना पड़ा है। शीघ्र ही तुम एक सौभाग्यशाली पुत्र को जन्म दोगी और पति से भी तुम्हारी भेंट होगी। समयानुसार अंजना ने हनुमान को जन्म दिया। उसी अवसर पर उसके मामा प्रतिसूर्य वहाँ से विमान पर निकलते हैं और अंजना को साथ ले जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। विमान पर चढ़ाते ही शिशु हनुमान हाथ से छूटकर एक शिला पर गिर जाता है, जिससे शिला चूर-चूर हो जाती है, पर हनुमान का बाल भी बाँका नहीं होता।

पवनंजय लौटकर घर आता है, तब उसे पता लगता है कि अंजना पितृ-गृह गई हुई है। वह अंजना को लेने चल देता है। मार्ग में उसे पता चलता है कि अंजना पितृगृह न जाकर मातंग-मालिनी-वन में गई है, तब वह मातंगमालिनी वन में उसकी खोज करने चला जाता है।

षष्ठ अंक में पवनंजय पागलों की भाँति जड़, चेतन से अंजना का पता पूछने लगता है। अन्त में थककर वह चन्दन, वृक्ष से लगकर विश्राम करने लगता है। इस दयनीय अवस्था में अंजना का मामा आ जाता है और अंजना को भी वहीं बुलवा लेता है।

सप्तम अंक में सभी का मिलन हो जाता है। पवनंजय के राज्याभिषेक की तैयारी होती है। इस राज्याभिषेक के अवसर पर वरुण और रावण पवनंजय को विजयार्ध की राज्यलक्ष्मी प्रदान करने का निश्चय करते हैं। अन्त में भरत-वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

पवनंजय-चरित्र-चित्रण

अंजना-पवनंजय नाटक का मुख्य नायक पवनंजय है। धीरोदात्त नायक की सभी विशेषताएँ उसके चरित्र में परिलक्षित होती हैं। वह क्षमाशील, अतिशय गम्भीर, परम करुणामय और अपने कर्त्तव्य का प्राणपण से निर्वाह करने वाला है। पवनंजय आदित्यपुर के राजर्षि प्रह्लाद का पुत्र है। वह युवावस्था को प्राप्त एक सुन्दर नवयुवक है। उसका परिणय राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना के साथ होता है। वह इतना सुन्दर है कि अंजना का भाई उसे कान्ति रूपी लक्ष्मी को धारण करने वाले दूसरे वसन्त के समान बतलाता है।

वह उत्साही शूरवीर और तेजस्वी भी है। द्वितीय अंक में जब उसका पिता राजा वरुण पर चढ़ाई करने की तैयारी करता है, तब वह पिता से आग्रह करके स्वयं ही युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करता है। उसकी वरुण के प्रति कही गई उक्तियाँ उसकी वीरता की परिचायका हैं। वह कहता है कि वरुण की पातालपुरी को जड़ से उखाड़ कर समुद्र में फेंक दूँगा तथा बाणों की चिनगारियों से युद्ध में प्रवाहित शत्रुओं के रुधिर को सुखा दूँगा। अन्य पात्रों के वार्तालाप से भी उसकी तेजस्विता पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ अमात्य विजय शर्मा का यह कथन कि कुमार पवनंजय दुर्निरीक्ष्य पैतृक तेज को धारण करते हुए आकाश के मध्य को लाँघने वाले सूर्य की श्रेणी को प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार सेनापति का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कथन कि "पवनंजय की पराक्रमशीलता के सम्बन्ध में क्या कहा जाय ? हम लोग तो केवल संख्या बढ़ाने वाले हैं" आदि।

पवनंजय अति गम्भीर प्रकृति का है। विजय-प्राप्ति के पश्चात् जब वरुण उसके पराक्रम की प्रशंसा करता है, तब पवनंजय भी अपने श्रेय का कथन न करके, वरुण की ही प्रशंसा करता है। इस प्रकार का व्यवहार उसके स्वभाव की गम्भीरता को व्यक्त करता है।

वह कर्त्तव्यपरायण तो इतना है, कि अपनी नवविवाहिता पत्नी का प्रथम दिन ही छोड़कर, पिता की आज्ञा से युद्ध के लिए प्रस्थान कर जाता है और युद्ध में विजयश्री को प्राप्त कर लेने पर ही लौटकर आता है। वह रावण के मान की रक्षा की भी प्रतिज्ञा करता है और अपने पराक्रम से उसे पूर्ण भी करता है। इस प्रकार वह दृढ़व्रती भी है।

पवनंजय में कृतज्ञता-गुण भी अक्षुण्ण है। वह उस प्रतिसूर्य के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है, जिसने हनुमान की रक्षा करके नमिवंश को बचा लिया था। वह मणिचूड़ नामक गन्धर्व के प्रति भी कृतज्ञ है, जिसने वन में सिंह से गर्भवती अंजना की रक्षा की थी।

मानवोचित दयालुता की उसमें कमी नहीं है, इसलिए एक ओर अपने पराक्रम से शत्रु-समूह को चूर्ण कर देने की क्षमता रखने वाला पवनंजय, विरह-विदग्ध चक्रवाकी के करुण-क्रन्दन से करुण-विगलित हो उठता है। उसके चरित्र की इस विशेषता पर "वज्रादपि कठोर तथा कुसुमादपि कोमल" की उक्ति शब्दशः चरितार्थ होती है।

पवनंजय चित्रकार भी है। विरह-व्याकुल चक्रवाकी को देखकर उसे अंजना की स्मृति हो आती है। उस समय वह विदूषक से चित्रफलक मँगवाकर अंजना का सुन्दर चित्र बनाता है और उसी के साथ अपना मनोरंजन भी करता रहता है।

युद्ध से लौटने पर पवनंजय जब अंजना को नहीं पाता तो उसके विरह से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। उसको खोजने हेतु वह वन-वन में भटकता है। उसकी अवस्था उन्मत्तों के सदृश हो जाती है। उसे जड़, चेतन का कोई ज्ञान नहीं रह जाता। वह वन के वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओं से अंजना का पता पूछता है। वह अंजना की खोज करते-करते निराश हो जाता है और अचेतनावस्था में पहुँच जाता है। इस प्रसंग से पवनंजय की अधैर्यता का बोध भी होता है।

पवनंजय में सबसे बड़ा गुण उसका धार्मिक होना है। युद्धभूमि में भी उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धार्मिक क्रियाओं में कोई विघ्न नहीं पड़ता। युद्ध से निर्वृत्त होने पर वह सन्ध्या-वन्दन एवं सामायिक नियम पूर्वक करता है। इसका उल्लेख नाटक के तृतीय अंक में है। युद्ध में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि संहारात्मक-हिंसा अधिक न हो और विजय भी प्राप्त हो जाय। इससे उसकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति का पता चलता है। भरत-वाक्य के माध्यम से उसने धर्म के प्रति श्रद्धालु भव्यों के कल्याण की कामना की है। इस तरह पवनंजय पराक्रमी होने के साथ-साथ धार्मिक भी है।

इस प्रकार पवनंजय का चरित्र जिसमें वीरता, तेजस्विता एवं अदम्य साहस के साथ-साथ विनम्रता, क्षमाशीलता और धार्मिकता अक्षुण्ण है।

अंजना-चरित्र-चित्रण

अंजना प्रस्तुत नाटक की नायिका है। वह सौन्दर्य-गुण से सम्पन्न एक मुग्धा नायिका है। वह राजा महेन्द्र की पुत्री और अरिन्दमन की बहिन है। वह स्वकीया पत्नी होने के कारण स्वकीया नायिका है। अंजना में आदर्श नारी के सभी गुण विद्यमान हैं। मुग्धा नायिका होने के कारण वह लज्जालु प्रवृत्ति की है।

उसका सौन्दर्य अप्रतिम है, जिससे पवनंजय आकर्षित हो जाता है और विवाह के पूर्व ही दोनों में परस्पर अनुराग हो जाता है। उसके पश्चात् दोनों प्रणय-सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं।

अंजना शान्त प्रकृति की है। जब पवनंजय विवाह के प्रथम दिन ही रणभूमि के लिए प्रस्थान करता है, तब अंजना को उस पर जरा भी क्रोध नहीं आता। इसी प्रकार गर्भावस्था के समय सास द्वारा कलंक लगाए जाने पर भी उसे उन पर कोप नहीं आता। वह सभी दुःखों को शान्तिपूर्वक सहन कर लेती है।

नाटक में नाटिका-भेद में अंजना प्रोषित-पतिका-नायिका के अन्तर्गत आती है, क्योंकि विवाह के पूर्व उसका अनुराग पूर्वानुराग है तथा विवाह के पश्चात् पवनंजय को युद्ध में जाना पड़ता है, इसलिए उसका पति-मिलन नहीं हो पाता। अतः वह प्रोषित-पतिका है और छठवें अंक में दोनों का मिलन हो जाने के बाद स्वाधीनपतिका-नायिका हो जाती है।

अंजना संगीत की शिक्षा भी प्राप्त करती है। वह सखियों के साथ संगीत का अभ्यास करने के लिए संगीतशाला में जाती है। उसे प्रकृति से भी अनन्य प्रेम है। इसलिए वह अपनी सखियों के साथ मन्दार-वन में प्रकृति का आनन्द लेने एवं पुष्प-चयन के लिए जाती है।

वह अत्यन्त लज्जाशील है। वह पवनंजय के सम्मुख भी लज्जा का अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती है, तब उसे कहना पड़ता है कि तुम्हारा लज्जा के प्रति इतना आग्रह क्यों ? जब गर्भावस्था में सास उसे कलंक लगाकर पिता के घर भेज देती है, तो भी वह लज्जा के कारण ही वहाँ नहीं जाती और वन के भयंकर कष्टों को झेलती रहती है।

उसमें सरलता, सहिष्णुता भी अत्यधिक है। पति के तुरन्त ही युद्ध भूमि में चले जाने पर भी किसी प्रकार का दुःख व्यक्त नहीं करती और सास के घर से निकाल देने पर भी चुपचाप चली जाती है, किसी प्रकार का विरोध नहीं करती।

वह पूर्व-दिशा के समान सौभाग्यशालिनी आदर्श नारी है, जिसने सूर्य-समान तेजस्वी और वीर पुत्र हनुमान को जन्म दिया, वह ऐसी शीलवती और पतिव्रता नारी है, जिसका चरित्र कष्टों की अग्नि में तपकर शुद्ध स्वर्ण के समान उज्जवल बन गया है, और उसके सभी कष्ट विरह की अग्नि में भस्म हो गये हैं। नाटक के अन्त में उसे पति का स्थायी सुख प्राप्त हो जाता है।

(३) मैथिली कल्याण नाटक : कथावस्तु

मैथिली कल्याण नाटक की कथा का विस्तार पाँच अंकों में प्राप्त होता है। प्रथम अंक में नाटक की कथा का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है, जिसमें रामभद्र (अर्थात् राम) से सभी के कल्याण की प्रार्थना की गई है। सूत्रधार और नटी अपने वार्तालाप के प्रसंग में नाटककार हस्तिमल्ल का परिचय देते हैं और उनकी विद्वत्ता पर प्रकाश डालते हैं। नटी वसन्त-ऋतु की महिमा का गान करती है। मिथिला में वसन्तोत्सव की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर से होती हैं। राम भी विदूषक के साथ वसन्त-शोभा देखने के लिये जाते हैं। मार्ग में उन्हें ज्ञात होता है कि कामदेवगृह के समीप उद्यान में आज सीता जी दोलारोहण करेंगी, इस समाचार से राम उसी ओर जाते हैं और कामदेवगृह में छिप जाते हैं।

सीता दोलागृह में झूला झूलती है और सखियों के साथ गीत गाती है। उसी समय उसकी स्मृति में राम आ जाते हैं। वह उनके विषय में बहुत सुन चुकी है। उनका स्मरण हो आने से उसका मन उदास हो जाता है। तभी उसकी सखी विनीता उसे कामदेव गृह में ले जाती है और कहती है कि हम लोग कामदेव से तुम्हारे इच्छित वर की प्रार्थना करते हैं। वहाँ पहले से ही बैठे हुए राम से उसकी भेंट हो जाती है। विनीता उन्हें ही कामदेव समझकर विनती करती है, पर उनके हाथ में राम नाम की अँगूठी देखकर वह सब समझ जाती है और सीता को भी बता देती है।

द्वितीय अंक—विदूषक के कथन से विदित होता है कि राम सीता के प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्सुक हैं और उसके विरह से उनका मन बड़ा व्यथित है। वे मन को शान्त करने के लिए विदूषक के साथ माधवी-वन में जाते हैं। वहाँ वसन्त की शोभा सर्वत्र बिखरी हुई है। प्रकृति अपने पूर्ण यौवन से मुस्करा रही है। किन्तु सीता के बिना समस्त प्रकृति राम के विरह को और अधिक उद्दीप्त करती है। शीतलोपचार भी उन्हें सन्तप्त करता है।

इधर सीता भी विनीता के साथ माधवी-वन पहुँचती है और राम की आवाज सुनती है। वे छिपकर उनकी बातें सुनने लगती हैं। "किं तया ?" शब्द को सुनकर सीता समझती है कि राम को सीता से कुछ प्रयोजन नहीं है, सीता मूर्च्छित हो जाती है। विनीता की घबराहट से राम और विदूषक वहाँ पहुँच जाते हैं। मूर्च्छा दूर होने पर सीता राम की ओर से सरोष मुख फेर लेती है। राम इसका कारण जानकर उसका समाधान कर देते हैं। इसी समय सन्ध्या का संकेत मिलता है और सीता चली जाती है।

तृतीय अंक के आरम्भ में वामन और कुब्जा का परस्पर हास-परिहासपूर्ण वार्तालाप होता है। राजदरबार में वर्षधर षण्ढ भी है, जो कि पुरुष तथा स्त्री दोनों रूपों में है। कलावती भी ऐसा ही पात्र है। वह माधवी-वन में सीता की विरह-वेदना का समाचार राम को सुनाती है। सीता द्वारा केतकी-पत्र पर लिखित प्रेम-पत्र भी उन्हें देती है। उस पत्र में चन्द्रकान्त-धारागृह में पहुँचने की चर्चा की गई थी। कलावती धारागृह पहुँचने का मार्ग राम को बतलाती है।

चतुर्थ अंक में विरह से सन्तप्त सीता और विनीता चन्द्रकान्त-धारागृह में पहुँचती हैं और विरह-सन्ताप को दूर करने के लिए विविध प्रकार के उपचार करती हैं, लेकिन सभी व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

इधर विदूषक और राम धारागृह के समीप पहुँचकर तथा वहीं छिपकर उनकी बातें सुनते हैं। जब सीता निराश हो जाती है, तब विनीता माधवी-वन की घटना पर एक अभिनय करती है, उस अभिनय में जब सीता मूर्च्छित होने का अभिनय करती हैं, तभी राम वहाँ प्रकट हो जाते हैं। उसी समय माता वसुधा सीता को बुलाती है। यह सुनकर सीता अनिच्छापूर्वक वहाँ से चली जाती हैं।

पंचम अंक में सीता के विवाह के लिए सभा-मण्डप सजाया जाता है और वज्रावर्त्त-धनुष सभा-मण्डप के मध्य रखा जाता है। अन्य राजकुमारों के साथ राम एवं लक्ष्मण भी वहाँ पहुँचते हैं। दूसरे राजकुमार धनुष पर डोरी चढ़ाने का प्रयत्न तो करते हैं, किन्तु उसमें असफल रहते हैं। किन्तु राम जाकर उस धनुष की डोरी को चढ़ा देते हैं और धनुष को झुका देते हैं। उनके इस कार्य से मिथिलावासियों में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो जाती है। ईर्ष्यावश कुछ लोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युद्ध के लिए तैयार होते हैं, लेकिन देवों द्वारा राम का यशोगान और ये आठवें बलभद्र हैं, इनका बहुत प्रभाव है। यह सुनकर सभी लोग शान्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् राजा जनक सीता का कन्यादान कर देते हैं।

अन्त में भरत-वाक्य में सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति की कामना के साथ यह नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक की कथावस्तु प्रख्यात है। ऐतिहासिक और लौकिक दृष्टि से धनुर्भंग की कथा अत्यन्त प्राचीन है। आदि-रामायण और अनेक काव्यों में राम को दिव्य रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु उक्त नाटक में राम एक सामान्य-जन के रूप में चित्रित हैं और वह भी शृंगारी-नायक के रूप में वर्णित होने से सर्व-साधारण रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस दृष्टि से कथावस्तु का लौकिक रूप ही नाटक का विषय बन पड़ा है।

राम का चरित्र-चित्रण

राम शब्द भारतीय संस्कृति का प्राण है। युग के आदि से ही उसने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यक जीवन के कण-कण को प्रभावित किया है। वे ऐसे आदर्श युग-पुरुष रहे हैं, जिनके स्मरण मात्र से ही लोगों को इच्छित-सुख एवं सन्तोष को प्राप्ति होती है।

वे रामायण के प्रख्यात नायक हैं। उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं, साथ ही प्रस्तुत नाटक शृंगार-रस-प्रधान होने के कारण उनमें शृंगारी नायक के गुण भी वर्त्तमान हैं। उक्त नाटक में उनका चरित्र साधारण मनुष्य की भाँति ही चित्रित हुआ है। उनमें कहीं असाधारणता के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। वह नायिका के वियोग में अत्यन्त सन्तप्त दिखलाई देते हैं, यद्यपि नाटककार ने नाटक के मंगलाचरण में ही उनसे कल्याण की कामना की है और आकाश-वाणी द्वारा उनके माहात्म्य का वर्णन किया है, जिसके अनुसार वे चरमदेहधारी हैं अर्थात् उसी भव से मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं। मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले मुनिगण भी राम की ओर निहारते हैं।

श्रीराम पुरुषों में श्रेष्ठ तथा भरपूर तारुण्य से युक्त हैं। वे दृढ़व्रती हैं। नाटक की महत्वपूर्ण घटना धनुष पर ज्या का आरोपण करना है। वह वज्रावर्त्त-धनुष, जो कि देवों द्वारा रक्षित था, जब भी कोई वीर पुरुष उस धनुष के समीप पहुँचता था, उसमें से सर्पों की फूत्कार और अग्नि-स्फुलिंग निकलने लगते थे। जिस कार्य को कोई भी वीर नहीं कर सका, उसको राम ने पलक मारते ही कर दिया। उन्होंने केवल ज्या का आरोपण ही नहीं किया, वरन् धनुष को भी झुका दिया। वह घटना राम की वीरता की द्योतक है और उनके चरित्र के उत्कर्ष को सिद्ध करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे क्षमाशील भी हैं। जिस समय वे धनुष पर ज्या चढ़ाकर उसे झुका देते हैं तो अनेक योद्धा क्रोधित होकर युद्ध के लिए तत्पर हो जाते हैं। उस समय राम शान्तभाव से अपनी क्षमाशीलता का परिचय देते हैं।

उनकी विचारधारा सात्विक भावों से परिपूर्ण है। भरत-वाक्य में कहे गये उनके वाक्य उनके चरित्र की सद्वृत्तियों और विचारधाराओं को प्रकाशित करने में समर्थ हैं।

सीता-चरित्र चित्रण

मैथिली-कल्याण नाटक की प्रधान नायिका सीता है। वह मिथिला के राजा जनक एवं माता वसुधा की पुत्री है। सीता अनन्य सुन्दरी है। उसका व्यक्तित्व जितना सुन्दर, प्रशंसनीय और पवित्र है, उतना ही उसका अन्तरंग भी निश्छल है। उसका पावन-चरित्र भारतीय ललनाओं के लिए आदर्श है। इसीलिए उसकी उपमा गंगा एवं लक्ष्मी से की गई है।

वह एक मुग्धा नायिका है। मुग्धा नायिका का विशेष गुण उसका लज्जावती होना है। सीता अत्यन्त लज्जाशील है। राम को देखते ही उनके प्रति उसके हृदय में अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इस भावना को वह अपनी अन्तरंग सखी विनीता को भी नहीं कह पाती।

वह गायन-कला में निपुण है। दोलागृह मे रत्नों के झूले पर झूलते समय वह मधुर स्वर में गीत गाती है, जिसे सुनकर राम के मन में अनुराग उत्पन्न हो जाता है। सीता को भी राम के प्रति अनन्य अनुराग है। इसलिए राम के वियोग से वह सन्तप्त रहती है। सीता के सन्ताप को दूर करने के लिए सखियाँ उसे चन्द्रकान्त धारागृह में ले जाती हैं और वहाँ विविध प्रकार के शिशिरोपचार किए जाते हैं, किन्तु सीता की वेदना शान्त नहीं होती।

सीता सहृदया और चतुर भी है। राम विदूषक से ' किं तया ?" शब्द कहते हैं, जिसे सुनकर सीता कुपित हो जाती है, तब राम उस उक्ति का अर्थ बतलाकर सीता का समाधान कर देते हैं। इसी प्रकार जब कलावती सीता के द्वारा लिखा हुआ प्रेम-पत्र राम को देती है, केतकी-पत्र पर लिखे हुए उस पत्र में लिखा हुआ था कि "दर्शन मात्र से अंकुरित, सन्तापों से पल्लवित और सुख से कुसुमित हुआ काम फलित हो रहा है।" इस पत्र से सीता की चतुराई का पता चलता है।

इस प्रकार सीता नारी के समस्त गुणों से भूषित एक ऐसी आदर्श नायिका है, जिसने अपनी कष्टसहिष्णुता, मर्यादा, शील एवं धैर्य से समस्त नारी-जगत् की गरिमा एवं गौरव को प्रतिष्ठित किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) हस्तिमल्ल के नाटकों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्त्व

संस्कृति और सभ्यता दोनों अलग तत्त्व हैं। संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक अलंकरण से है और सभ्यता का सम्बन्ध बाह्य अलंकरण से। कवि दिनकर ने इसकी परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया है—संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है, जो सारे जीवन में व्याप्त है तथा जिसकी रचना और विकास में सदियों के अनुभवों का हाथ है। अर्थात् मन, आचार और रुचियों की शुद्धि ही संस्कृति है।

नाटककार हस्तिमल्ल भी संस्कृति के सम्बन्ध में इसी प्रकार की विचारधारा रखते हैं। उनका कथन है—आत्मा, शरीर और मन को शास्त्रज्ञान, आचार-सहिष्णुता, सत्यवचन एवं त्याग द्वारा सुसंस्कृत बनाना संस्कृति है। उनकी दृष्टि में संस्कृति का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने केवल आत्म-शोधन को ही संस्कृति में अन्तर्भूत नहीं किया, अपितु जीवन-भोग को भी संस्कृति का अंग माना है। उत्सव, जलविहार, क्रीड़ाएँ, प्रेम व्यापार एवं पारस्परिक आदान-प्रदान की क्रियाएँ संस्कृति के उपांग हैं।

महाकवि हस्तिमल्ल ने अंजना-पवनंजय एवं मैथिली-कल्याण नाटक का प्रारम्भ, वसन्त ऋतु और वसन्तोत्सव से किया है, जिसमें आनन्द, उल्लास, सहानुभूति और संयम जीवन को सुसंस्कृत बनाने में पूर्ण सहायक हैं। उक्त नाटकों का प्रतिपाद्य-विषय पवनंजय को अंजना की स्थायी प्राप्ति, राम और सीता का पाणिग्रहण और भरत-सुभद्रा का मिलन है, जिसे नाटककार ने भारतीय संस्कृति का मूर्धन्य रूप माना है।

हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों में नायक-नायिका की अभिव्यंजना आदर्श-पात्र के रूप में की है। उनके नायक अपने-अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हैं। राम तो मर्यादा-पुरुषोत्तम ही हैं और पवनंजय अपने कर्त्तव्य के निर्वाह-हेतु विवाह के दूसरे दिन अंजना से मिले बिना ही युद्ध के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। भरत भी राज्य और प्रजा के लिए दिग्विजय-यात्रा के लिए निकलते हैं। अतः जीवन की समस्त अच्छाइयाँ, जो कि संस्कृति की प्राण हैं, कर्त्तव्य और दायित्व के सन्तुलन से ही प्राप्त होती हैं। सांस्कृतिक-जीवन से विगत का ज्ञान, वर्त्तमान की प्रतिष्ठा और भावी जीवन का सन्देश जन-जन को प्राप्त होता है। हस्तिमल्ल के नाटकों में वर्णित सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्त्वों का संक्षेप में निम्न प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

१. आत्मसंस्कार।

२. सामाजिक जीवन।

३. उत्सव एवं मनोविनोद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. वेशभूषा तथा अलंकरण ।
५. शिक्षा एवं,
६. ललित-कलाएँ ।

१. आत्मसंस्कार

कवि हस्तिमल्ल के सभी नाटक शृंगार-प्रधान हैं। फिर भी शान्त रस से समन्वित होने के कारण उनमें आत्म-सम्बोधन की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। कवि की दृष्टि में विषय-भोग प्रेय अवश्य है, पर श्रेय का मार्ग इसी प्रेय की गली से होकर गुजरता है। 'मैथिली-कल्याण नाटक' में वसन्तोत्सव के समय जब राम और सीता परस्पर में मिलते हैं और एक दूसरे के अनन्य-सौन्दर्य से आत्म-विभोर हो उठते हैं, तब राम के हृदय में सीता-प्राप्ति के लिए द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु वही राम अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते और कह उठते हैं—

क्व विषयेषु विवेकसहं मनः स्मृतिविमोहजडाः क्व च कामिनः ।
वदसि मह्यमनात्मवते कथं कथय तुभ्यमविप्लुतचेतसे ।। मैथिली २।२६

इस प्रकार अंजना-पवनंजय नाटक में पवनंजय सर्वांग सुन्दरी अंजना के सौन्दर्य से वशीभूत होकर उससे मिलन का अवसर खोजते हैं। लेकिन विवाह के तुरन्त बाद जब युद्ध की भेरी बजने लगती है, तो वे मिलन हुए बिना ही तत्काल युद्ध के लिए प्रयाण कर जाते हैं। इसमें उन्हें क्षणभर की भी देर नहीं लगती। इस प्रकार पवनंजय अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हैं।

सुभद्रा नाटिका के राजा भरत शृंगारी नायक हैं और सुभद्रा पर पूरी तरह से आसक्त हैं, साथ ही धार्मिक वृत्तियों से युक्त भी। नाटिका के मंगलाचरण में और भरत-वाक्य में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे भरत की धार्मिक-वृत्तियों की ओर इंगित करते हैं। भरत में भोग की प्रवृत्ति के साथ ही धार्मिक-भावों के द्वारा आत्म-कल्याण की भावना निहित है। धर्म विहित प्रेम ही श्रेष्ठ है। इसी धर्म से नियन्त्रित होने पर काम जीवन को सुसंस्कृत बनाता है।

"विषयेषु: विवेकसहं मनः" कहकर नाटककार ने बहुत थोड़े में आत्म-संस्कार का तथ्य निरूपित कर दिया है।

(२) सामाजिक-रीतिरिवाज

हस्तिमल्ल के नाटकों का प्रतिपाद्य विषय नायक-नायिका के प्रेमाकर्षण द्वारा उन्हें परिणय-सूत्र में आबद्ध करा देना है। इसलिए उनके नाटकों में रीति-रिवाजों में केवल विवाह-विधि का ही सुन्दर वर्णन हुआ है।

अंजना-पवनंजय और मैथिली-कल्याण नाटकों में विवाह के लिए स्वयंवर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि के उल्लेख आए हैं। स्वयंवर के पूर्व कन्याओं को वरों के चित्र-दर्शन की सुविधा थी। स्वयंवर प्रथा से यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन्हें अपने योग्य वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। सीता ने सभा-मण्डप के मध्य राम के गले में जयमाला पहनाई थी।

जनक सीता के स्वयंवर में वज्रावर्त्त धनुष पर ज्या (डोरी) चढ़ाने वाले के साथ सीता के विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। राम उस धनुष पर डोरी ही नहीं चढ़ाते, अपितु उसको झुका भी देते हैं। तब जनक रत्नजटित भृंगार से जलधारा देकर सीता का हाथ राम के हाथ में समर्पित कर देते हैं।

दक्षिण भारत में आजकल भी यह प्रथा है कि मामा अथवा फूफा की पुत्री के साथ विवाह सम्बन्ध हो जाता है। सुभद्रा-नाटिका में भी सुभद्रा, भरत के मामा की पुत्री है। मामा ने हर्षपूर्वक भरत के साथ उसका कन्यादान किया था। विवाह-विधि को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। भरत और सुभद्रा का कितना भी प्रेम था, लेकिन भरत तब तक सुभद्रा को प्राप्त नहीं कर पाया, जब तक राजा नमि ने उसका कन्यादान नहीं कर दिया।

स्वयंवर के साथ आमन्त्रित राजकुमार अपनी-अपनी सेनाओं के साथ स्वयंवर में पहुँचते थे, इसका संकेत मैथिली-कल्याण और अंजना-पवनंजय में उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस वर का चुनाव कन्या करती होगी, उसके सम्बन्ध में ईर्ष्या करने वाले, अन्य कुमार संघर्ष के लिए तैयार रहते होंगे। मैथिली-कल्याण नाटक में राम के धनुष पर डोरी चढ़ाने के पश्चात् कुछ लोग युद्ध के लिए तैयार हुए किन्तु देवों द्वारा राम की कीर्ति को सुनकर शान्त हो गये। इसी प्रकार अंजना-पवनंजय में भी पवनंजय के गले में माला पड़ जाने के पश्चात् यह कहा जाना, कि किसी भी प्रकार की कलह नहीं हुई, यह कथन स्वयं ही संघर्ष का संकेत देता है।

ब्राह्मण लोग शुभ अवसरों पर स्वस्तिवाचन किया करते थे और आशीर्वाद देते थे। उनके आशीर्वादों में जनता का भी विश्वास था। उसके उपलक्ष्य में उन्हें भेंट दी जाती थी। वे दाता के लिए कल्याण-कामना किया करते थे।

कन्या के साथ उसकी सखी के ससुराल जाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। अंजना के साथ उसकी सखी वसन्तमाला भी आदित्यपुर जाती है और हर परिस्थिति में वह अंजना का साथ देती है।

कन्या के वयस्क हो जाने पर ही विवाह संस्कार किये जाते थे। इसलिए विवाह के पश्चात् उसे ससुराल विदा कर दिया जाता था।

संतानोत्पत्ति पर जातकर्मादि संस्कार करने की प्रथा थी। हनुमान के जन्म पर उसके जातकर्मादि संस्कार अंजना के मामा प्रतिसूर्य के यहाँ सम्पन्न हुए थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariya, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज में कुछ राजाओं को राजर्षि की उपाधि भी प्रदान की जाती थी। जो राजा राज-काज के साथ धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे, उन्हें यह पद प्राप्त होता था। राजा जनक और पवनंजय के पिता राजा प्रह्लाद राजर्षि की पदवी से प्रतिष्ठित थे।

उस युग में धर्म के प्रति लोगों में रुचि थी। वे लोग सन्ध्योपासना के कार्य समय पर किया करते थे। मैथिली-कल्याण नाटक का विदूषक नियम, अनुष्ठान में विश्वास रखता है एवं सन्ध्योपासना के कार्य करता है। सुभद्रा नाटिका का विदूषक भी सन्ध्योपासना के प्रति आस्था रखता है।

पुनर्जन्म के विषय में भी लोगों में विश्वास था, क्योंकि सुख-दुख की प्राप्ति में जन्मान्तर के कर्मों को उसका कर्त्ता माना गया है।

भाग्य, मान्यता, ज्योतिष एवं शकुन-अपशकुन की मान्यता तत्कालीन समाज में थी। अंजना-पवनंजय में जब पवनंजय युद्ध भूमि से मिलन हेतु अंजना के पास जाता है, तो आने के पूर्व अंजना का बायाँ नेत्र फड़कने लगता है। इसी तरह सीता के प्रसंग में नेत्र फड़कने की चर्चा की गई है और सुभद्रा की सखियाँ उसे आश्वासन देती हुई कहती हैं, कि निमित्त कभी विपरीत नहीं होते। राजा नमि भी कन्यादान के अवसर पर कहते हैं, यही विधि का शुभ-समय है।

३. उत्सव एवं मनोविनोद

अंजना-पवनंजय एवं मैथिली कल्याण नाटक का प्रारम्भ वसन्तोत्सव अथवा वसन्त ऋतु के मनोरम सौन्दर्य से हुआ है। वसन्त के दिन आह्लाद और उमंग के होते हैं। ऋतुराज वसन्त के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर जनमानस मुग्ध हो जाता है और चारों ओर संगीत की मधुर ध्वनि झंकृत होने लगती है। सभी लोग इस उत्सव को धूमधाम से मनाते हैं।

इस अवसर पर मनोरंजन के कई कार्यक्रम भी होते हैं। पुष्पों के विकास हेतु युवतियाँ वृक्षों का सिंचन किया करती थीं और दोहद के द्वारा उनका सत्कार भी किया करती थीं। सुभद्रा ने स्वयं ही अपने हाथ से संवर्धित बालाशोक में पुष्पोद्भव के लिए चरण-ताड़न किया था। इस अवसर पर विविध प्रकार के गीत-नृत्य का आयोजन किया जाता था। वसन्तोत्सव की छटा देखते ही बनती थी। इस प्रकार वसन्तोत्सव में जड़-चेतन सभी आनन्द विभोर हो उठते थे।

दोलोत्सव

कवि ने मैथिली-कल्याण नाटक में दोलोत्सव का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। उस समय दोला-क्रीड़ा के लिए पृथक् दोलागृहों का निर्माण किया जाता था। दोला को भाँति-भाँति की पुष्पमालाओं से सजाया जाता था और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसमें बहुमूल्य रत्नमणियाँ लगाई जाती थी। सीता अपनी सखियों के साथ झूला झूलती और गीत गाती रहती थी। उस युग में झूले पर झूलना मनोविनोद का एक सार्वजनीन साधन था।

मदनपूजोत्सव

मदनपूजा भारत का अति प्राचीन उत्सव है। अपने इच्छित वर की प्राप्ति हेतु सीता कामदेव के मन्दिर में पूजा करने जाती है। कवि ने मदन-पूजन के लिए चैत्र त्रयोदशी को उत्तम तिथि माना है। उन्होंने पूजन-विधि का वर्णन विस्तार के साथ किया है।

मनोविनोद के लिए लोग उद्यानों में विचरण किया करते थे। कवि ने प्रमदवन, तमालवन, हरिचन्दनलतागृह एवं मन्दारवन जैसे उद्यानों का उल्लेख किया है। अंजना मन्दारवन में जाकर पुष्प-चयन करती है। भारतीय-परम्परा में शृंगार के अनुकूल फूल चुनना स्त्रियों का विशेष मनोरंजन था।

४. वेशभूषा एवं अलंकरण

अंजना-पवनंजय, मैथिली कल्याण एवं सुभद्रा-नाटिका में जिन वस्त्राभूषण एवं अलंकरण सामग्री के उल्लेख मिलते हैं, उससे तत्कालीन संस्कृति का परिचय प्राप्त हो जाता है। स्त्रियाँ चीनपट्ट, कौशेय, नीलकौशेय, संव्यान (चादर, दुपट्टा), उत्तरीय एवं कंचुकी धारण किया करती थीं। वनवासी स्त्रियाँ नवकिसलय के वस्त्रों का प्रयोग करती थीं। पुरुष कश्मीरी-वस्त्र, उत्तरीय आदि धारण करते थे। कंचुकी द्वारा कंचुक (एक प्रकार का कुरता) धारण किये जाने का उल्लेख है। पुरुष जब कोई श्रम या वीरता का कार्य करते थे, तो अपनी कमर को बाँध लेते थे। सीता के स्वयंवर में धनुष को उठाते समय राजाओं ने अपनी कटि को बाँध लिया था।

स्त्रियाँ कांचीदाम, नूपुर, वलय, केयूर, रसना, हारलता, मणिमाला, मुक्ता-हार, मुद्रा एवं चूड़ामणि पहनती थीं, कानों में कर्णफूल, प्रवाल के उत्तंस, अवतंस और वनवासी महिलाएँ गजमुक्ता की माला, मयूरपंख के अवतंस, कानों में दन्तपत्र तथा बालों में चमरी के बालों को धारण कर अपने सौन्दर्य को बढ़ाती थी।

पुरुष भी अलंकार धारण करते थे। वे वक्षःस्थल पर मोती का हार, हाथ में कटक और अँगुली में मुद्रिका धारण करते थे। राम की अँगुली में राम नाम से अंकित मुद्रिका थी। भरत का विदूषक भी अपने हाथ की अँगुली में दर्भग्रन्थि नामक अँगूठी धारण करता था। उस समय सम्पन्न घरों में दर्पण के स्थान पर मणि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्पण का उपयोग किया जाता था, इस प्रकार के उल्लेख अंजना-पवनंजय में उपलब्ध हैं।

प्रसाधन-सामग्री में हरिचंदन, कस्तूरी, गोशीर्ष के लेप प्रसिद्ध थे, जिनसे नारियाँ अपने शरीर एवं केशों को सुगन्धित करती थीं। पैरों में अलक्तक का प्रयोग करती थीं। नेत्रों की शोभा-वृद्धि अंजन से किया करती थीं। मस्तिष्क पर गोरोचन का तिलक लगाती थीं। कान्त-कपोलों को पत्र-रचना से सजाती थी एवं स्तनों पर हरिचन्दन का लेप किया करती थीं। इनके उल्लेख उक्त तीनों नाटकों में उपलब्ध होते हैं।

५. शिक्षा

उस समय समाज में शिक्षा का विशेष प्रचार था। पुरुषों की भाँति महिलाएँ भी सुशिक्षित होती थीं। केवल अभिजात्य-वर्ग को ही शिक्षा सुलभ नहीं थीं, अपितु साधारण-जनता में भी शिक्षा का प्रसार था। उक्त नाटकों में इसके अनेक उल्लेख उपलब्ध होते है। अंजना-पवनंजय नाटक में स्त्रियों द्वारा अपने प्रियतम के पास अनंग-लेख लिखकर भेजने का प्रसंग आया है। मैथिली कल्याण नाटक में सीता ने केतकी-पत्र पर राम को पत्र लिखा था। उस पत्र की शैली लाक्षणिक एवं व्यंजनापूर्ण थी, जिसे पढ़कर राम सीता के गूढार्थ को जान सके थे।

सुभद्रा के 'अनंग-लेख' लिखने और मंदारिका द्वारा पढ़े जाने से भी यह निश्चित हो जाता है कि सभी को शिक्षा सुलभ थी। सुभद्रा ने तो अपना अनंग-लेख प्रकृति-प्रदत्त उपकरणों से ही तैयार किया था। उसने कागज का कार्य अशोक-पत्र से, स्याही का कार्य अश्रुओं से भीगे हुए स्तनों के अंगराग से और नखाग्र को लेखनी के रूप में प्रयुक्त करके अपना अनंग-लेख तैयार किया था।

६. ललितकला—

वास्तुकाव्य—हस्तिमल्ल ने सौध, हर्म्य, प्रासादगृह, विविध प्रकार के उद्यान एवं कमलयुक्त सरोवरों का मनोहारी वर्णन किया है। राजा-महाराजाओं के प्रासाद मणि-मणिक्य से जटित रहते थे। मैथिली-कल्याण-नाटक के धारागृह में चन्द्रकान्त मणियाँ जटित थीं, जिसमें हिमांशु के उदित होते ही जलधारा निःसृत होने लगती थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानों हिमालय से सुरसरिता ही निकली हो।

उन्होंने सौध-रत्नदीप-भवन का वर्णन भी बड़ी रम्यता के साथ किया है। ये सबसे सुन्दर भवन होते थे। इनके गवाक्षों से सूर्य-किरणें छन-छन कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवेश करती थीं और सूर्यकान्त-मणियों के साथ मिलकर उनका प्रकाश सदैव मध्यान्ह का आभास देता था। कौमुदी-प्रासाद भी इसी तरह के होते थे। सामान्य घरों में भी कमलयुक्त वापिकाओं का निर्माण कराया जाता था।

नाटककार ने भाँति-भाँति के उद्यानों का भी वर्णन किया है, जिनमें बकुलोद्यान, प्रमदवन, तमालवन, और वेलावन प्रमुख हैं, जिन्हें विविध प्रकार के लता, गुल्मों और पुष्पों से सुसज्जित किया जाता था। उद्यानों में चित्र-मण्डप बनाये जाते थे एवं सौन्दर्य वृद्धि के लिए शाल-भंजिकाएँ (पुत्तलिकाएँ) स्थापित की जाती थीं। वृक्षारोपण इस प्रकार से कराया जाता था कि वे तोरण का रूप ले लेते थे।

चित्र-कला—उक्त तीनों नाटकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस युग में पुरुष चित्र-कला का अच्छा ज्ञान रखते थे। पवनंजय अंजना के वियोग में अंजना का और राजा भरत सुभद्रा के सौन्दर्य से आविर्भूत होकर सुभद्रा का सुन्दर चित्र चित्रफलक पर बनाते हैं और उससे अपने मन को समझाने की चेष्टा करते हैं।

संगीत-कला—में संगीत का प्रचलन विशेष रूप से पाया जाता है। कन्याओं को संगीतशाला में संगीत की शिक्षा दी जाती थी। सीता को संगीत-कला में निपुण बतलाया गया है। वह दोलागृह में झूला-झूलते समय गीत भी गाती है। अंजना-पवनंजय में भी संगीत शिक्षा के उल्लेख आये हैं। प्राचीन भारत में संगीत के साथ-साथ वाद्यों का भी प्रचुर प्रयोग होता था। कोई शुभ कार्य वाद्य के बिना नहीं होता था। वर्त्तमान समय में भी वाद्यों का उतना ही महत्व है। उस युग में वल्लकी (वीणा) मृदंग आदि का विशेष प्रचार था।

आर्थिक परिस्थितियाँ—प्रस्तुत नाटकों में वर्णित सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह युग सुख-समृद्धि से परिपूर्ण था। रत्नदीप, रत्नजटित फर्श, रत्नमय झूले, रत्नचूर्ण का छिड़काव, एवं विविध प्रकार के वस्त्र और अलंकरण इस बात के द्योतक हैं कि वह युग वैभव-सम्पन्न था।

समाज में विकलांग और निम्नवर्ग को भी राज्याश्रय प्राप्त था। वामन, कुब्ज और कलावती जैसे लोग भी अपनी स्थिति से प्रसन्न थे।

५. हस्तिमल्ल के नाटकों में उपलब्ध प्राकृतें—

संस्कृत नाटककारों ने जहाँ संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है, उसी के साथ उन्होंने समकालीन विविध लोक-भाषाओं को भी प्रतिष्ठा प्रदान की है। यह परम्परा महाकवि शुद्रक से लेकर अश्वघोष, भास, कालिदास, भवभूति और हस्तिमल्ल तक ज्यों की त्यों चलती रही तथा इन नाटककारों ने उसका पूर्णतया पालन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों में प्रधान रूप से शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, एवं ढक्की का प्रयोग किया है।

विक्रान्त-कौरव नाटक में प्राकृत बोलने वाले मुख्यतः स्त्रीपात्र हैं। पुरुष पात्रों में से केवल विदूषक और सौविदल्ल ने ही प्राकृत-भाषा का प्रयोग किया किया है। उसके स्त्रीपात्रों में सुलोचना, नवमालिका, गन्धमालिनी एवं सरलिका हैं, जो शौरसेनी-प्राकृत का प्रयोग करती है। विदूषक भी इसी भाषा का प्रयोग करता है। सौविदल्ल ही एक ऐसा पात्र है, जो केवल महाराष्ट्री-प्राकृत का प्रयोग करता है। इस नाटक में कवि ने महाराष्ट्री-प्राकृत के प्रकृत-रूप को प्रयुक्त किया है।

अंजना-पवनंजय नाटक में प्राकृत-भाषा के तीन रूप उपलब्ध होते हैं—(१) शौरसेनी, (२) मागधी और (३) ढक्की।

उक्त नाटक के स्त्रीपात्र और विदूषक शौरसेनी-भाषा का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत नाटक के स्त्रीपात्रों में अंजना, वसन्तमाला, केतुमति, मधुकरिका, मालतिका, शरावती और वैजयन्ती प्रमुख हैं।

वनेचर, चेट, क्रूर और वनेचर की पत्नी लवतिका ने मागधी-भाषा का प्रयोग किया है। वनेचर मागधी-भाषा के साथ-साथ ढक्की-भाषा का प्रयोग भी करता है।

मैथिली कल्याण नाटक में शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं ढक्की-प्राकृत का प्रयोग मिलता है। विदूषक, सीता, विनीता, सुकुमारिका, कौमुदिका और चेटी पात्राएँ शौरसेनी-प्राकृत का प्रयोग करती है।

प्रस्तुत नाटक में षण्ढ एक ऐसा पात्र है, जिसे स्त्री-लिंग में कलावती के नाम से जाना गया है। वह प्रकृति से स्त्री और पुरुष के बीच (नपुंसक) की है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार कभी संस्कृत और कभी प्राकृत का प्रयोग करती है। उसी में एक गाथा ऐसी भी है, जो प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में एक रूप वाली है। विद्वज्जन इसे भाषा-श्लेष, अलंकार के अन्तर्गत मानते है। उदाहरणार्थ—

किसलयलीलातरला विसवलयविलासकोमलच्छाया।
स कुसुमवाणबाणा सारेण सदा समाविद्धा ॥ पृ० ५४)

उक्त भाषा के प्रयोग की दृष्टि से संस्कृत-नाटकों में मैथिली-कल्याण नाटक' का विशिष्ट स्थान है। इसकी द्विभाषात्मक शैली को देखकर "राघव-पाण्डवीय" काव्य का स्मरण आने लगता है, जिसमें अनेक श्लोक इसी शैली में प्रयुक्त हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असम्भव नहीं, कि लेखक ने अपने लेखन के पूर्व "राघवपाण्डवीय" काव्य का का भी अध्ययन किया हो ?

उक्त नाटक के वामन और कुब्ज के गद्य--भाग की भाषा मागधी, महाराष्ट्री एवं शौरसेनी का मिला--जुला रूप हैं। एक ही अनुच्छेद में तीनों भाषाओं का प्रयोग देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है और भाषा--विदों को यह कहने के लिए विवश कर देना हैं, कि नाटककार विषय की दृष्टि से तो व्युत्पन्न था ही, भाषा पर भी उसका असाधारण अधिकार था। वे भाषा के डिक्टेटर थे। प्रसंगानुकूल विचारों अथवा भावों को जब भी जिस भाषा में कहना चाहा, उसे वे अधिकार पूर्वक कह सकते थे। इसीलिए वे एक ही साथ शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री का प्रयोग कर सके जैसे :—

> दच्छिलस्सिपसले तिमिलोम्मूलणकुसले। पसलंते वालाअवे अहगे मोह-लअणप्पईवगहेण महालाअस्स पस्सादो पलिसमाविअसेवासमए दिअस-मुहम्मि णिग्गए। (दृक्षरश्मिप्रसरे तिमिरोन्मूलनकुशले प्रसरति बाला-तपे अहमपि मोघरत्नप्रदीपगृहेण महाराजस्य प्रसादः परिसमापित-सेवासमय दिवसमुखे निर्गतः) (मैथिलि० ३/१)

पद्य की भाषा महाराष्ट्री है। लेकिन मागधी की जो विशेषताएँ प्राकृत वैयाकरणों ने निर्दिष्ट की हैं, उनमें से एक ही विशेषता का प्रयोग प्रस्तुत नाटक की मागधी--भाषा में उपलब्ध होता है। जैसे—रकार के स्थान पर लकार एवं सकार के स्थान पर शकार का हो जाना। वामन और कुब्ज की भाषा में केवल रकार के स्थान पर लकार का ही प्रयोग हुआ है। सकार के स्थान पर शकार का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उदाहरणार्थ—

> 'मोहलअणप्पईवगहेण महालाअस्स पस्सादो। मैथिलि० ३/१

कुछ भाषाविद् इसे ही जैन--शौरसेनी की वैकल्पिक प्रवृत्ति भी मानते हैं। सुभद्रा--नाटिका के सभी स्त्री--पात्र और विदूषक शौरसेनी--भाषा का प्रयोग करते हैं। स्त्री--पात्रों में सुभद्रा, रानी बैलाती, मदनिका, मंजरिका, तरंगिका और रतिषेणा है। सुभद्रा--नाटिका की यह विशेषता है कि नाटककार ने इसमें एक ही प्रकार की प्राकृत का प्रयोग किया है और वह है शौरसेनी।

हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों में जिन प्राकृत--भाषाओं का योग किया है, संक्षेप में उनकी कुछ विशेषताओं का विवरण निम्न प्रकार है—

शौरसेनी-प्राकृत—

प्राकृत वैयाकरणों ने शूरसेन (मथुरा)-प्रदेश तथा उसके आसपास की भाषा को शौरसेनी प्राकृत कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अंजना-पवनंजय नाटक" में विदूषक, अंजना, वसन्तसेना और युक्तिमती, मैथिली कल्याण नाटक" में विदूषक, सीता और उसकी सखी विनीता तथा सुभद्रा-नाटिका में विदूषक, ज्येष्ठा रानी वैलासी, सुभद्रा, नटी और अन्य जितने भी स्त्री पात्र हैं, वे सभी शौरसेनी--भाषा का प्रयोग करते हैं। सुभद्रा--नाटिका में शौर-सेनी--प्राकृत विशेषरूप से प्रयुक्त हुई है। हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों में जैन-शौरसेनी का प्रयोग न करके नाटकीय--शौरसेनी का प्रयोग किया है। इस शौर-सेनी की प्रकृति संस्कृत है। जैसे—

(१) संस्कृत का इदानीं शब्द शौरसेनी में "दाणिं" के रूप में प्रयुक्त होता है। (अंजनापवणंजय--पृ० ५०) (मैंथिली--पृ० ७६)

(२) संस्कृत के "तस्मात् शब्द के स्थान पर" "त" हो जाता है (सुभद्रा० पृ०, २६)

(३) "एवं" के स्थान पर "एव्व" पाया जाता है (सुभद्रा पृ० २०)

(४) अनादि में वर्तमान असंयुक्त त् का द् पाया जाता है। जैसे—जानाति-जाणदि, केतुमती--केदुमदी (अंजना, पृ० ३९) सुभाषितं--सुभासिदं (मैंथिली पृ०-२) कुतः--कुदो (मैंथिली पृ० २) आदि।

(५) यदि संस्कृत में "त" आदि में हो, अथवा वह संयुक्त हो, तो "त" का "द" नहीं होता। जैसे—

तत्र-तत्त (मैथिली पृ० २२) पात्र-पत्तं (सुभद्रा ६१)

(६) थ के स्थान पर कहीं ह और कहीं थ पाया जाता है। जैसे—कथं-कहं (अंजना पृ० ११), (सुभद्रा पृ० ६१) कथा--कहा (वही पृ० ११)

(७) 'भू' धातु के स्थान पर 'हो' आदेश हो जाता है। जैसे—भवामि-होमि (अंजना पृ० ९) भवति--होदि (मैथिली पृ० २२, सुभद्रा पृ० ६३)

(८) यावत् के स्थान पर जाव का प्रयोग होता है। जैसे—यावत्-जाव (अंजना पृ० ६, सुभद्रा पृ० ५७)

(९) ननु के अर्थ में णं का प्रयोग (अंजना पृ० १३ सुभद्रा पृ० ५९)

(१०) स्त्री के स्थान में इत्थी हो जाता है। जैसे—(अंजना पृ० १२, मैथिली पृ ४३)

महाराष्ट्री—

महाराष्ट्र-प्रदेश की भाषा को महाराष्ट्री भाषा माना जाता है। स्थान—विशेष के आधार पर इसका नामकरण किया गया है, लेकिन भाषा--वैज्ञानिक ों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अनुसार शौरसेनी का परिवर्तित या विकसित रूप ही महाराष्ट्री है। यद्यपि वैयाकरणों ने महाराष्ट्री प्राकृत को श्रेष्ठ प्राकृत माना है और उसकी विशेषताएँ भी परिलक्षित की है। महाराष्ट्री में स्वरों के मध्यवर्त्ती तथा अन्त्यवर्त्ती व्यंजनों का लोप अधिक हुआ है, इसीलिए यह भाषा गीतों के अनुकूल रही है। यही कारण है कि गीतों में इसका व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है।

हस्तिमल्ल ने भी महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग अधिकतर पद्यों में किया है। "मैथिली कल्याण नाटक" में वामन और कुब्ज की पद्य--भाषा महाराष्ट्री प्राकृत ही है। महाराष्ट्री-प्राकृत की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) महाराष्ट्री में स्वरों के मध्य के स्पर्श-वर्णों का लोप हो जाता है। जैसे—मकरन्द--मअरंद (विक्रान्त० पद्य पृ० २३) मकरध्वज--मअरद्धअ (मैथिली० पृ० ७१)

(२) थ का ध न होकर प्रायः हकार हो जाता है। जैसे—माधवी-माहवी (मैथिली पृ० २८) निधुवनं-णिहुवणं (मैथिली पृ० ४२) सनाथ-सणाहो (मैथिली पृ० ३) मिथिलापुरी--मिहिलाउरि (मैथिली पृ० ६) हस्तिमल्ल के नाटकों में महाराष्ट्री प्राकृत अपनी इन्हीं प्रमुख विशेषताओं के साथ उपलब्ध है।

(३) शौरसेनी में जहाँ त का द होने की प्रवृत्ति है, वहाँ महाराष्ट्री में त एवं अन्य व्यंजनों का लोप ही हो जाता है। जैसे—वहति-वहइ, स्फुरति-फुरइ, रक्षति--रक्खइ (विक्रान्त० पृ० २४, २५(क्लाम्यति--किलम्मइ मैथिली पृ० ६४) उत्थितं--उत्थिअं (मैथिली पृ० ४२) कलावती--कलावई (मैथिली पृ० ४३) कुट्टिणीजनं--कोट्टिणीअणं (मैथिली पृ० ४२), दासेरकः--दासेलओ (मैथिली पृ० ४१) अचिरा--अइरा (मैथिली पृ० ४)।

(४) सप्तमी विभक्ति में म्मि प्रत्यय के साथ सीसम्मि, भुअम्मि रूप महाराष्ट्री की प्रकृति के ही द्योतक है। जैसे—सीसम्मि (विक्रान्त० पृ० २५) इयम्मि (मैथिली पृ० १) दिअसमुहम्मि (मैथिली पृ० ४०)

(५) नकार का णकार, होना इसकी अपनी विशेषता है। जैसे—तेन--तेण (मैथिली पृ० ४२) मदन--मअण (मैथिली पृ० २४) निकुंजं--णिउंजं (मैथिली पृ० २४)

(६) ईश्वर का ईसर होना भी महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषता है। (दे० विक्रान्त० २५)

(७) आदि—व्यंजन--लोप के उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे—किम्-इं (सुभद्रा० पृ० ७२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मागधी—

मगध प्रदेश तथा आसपास की बोली मागधी-प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह प्राकृत-भाषा का ही एक प्राचीनतम रूप है। इसका प्रयोग हस्तिमल्ल ने अंजना-पवनंजय और मैथिली-कल्याण नाटक में किया है। अंजना-पवनंजय में विशेष रूप से मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। इसमें वनेचर, चेट, क्रूर और लवलिका आदि पात्र मागधी-भाषा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं।

इसकी प्रकृति शौरसेनी है। अन्य प्राकृतों से इसकी विभिन्नता के निम्न आधार हैं—

(१) अकारान्त पुलिंग शब्दों में प्रथमा एकवचन में एकारान्त का प्रयोग। जैसे—प्रमादः--पमादे (अंजना पृ० ६२) एषः--एशो (वही पृ० ६३), प्रदेशे-पएसे (वही पृ० ७९), पुरुषः--पुलिशे (मैथिली पृ० ४३)

(२) अहं के स्थान पर अहके का प्रयोग मागधी की अपनी विशेषता है। जैसे—अहं-अहके (अंजना पृ० ६०) अहके के स्थान पर हके, हगे के प्रयोग भी मिलते हैं।

(३) मागधी की सबसे बड़ी विशेषता "र" का "ल" तथा "स" का "श" हो जाना भी है। जैसे—पुरुषः--पुलिशे (अंजना पृ० ६०) अरे-अले (वही०)।

क्रूरः--कुलुले (वही०) मकरन्दः--मअलंदे (मैथिली पृ० ४०)

उदाहरणं--उदाहलणं (मैथिलीं पृ० ४३)

स्वामिनो--शामिणी (अंजना पृ० ६३)

सन्देशः--शंदेशो (अंजना पृ० ६३)

स्वामी--शामी (अंजना पृ० ६३)

(४) मागधी में पुलिंग में "अ" का "ए" हो जाता है।

अतिक्रमः--अदिक्के (अंजना पृ० ८२)

प्रमादः--पमादे (अंजना पृ० ६३)

रहस्यः--रहश्शे (मैथिली० पृ० ६२)

ढक्की—

ढक्की बोली पूर्व-मागधी का एक उपभेद है। पूर्व बंगाल में स्थित ढक्क प्रदेश के नाम पर इस प्राकृत बोली का नाम ढक्की पड़ा। इसमें "रकार" के स्थान पर "लकार" का प्रयोग होता है और दन्त्य सकार एवं तालव्य सकार का भी प्रयोग होता है। ढक्की में मागधी के समान रेफ के स्थान पर ल का प्रयोग होना अनिवार्य है। टीकाकार पृथिवीधर के अनुसार ढक्की बोली "वकार" प्रायः होती है। "अंजना–पवनंजय नाटक" में वनेचर प्रायः इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ले ले लवलिए शोहणं खु वणवाशशोक्खं । (रे-रे लवलिके शोभनं खलु वनवाससौख्यम्)
घलआ सेलागुहाओभक्खाइ कलीलकंदमूलाइ । (गृहाणि शैलागुहा भक्ष्याणि करीर कन्दमूलानि) (दे० अंजना पृ० ७८)

इस प्रकार हस्तिमल्ल ने अपने नाटक-साहित्य में विविध प्राकृतों के प्रयोग कर प्राकृत के क्षेत्र में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। उसने विणूदेमि (विनोदयामि) (मैथिली पृ० ७५, जोरिओ--चोरितः, मैथिली पृ० ७६) लेओ--लेपः (वही, पृ० ६९, इस्सले--ईश्वरः, चतुलेण--चतुरेण (मैथिली पृ० ४३) वलिसघलेन्वर्षधरः (वही पृ० ४३) आदि के प्रयोग कर आश्चर्य चकित किया है। हस्तिमल्ल द्वारा प्राकृत--प्रयोग नई पद्धति से प्राकृत--व्याकरण का ग्रन्थ तैयार करने के लिए उसका साहित्य निश्चय ही मार्ग--निर्देशक का कार्य कर सकता है। इसमें भी मैथिली कल्याण नाटक में उपलब्ध प्राकृत-प्रयोग कई दृष्टियों से नवीन एवं मौलिक है और उनका स्वतन्त्र रूप से तुलनात्मक एवं विस्तृत अध्ययन किए जाने की महती आवश्यकता है।[1]

●

---

१. उदाहरणों के सन्दर्भ मूल ग्रन्थों से दिए गए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रम्भामञ्जरी

संक्षिप्त समीक्षा

सट्टक साहित्य : उद्भव एवं विकास

प्राचीन साहित्य--शास्त्रियों ने काव्य को लोक-रंजन का साधन मानते हुए उसके दो भेद किए हैं—श्रव्यकाव्य एवं दृश्य काव्य। इनमें से दृश्यकाव्य को अशिक्षित, अर्धशिक्षित या शिक्षित आबाल--वृद्ध नर—नारी सभी के मनोरंजन का साधन होने के कारण उसे रूपक की संज्ञा प्रदान की गई। महाकवि धनञ्जय ने अपने दशरूपक नामक लक्षण--ग्रन्थ में रूपक के निम्न दस भेद बतलाए हैं—(१) नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) व्यायोग (५) समवकार (६) डिम (७) ईहामृग (८) अङ्क (९) वीथि एवं (१०) प्रहसन। किन्तु यह आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने इनमें 'सट्टक' का उल्लेख नहीं किया। आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं सदी) ने पूर्वागत परम्परा तथा सम्भवतः समकालीन कुछ अनिवार्यताओं को ध्यान में रखकर उक्त भेदरूपों में सट्टक एवं नाटिका का भी संयोजन किया। आचार्य रामचन्द्र--गुणचन्द्र (नाट्य दर्पणकार) तथा शारदातनय ने भी सट्टक शब्द का उल्लेख कर उसकी परिभाषा प्रस्तुत की है। सट्टक की श्रेणी के विषय में यद्यपि लक्षण:--शास्त्रियों में कुछ मतभेद है क्योंकि कुछ तो उसे रूपक की श्रेणी में रखते हैं और कुछ उपरूपक की श्रेणी में। किन्तु अब अधिकांश विद्वान् इस मत से सहमत हैं कि जिस प्रकार नाटक और प्रकरण सजातीय हैं, उसी प्रकार नाटिका एवं सट्टक भी।

प्राकृत साहित्य के महारथी विद्वान् डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'सट्टक' की पूर्व--परम्परा पर गम्भीर विचार किया है और बताया है कि भले ही प्राचीन लक्षण--शास्त्रियों ने काव्य--भेदों में 'सट्टक' का उल्लेख न किया हो किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि सट्टक की प्राचीन परम्परा थी ही नहीं। उनके मतानुसार तो प्राकृत-भाषा में सट्टक का लिखा जाना ही उसकी प्राचीनता का सबल प्रमाण है। ई० पू० २०० के भरहुत शिलालेख में प्रयुक्त साडिक शब्द सट्टक का पूर्वरूप ज्ञात होता है। इस प्रकार से यह विदित हो जाता है कि ईस्वी सन् के पूर्व में सट्टक का प्रचार था। दीर्घकाल तक वह लोकाश्रित तो बना रहा, किन्तु राज्याश्रय प्राप्त न हो पाने के कारण वह संस्कृत रूपकों या उपरूपकों के समान प्रसिद्धि प्राप्त न कर सका। (दे० डॉ० शास्त्री द्वारा लिखित प्रा० सा० का इति० पृ० ४११)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय प्राच्य विद्याओं के महारथी विद्वान् प्रो० डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी सट्टक शब्द पर विचार किया है। उनके मतानुसार वह द्राविड़ी भाषा का शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति स + अट्ट (या आट्ट) में क प्रत्यय जोड़कर हुई है। उनके अनुसार अट्ट या आट्ट का अर्थ विविध हाव-भाव के साथ नृत्याभिनय होता है और इस प्रकार उन्होंने सट्टक की परम्परा का सम्बन्ध द्राविड़ी भाषा और साहित्य से जोड़ा है (विशेष के लिए चन्द्रलेखा-सट्टक में डॉ० उपाध्ये की विस्तृत भूमिका देखें)।

स्थिति जो भी हो, उक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि सट्टक-काव्य भारतीय प्राच्य सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्पराओं का एक महत्वपूर्ण अंग था और उसका माध्यम जनभाषा-प्राकृत होने के कारण उसकी सार्वजनीनता तथा लोकप्रियता स्वतः स्पष्ट है। यह बहुत सम्भव है कि जिस समय भास, शूद्रक एवं महाकवि कालिदास आदि अपने नाटक साहित्य का प्रणयन कर रहे थे, उसी समय सट्टक साहित्य का भी प्रणयन किया गया हो किन्तु सम्भवतः किन्हीं कारणों से उसे राज्याश्रय प्राप्त न हो सकने के कारण वह प्रकाश में नहीं आ सका और संस्कृत रूपकों या उपरूपकों के समान ही वह प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सका। यह भी सम्भव है कि १० वीं सदी के पूर्व कुछ सट्टक ग्रन्थ लिखे गए हों और वे या तो मध्यकालीन राजनैतिक अस्थिरता अथवा रख-रखाव में असावधानी के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गए हों अथवा यह भी सम्भव है कि किन्हीं प्राच्य शास्त्र भण्डारों में वेष्ठनों में बँधे हुए सुरक्षित हों और अपने उद्धार या प्रकाशन की राह देख हों। वर्तमान में जो सट्टक साहित्य उपलब्ध है वह समय-क्रमानुसार निम्न प्रकार है :—

१—कर्पूरमञ्जरी (महाकवि राजशेखर (यायावरीय), १०वीं सदी)
२—रम्भामञ्जरी (महाकवि नयचन्द्रसूरी, १४वीं सदी)
३—चन्द्रलेखा सट्टक—(महाकवि रुद्रदास, १७वीं सदी)
४—आणंदसुंदरी कहा (महाराष्ट्र चूड़ामणि कवि घनश्याम, १८वीं सदी)

कवि घनश्याम कृत बैकुण्ठ-चरित एवं एक अन्य सट्टक के उल्लेख भी मिलते हैं किन्तु वे अद्यावधि अनुपलब्ध हैं।

५—शृंगार-मञ्जरी (कवि विश्वेश्वर, १८वीं सदी)

इनके अतिरिक्त कवि मार्कण्डेय (१७वीं सदी) कृत किसी सट्टक की भी जानकारी मिली है किन्तु न तो उसके नाम का पता चला है और न वह रचना ही उपलब्ध है।

उक्त समस्त उपलब्ध सट्टक साहित्य प्रकाशित हो चुका है। उनमें से यहाँ रम्भामञ्जरी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायेगा :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सट्टक का गठन और रम्भामञ्जरी

उपलब्ध सट्टकों का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि सट्टक का कथानक शृंगार-रस प्रधान होता है। उसकी कथावस्तु कल्पित किन्तु उसका नायक एक सुप्रसिद्ध राजा होता है, जो स्वभावतः स्त्रैण एवं स्वेच्छाचारी भी होता है। उसकी अनेक रानियाँ होती हैं। नायिका अनिन्द्य सुन्दरी राजकुमारी होती है। ज्येष्ठा रानी प्रगल्भा एवं मानिनी तथा अपने पति के प्रति शंकालु होने के कारण वह उस पर कठोर नियन्त्रण रखती है, जिससे राजा के प्रेम-व्यापार में बाधाएँ आती हैं। सट्टक के गठन में सामान्यतः उसके निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण होते हैं :—

१—सट्टक में प्रवेशक एवं विष्कम्भक नहीं पाये जाते (जब कि नाटिका में पाये जाते हैं)।

२—नायिका के नाम पर सट्टक का नामकरण होता है।

३—आद्योपान्त प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है। (यद्यपि परवर्त्ती कालों में इसके अपवाद भी मिलते हैं)।

४—कथावस्तु का विभाजन अंकों मे न होकर जवनिकान्तरों में होता है जिनकी संख्या ४ मानी गई है।

५—स्त्री पात्रों की बहुलता और घोर शृंगार-वर्णन इसकी अपनी प्रमुख विशेपता होती हैं।

इस कसौटी पर रम्भामञ्जरी खरी नहीं उतरती क्योंकि एक तो उसमें ४ की जगह ३ जवनिकाएँ उपलब्ध होती हैं और दूसरे, वह आद्योपान्त प्राकृत-भाषा-निवद्ध न होकर संस्कृत-प्राकृत मिश्रित है।

इसके कारणों पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत रचना में भी ४ जवनिकाएँ रही होंगी किन्तु किन्हीं कारणों से चौथी जवनिका लुप्त-विलुप्त हो गई है। अध्ययन करने से पता चलता है कि प्रथम ३ जवनिकाओं में सट्टक के उद्देश्य का पता ही नहीं चलता। कथा का अन्त किस प्रकार हुआ, यह भी विदित नहीं हो पाता। इन्हीं कारणों से यह स्पष्ट है कि यह रचना अपूर्ण है।

जहाँ तक संस्कृत-भापा के प्रयोग का प्रश्न है, यह प्रतीत होता है कि जिस समय नयचन्द्र ने इस रचना को लिखा था, उस समय प्राकृत-भाषा की लोकप्रियता घट रही थी। इसी कारण सामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कवि को सट्टक में संस्कृत एवं प्राकृत आदि मिश्रित भाषाओं का प्रयोग करना पड़ा होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है, जिसका आधार तोमरवंशी राजा वीरमदेव की वह राज्य-सभा है, जो साहित्यकारों से भरी हुई रहती थी। नयचन्द्रसूरि को भी उसमें सम्मान प्राप्त था। उसमें एक बार यह प्रश्न उठा कि समकालीन कवि क्या पूर्व-कवियों की समकक्षता कर सकते हैं? नयचन्द्र ने उसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही सम्भवतः भास, शूद्रक एवं कालिदास के नाटक साहित्य में संस्कृत एवं प्राकृत के मिश्रित रूप को देखकर उसी आधार पर रम्भामञ्जरी की रचना कवि नयचन्द्र ने की होगी। यही नहीं, पद-लालित्य के क्षेत्र में कवि अमरचन्द्र एवं वक्रोक्तियों के लिए कवि हर्ष को वे अद्वितीय मानते हैं किन्तु वे गर्वपूर्वक यह भी कहते हैं कि उनकी (नयचन्द्र की) रचना में उक्त दोनों विशेषताओं का एक साथ समन्वय हुआ है। इस प्रकार नयचन्द्र उक्त दोनों कवियों से भी अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

विषय-वस्तु एवं कथानक

कवि नयचन्द्र ने प्रस्तुत सट्टक में पूर्वागत परम्परानुसार ही कल्याण कोटीश्वर भगवान् के बराहावतार रूप को नमस्कार कर वाराणसी के राजा मल्लदेव एवं उनकी पट्टरानी चन्द्रलेखा के पुत्र राजा जैत्रचन्द्र तथा उनकी होने वाली आठवीं रानी रम्भामञ्जरी का तीन जवनिकाओं में शृंगार रस भरित आलंकारिक वर्णन किया है।

मूल कथानक के अनुसार राजा जैत्रचन्द्र बड़ा ही पराक्रमी राजा था। उसकी ७ रानियाँ थीं। उनके अतिरिक्त भी जब उसे विदित होता है कि लाट देश के राजा देवराज की पौत्री और राजा मदन वर्मा की पुत्री राजकुमारी रम्भा अनिन्द्य सुन्दरी है, तब वह उसके साथ विवाह करने के लिए व्याकुल हो जाता है। उधर रम्भा को भी जब जैत्रचन्द्र के पराक्रमी व्यक्तित्व की जानकारी मिलती है तो वह भी उससे मिलने के लिए व्याकुल हो उठती है।

जैत्र की पट्टरानी वसन्तसेना राजा के इस प्रेम-व्यापार में बाधक बनती है। किन्तु वसन्तसेना की सखी कर्पूरिका तथा रोहक नामक विदूषक अपने मित्र राजा जैत्र की हर प्रकार से सहायता करते हैं।

एक दिन कामदेव की मार से पीड़ित राजा जैत्रचन्द्र अपने पुरोहित नारायण-दास को अपना दूत बनाकर रम्भा की कुशलता की जानकारी हेतु उसे रम्भा के पास भेजता है। वह बुद्धिमानी पूर्वक रम्भा को जैत्रचन्द्र के पास ले आता है और वहीं दोनों का विवाह करा दिया जाता है।

सन्ध्या समय राजा जैत्र प्रतिहारी के साथ पुष्पवाटिका में आता है। वह रम्भा का स्मरण करते ही काम-पीड़ित हो जाता है। उसी समय विदूषक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(रोहक) एवं कर्पूरिका (पट्टरानी वसन्तसेना की सखी) भी वहाँ आती है। राजा कर्पूरिका से रम्भा का कुशल समाचार पूछता है। उत्तर में कर्पूरिका कहती है कि रम्भा स्वयं विरह-व्याकुल है तथा अपने भाग्य को कोसती रहती है कि एक ही स्थान पर रहकर भी उसे स्वामी के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। राजा कर्पूरिका को कहता है कि रम्भा प्रेम-पत्र क्यों नहीं लिखती ? उत्तर में कर्पूरिका कहती है कि जब भी वह प्रेम-पत्र लिखने बैठती है, तभी आपको स्वस्ति का सम्बोधन लिखते ही आपके प्रगाढ प्रेम को स्मरण कर वह मूर्च्छित हो जाती है और उसके आगे वह पत्र लिख ही नहीं पाती। यह सुनकर राजा की प्रेम-विह्वल व्यग्रता एवं स्मर-भावना और भी तीव्र हो उठती है।

रम्भा के साथ संयोग कराने के अनेक उपाय किए जाते हैं किन्तु पट्टमहिषी वसन्तसेना के कठोर नियन्त्रण के कारण वे सभी असफल हो जाते हैं। इस प्रकार वे दोनों ही विरह के सन्ताप में जलते रहते हैं।

अन्त में पट्टमहिषी अपनी सखी कर्पूरिका के साथ जैत्र के कक्ष में आती है। वह उसे वामांग में स्थित कर उसके साथ काम-क्रीड़ाओं में संलग्न हो जाता है। परिश्रान्त होकर पट्टमहिषी स्वयं ही जैत्र के सम्मुख प्रस्ताव रखती है कि वह रम्भा को रति-सुख का अनुभव करावें। कर्पूरिका रम्भा को राजा के कक्ष में पहुँचा देती है और इस प्रकार दोनों का चिरप्रतीक्षित सुखद समागम हो जाता है। इसी प्रसंग के साथ प्रस्तुत सट्टक की कथावस्तु समाप्त हो जाती है।

ग्रन्थकार परिचय

ग्रन्थकार नयचन्द्रसूरि की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी परिचय अभी तक मिल सका है, उसके अनुसार वे जन्मनः ब्राह्मण थे किन्तु जैनाचार तथा जैनाचार्यों से प्रभावित होकर उन्होंने जैनधर्म स्वीकार किया था तथा साधुवृत्ति धारण कर ली थी।

जैन गुरुओं के सान्निध्य में रहकर उन्होंने संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि भाषाओं तथा साहित्य का गहन अध्ययन किया और कुशल-प्रतिभा के जन्मजात संस्कार होने के कारण उनकी लेखनी शीघ्र ही प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो गई।

रम्भामञ्जरी में उन्होंने अपने पारिवारिक जीवन के विषय में कोई चर्चा नहीं की किन्तु अपने को षड्भाषाचतुर-कवि अवश्य कहा है और रम्भामञ्जरी में प्रयुक्त षड्भाषाएँ अर्थात् शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अपभ्रंश, मराठी एवं संस्कृत सचमुच ही कवि के कथन की यथार्थता को घोषित करती हैं।

कवि ने अपनी रचनाओं में महाकवि अमरचन्द्र एवं श्रीहर्ष का स्मरण कर एक ओर उनकी प्रशंसा की है तथा उन्हें क्रमशः पद-लालित्य एवं वक्रोक्ति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्र में असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न बताया है। दूसरी ओर उन्होंने बड़े ही गर्व के साथ यह भी कहा है कि उनमें (अर्थात् नयचन्द्र की रचनाओं में) उक्त दोनों का एक साथ सुन्दर समन्वय हुआ है। तात्पर्य यह कि नयचन्द्र ने उक्त दोनों श्रेष्ठ कवियों में से भी अपने को श्रेष्ठ बतलाने का प्रयत्न किया है!

कवि नयचन्द्र को दैवी प्रतिभा प्राप्त थी, इसमें सन्देह नहीं। उनके भाषा-ज्ञान के विषय में ऊपर चर्चा हो ही चुकी है, उस क्षेत्र में वे भाषाविद् के रूप में प्रतिष्ठित हैं ही, उनके दीर्घ समस्यन्त पद तथा आलंकारिक वर्णन उन्हें बाण जैसे महाकवि की कोटि का सिद्ध कर सकते हैं। 'हम्मीर महाकाव्य' जैसे महनीय ऐतिहासिक महाकाव्य को लिखकर जहाँ उन्होंने अपने को महान् इतिहासकार की पंक्ति में प्रतिष्ठित किया है, तो उसमें प्रयुक्त वीररस की ऊर्जा से मध्यकालीन विदेशी आक्रमणों से जर्जर भारत माता के वीर सपूतों को रणभूमि में तलवार का जौहर दिखाने के लिए भी ललकारा है। इसी प्रकार अनेक आध्यात्मिक स्तुतियाँ लिखकर उन्होंने भावुकजनों को निराकुल मन से एकान्त साधना की भी प्रेरणा दी है। इस प्रकार उनकी रचनाएँ भले ही अल्प हों किन्तु वे भी उन्हें एक उत्कृष्ट कवि की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त हैं।

कवि ने रम्भामञ्जरी में कहीं-कहीं मराठी का प्रयोग किया है। इससे बहुत सम्भव है कि वे महाराष्ट्र के निवासी रहे हों। इस दिशा में गहरी छानबीन की आवश्यकता है।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ विशिष्ट प्राकृत शब्दों का संस्कृत रूपान्तर
(प्रस्तुत पुस्तक की पृष्ठ संख्या के अनुसार)

सुभद्रा नाटिका

पृष्ठ सं० ७

आणत्तम्हि--अज्ञप्ताऽस्मि
भट्टिदारिआए--भर्तृदारिकया
सुभद्दाए--सुभद्रया
जह--यथा
हंजे--सखि
खु दाणि--खल्विदानीं
समंतदो--समन्ततो
विअसंतकुसुमत्थवअ--विकसत्कुसुमस्तबकः
संवुत्तो--संवृत्तः
वोलेइ--प्रकाशयति
मालईलआ--मालतीलता
एदाणंउव्वाहविहिं--एतयोरुद्वाहविधिं
गदुअ--गत्वा
आणिअ--आनीय
आअच्छ--आगच्छ
गच्छेमि--गच्छामि
कहं--कथं
अणुपडं आअच्छेदि--अनुपदमागच्छति
कीस तुमं--कस्मात्त्वं
चिट्ठसि-तिष्ठति

पृष्ठ ८

हला-सखि
संफुल्लो--संफुल्लो
विलंबिआओ--विलम्बिताः
भणिअ इह आणेहि त्ति--भणित्वा इहानयेति
अच्छेरं--आश्चर्यं ।
दंसिदसामपाडलमुद्धकोरओ--दर्शितश्यामपाटलमुग्धकोरको ।
इसुब्भिण्णहरिदालपंडुरंकुरा--ईषदुद्भिन्नहरितालपाण्डुरङ्कुरा
विआसणिब्भरकुसुमविच्छड्डमणोहरा--विकासनिर्भरकुसुमविच्छर्दमनोहरौ
तुमं अप्पम्मि--त्वमात्मनि
विस्ससिसि--विश्वसिषि
पुच्छेमि-पृच्छामि
विस्सद्धं--विश्रब्धं
आणासि--जानासि
कुदो--कुतः
एत्तिअम्मि--खल्वेतावति
हरिसेक्ककारणे-हर्षैककारणे
आआलिअकुसुमुब्भेदकल्लाणे--आकालिककुसुमोद्भेदकल्याणे
अण्णारिसं विअ--अन्यादृशमिव
दीणदीणं--दीनदीनं
चेदो--चेतः
लक्खिज्जइ--लक्ष्यते

पृष्ठ-९

आणामि अहं--जानाम्यहम्
वत्तुकामा विअ उवक्कमिअ--वक्तुकामेवोपक्रम्य
भणासि--भणसि
तुइत्तो--त्वत्तो
अइसंघादुं--अतिसंघातुं
पुच्छिदं -पृष्टं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडिपुच्छसि--प्रतिपृच्छसि
सक्कम्हि--शक्ताऽस्मि
अत्तणो--आत्मनो
णिगूहिदुं--निगूहितुम्
अवहिदम्हि--अवहितास्मि
समत्थेति--समर्थयते
तह एव्व--तथैव
समत्थणा--समर्थना
अभिजादं--अभिजातं
पआसणं--प्रकाशनं
संवरणं--संवरणं
तरसि शक्नोषि
महाभाओ--महाभाग:
दिट्ठिभावो--दृष्टिभाव:
एत्तिअं पुण जाणामि--एतावत्पुनर्जानामि
मिलाअंती--म्लायन्ती
उद्देसस्स--उद्देशस्य
आवत्तेदि--आवर्तयति
विहारणिरवेक्खा--विहारनिरपेक्षा
मोत्तूण इमस्सि चेव--मुक्त्वास्मिन्नेव
अलं एत्तिएण--अलमेतावता

पृष्ठ १०

मूढ हिअअ--मूढ हृदय
सुमरणं--स्मरणं
तुह एक्कंतसंतावइत्तअं--तवैकान्तसंताप-यितृकं
चवलाइ लोअणाइ-चपले लोचने ।
संणिहिदे संनिहिते
कादुं ण पहवेह, तं चेअ दाणिं--कर्तुं न प्रभवथस्तमेवेदानीं
दंसिदं अहिलसंताइ--द्रष्टुमभिलषन्ती
मं आआसेध--मामायासयथ:
हंहो दुव्विदद्ध--हंहो दुर्विदग्ध
दुम्माणवसणपरवंतो--दुर्मानव्यसनपरवान्
मोएदुकामो--मोचयितुकाम:
फंससुहं णिल्लज्जो--स्पर्शसुखं निर्लज्ज:
अंग वम्मह--अंग मन्मथ
अण्णाणुराअपराहीणेति--अन्यानुरागपराधीनेऽपि
खलीकरंतो--खलीकुर्वन्
सराणं--शराणां
चिंतेति--चिन्तयति

पृष्ठ ११

अण्णं--अन्यत्
जं तुए अविच्छिण्णं--यत्त्वयाविच्छिन्नं
चिंतिज्जइ--चिन्त्यते
पुच्छेसि--पृच्छसि
पण्हो वि--प्रश्नोऽपि
तुह रमइत्तओ त्ति--तव रमयितेति
पराहीणे--पराधीने
समूसुअं--समुत्सुकां
कीस मं उवहसेसि--कस्मान्मामुपहससि
दक्खिण्णमेत्तदिण्णुत्तरं--दाक्षिण्यमात्रदत्तोत्तरं
पत्तेसि--प्रत्यायसि
विरुद्धोवण्णासच्छलेण असाहारणिं--विरुद्धोपन्यासच्छलेनासाधारणीं
तुवम्मि--त्वयि
बहुमइं उग्घाडेंतो--बहुमतिमुद्घाटयन्ती
सलाहेसि--श्लाघयसि
इअं म्हि--इयमस्मि
तुण्हिक्का--तूष्णीका
मअणरोअस्स--मदनरोगस्य
णिद्दअपीडिआए--निर्दयपीडिताया
चंपणाअ--मरणाय
तारिसा--तादृशानि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाअधआ—भागधेयानि

पृ० १२—

कुदो दे ओवाअसंका—कुतस्तेअपायशंका

अहरहं—अहरहः

सिज्झंति—सिध्यन्ति

सव्वहा—सर्वथा

विसंवदंति—विसंवदन्ति

होदु—भवतु

लिहइ—लेढि

लेक्खं चेअ—लेख्यमेव

किं अणंगलेहकव्वं—किमनङ्गलेखकाव्यम्

मं उवहसिस्ससि—मामुपहसिष्यसि

ण एअं उवहासट्ठाणं—नैतदुपहासस्थानम्

अवहिद म्हि—अवहिताऽस्मि

जीहा—जिह्वा

अहिलिहिअ—अभिलिख्य

दंसेहि—दर्शय

पृष्ठ १३—

दाणिं उवअरणाइ—इदानीमुपकरणादि

एक्कं असोअपल्लवं उवणेहि—एकमशोक-
पल्लवमुपनय

णिवडंतबाहसलिलोल्लिएण—निपतद्बाष्प-
सलिलार्द्रितेन

थणंगराअहरिचंदणरसेण—
स्तनांगरागहरिचन्दनरसेन

णहग्गतूलिआधरिएण—नखाग्रतूलिकाधृतेन

लिहिस्सं—लेखिष्यामि

सोहणाइ अणंगलेहोवअरणाइ—
शोभनान्यनंगलेखोपकरणानि

वाचइस्सं—वाचयिष्यामि

वाएहि—वाचय

करिस्सं—करिष्यामि

वाचोजुत्ती—वाचोयुक्तिः

पृष्ठ १४—

दक्खिदव्वं—द्रष्टव्यम्

लहूकरेसि—लघूकरोषि

एदाइ अक्खराइ—यथैतान्यक्षराणि

सुत्थिदाइ—सुस्थितानि

करअलफंसासहं एत्थ एव्व असोअक्खंधे—
करतलस्पर्शासहमत्रैवाशोकस्कन्धे

समप्पिस्सं—समर्पयिष्यामि

अलंकरेदि—अलंकरोति

दक्खिस्ससि—द्रक्ष्यसि

पिअसहोवअणं—प्रियसखीवचनं

समस्सासणमेत्तं—समाश्वासनमात्रं

पृ० १५—

रोमंचिदसव्वंगो—रोमांचितसर्वांगो

दरणिमीलंतलोयणो—दरनिमीलल्लोचनो

णीसहं—निस्सहं

पृ० १६—

दाव णिरंतरुप्फुल्लस्स—तावन्निरोत्फुल्लस्य

ससिरिअदं—सश्रीकतामस्य

पृ० १७—

दिढं—दृढं

असिसिरदा—अशिशिरता

फंसस्स—स्पर्शस्य

णिरग्गलं—निर्गलं

णिहणइ एअं—निहन्त्येनां

पृ० १८—

सिसिरोवकरणं वि—शिशिरोपकरणमपि

दाणि—इदानीं

संणिहिदं—संनिहितम्

पडिक्खणं—प्रतिक्षणं

विवड्ढंतो—विवर्धमानो

पृ० १९—

पुणो उवसप्पम्ह—पुनरुपसर्पावः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिण्णं चरणसंतालणदोहलं--दत्तं चरण-संताडनदोहदं
दंसणूसवो--दर्शनोत्सवः
णवरिअ--अनन्तरं
मउलुब्भेदो तह--मुकुलोद्भेदस्तथा
तदो इमिणा एव्व अणुऊलेण--ततोऽनेनैवानुकूलेन
जदा एव्व इमस्स उव्वाहविही--यदैवास्योद्वाहविधिः
करीअदि--क्रियते
समाअमो--समागमो
पृ० २०
पुव्वं अणुभूदं विअ--पूर्वमनुभूतमिव
जो एत्तिअस्स संवादइत्तओ--यस्तावदेतावतः संवादयिता
अमिलाणमुही--अम्लानमुखी
सुणिव्वत्तिओ तुह उव्वाहसंपत्तिणाडिआए--सुनिर्वर्तितस्तवोद्वाहसंपत्तिनाटिकायाः
पुव्वरंगविही भविस्सदि--पूर्वरंगविधिर्भविष्यति
सुत्थिद म्हि--सुस्थिताऽस्मि
आअदा एव्व--आगतैव
पदाणसलिलग्घकुसुमहत्था--प्रदानसलिलार्घकुसुमहस्ता
तुज्झ अणहिण्णा--तवानभिज्ञा
ता जाव एसा--तस्माद्यावदेषा
ताव इह एव्व--तावदिहैव
ठादव्वं--स्थातव्यम्
पृ० २१
एदाइ--एतानि
पदाणसलिलाइ अग्घकुसुमाइं--प्रदानसलिलान्यर्घकुसुमानि
णिव्वत्तेमो--निर्वर्तयामः
दिज्जउ--दीयताम्
पदाणसलिलं--प्रदानसलिलं
खंधे ओलग्गा--स्कन्धेऽवलग्ना
उवक्खेओ--उपक्षेपः
पृ० २२
वाआकोसलं--वाक्कौशलम्
किलम्मइ--क्लाम्यति
लअंतरेहिं--लतान्तरैः
णीअदि--नीयते
संभावेहि--संभावय
सोहणा अब्भत्थणा--शोभनाऽभ्यर्थना
जामादुणो अग्घं उवहरेमि--जामातुरर्घमुपहरामि।
पृ० २३
मे अवसरो--मेऽवसरो
जाव उवसप्पामि--यावदुपसर्पामि
सोत्थि--स्वस्ति
होदीए--भवत्यै
दुग्गओ--दुर्गतः
उण एअस्सिं--पुनरेतस्मिन्
तुम्हाणं ऊसवे--युष्माकमुत्सवे
सोत्थिवाअणं--स्वस्तिवाचनकं
आअदो म्हि--आगतोऽस्मि
तेण वि आअदेण--तेनाप्यागतेन
होदव्वं--भवितव्यम्
तक्केमि--तर्कयामि
इच्छीअदि--इष्यते
आअलं--आगलं
संपादइस्सम्ह--संपादयिष्यामः
पृ० २४
पूरइस्सं--पूरयिष्यामि
समीहिदं--समीहितम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गदुअ--गत्वा
णिव्वुत्तं--निर्वृत्तं
सहीओ णिव्वट्टिअ--सखीर्निवर्त्य ।
पुण्णपत्तं आहरसु--पूर्णपात्रमाहर
पृ० २५
एव्व दाणिं अवलंबेदव्वो--एवेदानीमवलम्बितव्यः
पराहीणस्स--पराधीनस्य
वेलं एत्थ--वेलामत्र
पहुत्तणं--प्रभुत्वम्
देवी-आअमणादो भाइदव्वं--देव्यागमनाद्भेतव्यम्
पृ० २६
तुवंमि अणुराअं--त्वय्यनुरागं
खंम चेअ अरिहेदि--क्षमामेवार्हति
इत्थिआए वल्लहत्तणं--स्त्रिया वल्लभत्वं
अवरद्धे--अपराद्धे
तत्तिएण--तावतैव
कोविदुं--कोपितुम्
अदिकोवणाए--अतिकोपनया
उव्विज्जंति--उद्विजन्ते
विसण्णो--विषण्णः
सअं उवसप्पम्ह--स्वयमुपसर्पावो
सअं वि उवसप्पणं चेअ पसादो--स्वयमप्युपसर्पणमेव प्रसादः
परवदी--परवती
अय्यकच्चाअणो--आर्यकात्यायनः
मंतिअदि--मन्त्रयसे
होदव्वं--भवितव्यम्
पृ० २७
इमिणा--अनेन
बउलपाअवेण अंतरिआओ--बकुलपादपेनान्तरितः
पेक्खम्ह--पश्यावः
अइभूमिं--अतिभूमिं
गओ इमस्स अविणओ--गतोऽस्याविनयः
तुवम्मि चेअ असाहारणो अत्तहोदो--त्वय्येवासाधारणोऽत्रभवतोऽनुरागः
उण दक्खिणमेत्तं ति--पुनर्दाक्षिण्यमात्रमिति
दुट्ठदा--दुष्टता
बम्हबंधुणो--ब्रह्मबन्धोः
जहत्थं--यथार्थम्
कहं अआलसंहारो--कथमकालसंहारः
पृ० २८
पेक्खिदव्वं--द्रष्टव्यम्
मह अब्भत्थणा--ममाभ्यर्थना
दाव तुम असच्चसंवादेहिय--तावत्वमसत्यसंवादैश्च
विलोभअंतो--विलोभयन्
विणोदपत्तं--विनोदपात्रं
विवरीअं--विपरीतं
जं मए अदिक्कंते--यद्यन्मयाऽतिक्रान्तं
खंतव्वं--क्षन्तव्यम्
पच्छिमो पणामो--पश्चिमः प्रणामः
पृ० २९
परिहरिज्जइ--परिह्रियते
फंसिदुं खमामि--स्प्रष्टुं क्षमे
ता सअं चेअ उट्ठेहि--तस्मात् स्वयमेवोत्तिष्ठ
पणमीअदि--प्रणम्यते
अकिदण्णअ--अकृतज्ञ
सजीविदा--सजीविती
पृ० ३०
आमंतणलालसाए--आमन्त्रणलालसया
विमुक्कभिक्खापरिब्भमणस्स--विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमंतणसालम्मि--आमन्त्रणशालायां
गलहत्थणं--गलहस्तनम्
पृ० ३१
जाणाइ अक्खराइ--जानात्यक्षराणि
वाएहि--वाचय
रमणिज्जं--रमणीणं
कअं अरमणिज्जं--कृतमरमणीयम्
सो अरमणिज्जविरहो--सोऽरमणीयविर-
होऽपि
रमेज्ज--रमयेत्
णअणाइ--नयने
मेहावित्तणं--मेधावित्वं
खणदंसणादो पत्तगदाइ अक्खराइ--क्षण-
दर्शनात्पत्रगतान्यक्षराणि
संकमिदाइ--संक्रमितानि
सुइरं--सुचिरं
परिप्फंदिआ--परिस्पन्दिता
विवज्जसि--विपद्यसे
पृ० ३२
बलिअं--बलवत्
को वा एत्थ आसासो--को वाऽत्राश्वासः
पिअणिवेअणत्थं अग्गदो तुरिअं आअदा--
प्रियनिवेदनार्थमग्रस्त्वरितमागता
चक्कवट्टिणो--चक्रवर्तिनो
पदिज्जदि--प्रदीयत्
विसण्णाए--विषण्णायाः
णिट्ठुर हिअअ--निष्ठुर हृदय
विवज्जसु--विपद्यस्व
दाव अग्गदो गदुव--तावदग्रतो गत्वा
दक्खिस्सम्ह-प्रक्ष्यामः
पृ० ३३
ऊसंगं--उत्संगम्
सआहि--शेष्व
परित्ताअध--परित्रायध्यम्
अविह अविह--अवत-अवत
रक्खेहि--रक्ष
कहं अवत्थंतरगदा--कथमवस्थान्तरं गता
परित्तायहि--परित्रायस्व
पृ० ३४
घेप्पइ--गृह्यते
अमुंचंती--अमुंचन्ती
चिंतिज्जउ--चिन्त्यताम्
पृ० ३५
फिर--किल
कण्डप्पवादकंदरमुहवट्टिणं--काण्डप्रपात-
कन्दरमुखवर्ति
दिसाविजयभोआवलि--दिशाविजयभोगा-
वली
गाअंतं--गावत्
किंणरमिहुणं--किन्नरमिथुनम्
एण्हि--इदानीं
पृ० ३६
दाव चउरुदहिपरिअंताए--ताव च्चतुरुद-
धिपर्यन्तया
महीए--मह्यां
समुइदो--समुचितः
करो, करः--चुंगी, हाथ
दिज्जइ--दीयते
अत्ताणं'-आत्मानं
मुणंतीए--जानत्या
दिढाभिसंगादो मम ऊसंगे--दृढाभिषङ्गा-
न्ममोत्संगे
मुच्छिदं--मूच्छितं
संघडेइ--संघटयति
विहुणं विही--मिथुनं विधिः
पृ० ३७
पदसद्दो--पदशब्दः
सहीअणालावो--सखीजनालापः
दक्खिस्ससि--द्रक्ष्यसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अञ्जना पवनञ्जय

पृ० ३९

जादु आगदस्स–जात्वागतस्य
दोहलं विअ–दोहदमिव
वट्टइ–वर्तते
णीलुप्पलदलमेचआइ–नीलोत्पलदलमेचके
होन्ति–भवतः
थणचूचुआइ–स्तनचूचुके
फलिणीफलपण्डुराइ होन्ति–फलिनीफल-
पाण्डुरौ भवतः
परिप्फुडा–परिस्फुटा
होदि उअरे–भवत्युदरे
रोमराई–रोमराजिः
विण्णवेमि–विज्ञापयामि
अभिवट्टइ–इतोऽभिवर्तते
अणुअरिआ–अनुचरिका
जुत्तिमदी–युक्तिमती
अस्सत्था विअ–अस्वस्थेव
सुदं–श्रुतम्
अंजणाए चदुस्सालं–अंजनायाश्चतुश्शालं

पृ० ४०

कज्जंतरक्खित्तहिअआ विअ–कार्यान्तरा-
क्षिप्तहृदयेव
मं अणवेक्खिअ–मामनवेक्ष्य
जाव इमाए पिट्ठदो णिहुदं–यावदस्याः
पृष्ठतो निभृतं
गदुअ अच्छिणी–गत्वाऽक्षिणी
पिहाअ ओहसिस्सं–पिधायापहसिष्यामि
विस्संभीकरेदि–विस्रम्भीकरोति
जाणिदा खु सि–ज्ञाता खल्वसि
पट्ठिदासि–प्रस्थितासि
आणाए–आज्ञया
दोहलअं–दोहदं
उम्मत्ता सि–उन्मत्तासि
पहसिअदुइओ–प्रहसितद्वितीयो
आअदुअ गओ–आगत्य गतः
अपरिणिट्ठिदसंगरो–अपरिनिष्ठितसंगरो

पृ० ४१

वीरजणोइदाए–वीरजनोचितया
विलक्खदाए–विलक्षतया
अप्पआसाअमणो–अप्रकाशागमनो
रत्तिं आदिवाहिअ–रात्रिमतिबाह्य
पच्चूसे–प्रत्यूषः
पत्थिदा–प्रस्थिता
सोहणं–शोभनं
वुत्तंतं–वृत्तान्तं
विण्णविदुं, विण्णेविदुं–विज्ञापयितुम्
पज्जाउलं विअ–प्रत्याकुलमिव
अप्पडिमं चारित्तं–अप्रतिमं चारित्रम्
आहिजाइपरिवालणे–
आभिजात्यपरिपालने
एक्कंतसावहाणा–एकान्तसावधाना
वुत्तंतं–वृत्तान्तं
मुधा–संतप्पिअदि–मुधा सन्तप्यते
चदुरेहिं–चतुर्भिर्मासैः
परिसमापिअजुद्धो–परिसमापितयुद्धः
आअमिस्सामित्ति–आगमिष्यामीति
ता सुवो–तस्माच्छ्वो
परसुओ–परश्वो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सअं चेअ—स्वयमेव

पृ० ४२

दाव णिरग्गलं—तावन्निर्गलं
वरुणस्स—वरुणस्य
खरदूसणादीणं—खरदूषणादीनां
मोअणं अप्पडिहदं—मोचनप्रतिहतं
विज्जाबलेण—विद्याबलेन
जुज्झे—युद्धे
मुग्गरस्स—मुद्गरस्य
पच्चहं लेहो—प्रत्यहं लेखः
पहिअदि—प्रेष्यते
चिराइस्सदि विअ—चिरायिष्यते इव
गरलं उग्गिरइ—गरलमुद्गिरति,
संकिअ—शंकित्वा
संजाददोहलरमणिज्जं—
संजातदोहृदरमणीयं
दक्खिअ—दृष्ट्वा
अच्छीणं—अक्ष्णोः
फलं अणुहविस्सं—फलमनुभविष्यामि
वहूगअं असाहारणं—वधूगतमसाधारणं
पेम्मभरं—प्रेमभरं
कादरदाए—कातरतया
परपरिवादसंकिणी—परपरिवादशंकिनी
दाव अप्पणो—तावदात्मनः
दक्खिण्णस्स अणुइदं अणुचिट्ठे—
दाक्षिण्यस्यानुचितमनुतिष्ठ

पृ० ४३

सद्दावेदि--शब्दापयति
लद्धहूदी—लब्धभूतिः
कीस मं—कस्मान्मां
सद्दावेसि—शब्दापयसि
दिअहेसु—दिवसेषु
किंचि—किंचित्
किर अस्सत्थं—किलास्वस्थां
संवुत्तं—संवृत्तम्
पासं—पार्श्वं

पृ० ४५

शअं आअदुअ—स्वयमागत्य
शद्दावेदि—शब्दापयति
ऐशे अहगे णमश्शामि—एषोऽहं नमस्यामि
खु एशे—खल्वेषो
अवशले तश्श—अवसरस्तस्य
तुम्हालिशेहिं—युष्मादृशैः
संजप्पिदुं—संजल्पितुम्
शुधाशूदिबिंबशलिशापाणअकवालशणा--
हवामग्गहत्थए—सुधासूतिबिम्बसदृ--
शापानककपालसनाथवामाग्रहस्तो
घग्घलिआघग्घलणिग्घोशमुहलचलणजु--
अले--घर्घरिकाघर्घरनिर्घोषमुखर--
चरणयुगलो,
डमलुअतालणलोलदाहिणकले--
डमरूकताडनलोलदक्षिणकरः
खंधुद्देशशमप्पिअतिशूलदंडए--
स्कन्धोद्देशसमर्पितत्रिशूलदण्डो,
लत्तचंदणतिलअशोहिअणिडालपट्टए--
रक्तचन्दनतिलकशोभितललाटपट्टो,
जवाकुशुमलोहिअभीशणलोअणेविअ--
जपाकुसुमलोहितभीषणलोचन इव
विज्जाहलभेलवे--विद्याधरभैरवः
एशे--एषः
शामी--स्वामी
कूले--कूरः
पाऊण—पीत्वा
शुदुल्लहं--सुदुर्लभां
शुलहिं—सुरभिम्
घुम्मइ--घूर्णति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्खलइ--प्रस्खलति
अकालणे--अकारणे
हशइ--हसति

पृ० ४६

जाव इमश्श--यावदस्य
मदावशाणं--मदावसानं
तुम्हेहिं एत्थ--युष्माभिरत्र
जिण्णुज्जाणे--जीर्णोद्याने
पडिवालेदव्वं--प्रतिपालयितव्यम्
जश्श--यस्य
णामहेयं--नामधेयं
शुलाशुला--सुरासुरा
निशमिऊण--निशम्य
वेवंति--वेपन्ते
शे खु क्कूले--सः खलु क्रूरः
अहके--अहम्

पृ० ४७

मंतेण--मन्त्रेण
जंतेण--यन्त्रेण
तंतेण--तन्त्रेण
दुक्कलं--दुष्करं
एत्तियम्मि--एतावति
मालिशे--मादृशः
पुलिशे--पुमान्, पुरुषः
शामिअ एशे अहके--स्वामिन्नेषोऽहं
पियशिश्शा--प्रियाशिष्यः
शुश्शूशेहि--शुश्रूषस्व
एशे दाशे अणुगहिदे--एष दासोऽनुगृहीतः
एदाइ णवुप्पलाइ--एतानि नवोत्पलानि
पडिवालेन्ते चिट्ठइ--प्रतिपालयंस्तिष्ठति
चिलाइदं--चिरायितम्
किं ति एण्हि तुण्हिक्के चिट्ठशि--किमितीदानीं तूष्णीकस्तिष्ठसि

वाशेहिं दाव उप्पलेहिं कुंभाशवं--वासय तावदुत्पलैः कुम्भासवम्
शुट्ठु--सुष्ठु
कहाणं--कथानां
मए अवशले--मयाऽवसरः

पृ० ४८

उल्लाशंते तिशूलअं--उल्लासयंस्त्रिशूलकं
णच्चं--नृत्यं
जहाशमीहिअं--यथासमीहितम्
गाअंते--गायन्
महुले--मधुरां
विहिए--विद्यां
विहलेमि--विहरामि
शंपदं--सांप्रतम्
शुहं--सुखं
पिबंतए--पिबन्
शाहुपशण्णअं--साधुप्रसन्नां
पए--पदे
खलंते--स्खलन्
विशंथुलं--विसंस्थुलम्
महाणुभावए--महानुभावो
णिब्भलमत्तए--निर्भरमत्तः
शदा--सदा
विजेदु--विजयतु
विज्जाहलभेलवे--विद्याधरभैरवः
शलशं--सरसां
णिहिदुप्पलअं--निहितोत्पलां
शुलअं--सुरां
पिबिऊण--पीत्वा
घडंतशुभे--घटमानशुभे
विहलेमि--विहरामि
चलेमि--चलामि
खलेमि--स्खलामि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अले–अरे
अहके–अहं
कुलुले–क्रूरः
चलेदि–चलति
होदि–भवति
बलिअं मदभलेण–बलवन्मदभरेण
णिब्भलिअं–निर्भरितम्
अशमत्था–असमर्था
घालेदुं–धारयितुं
शच्चं–सत्यं
वशुंधला–वसुन्धरा
चलइ–चलति
पृ० ४९
आवज्जेहि एत्थ–आवर्जयात्र
आपाणअचशअम्मि–पानचषके
कुंभएण–कुम्भेन
वालुणिं–वारुणीम्
आअलं–आगलं
पिबिश्शं–पास्यामि
शविशेशं–सविशेषं
शुलशा–सुरसा
महापुलिशं–महापुरुषं
शामण्णमाणुशं–सामान्यमानुषं
शुलोएदि–श्लोकते
बलाए–वराको
लोए–लोकः
शुणुथ–श्रृणुत
शव्वे–सर्वे
शव्वहा–सर्वथा
शज्जणा–सज्जना
चलणाणं–चरणयोः
शाहु–साधु
शुश्शूशएह–शुश्रुषध्वम्

हालं–हालां
विहलइ–विहरति
चलअंते–शरीरं, सलीलम्
कहं अदिभूमिं आलूढे–कथमतिभूमिमारूढः
मदभले–मदभरः
गंडूशिअ–गण्डूषयित्वा
शंपदं–सांप्रतं
मुहु णिट्ठीवइ–मुहुर्निष्ठीवति
शीहलच्छडं–शीतलच्छटाम्
विज्जाहलभेलवे–विद्याधरभैरवः
शअं–स्वयं
शशलीले–स्वशरीरे
शअले–सकले
पिहुं–पृथक्
पलिदो वि–परितोऽपि
शुलाशमुद्दए–सुरासमुद्रः
पृ० ५०
शुलामअभावदाए–सुरामयभावतया
शव्वदो इमश्श–सर्वतोऽस्य
कहं उव्वेलआ–कथमुद्वेला
तलिश्शम्ह–तरिष्यावः
शमुच्चलंते–समुच्चलति
लहलीशदेहिं–लहरीशतैः
शहश म्हि–सहसाऽस्मि
कलिश्शं–करिष्यामि
तलिश्शं अहवा–तरिष्याम्यथवा
पिबिश्शं–पास्यामि
बलिअं–बलवत्
पलिश्शंते–परिश्रान्तः
पलिश्शमं इमिणा–परिश्रममनेन
शमइश्शं–शमिष्यामि
शुंडा–शुण्डा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुला—सुरा
पशन्ना—प्रसन्ना
कल्ला—कल्या
काअंबली—कादम्बरी
महू—मधुः
शीहू—शीधुः
मइला—मदिरा
मज्जं—मद्यं
महुला—मधुरा
मेलेउ—मैरेयी
वालुणी—वारुणी
हाला—हाला (मदिरा)
पलिश्शंते—परिश्रान्त
कुत्थ एण्हि—कुत्रेदानीं
विश्शमिश्शं—विश्रमिष्यामि

पृ० ५१

पलिश्शंते—परिश्रान्त
विण्णविश्शं—विज्ञापयिष्यामि
खु एत्तिअं—खल्वेतावतीं
मदभलपलवशेण—मदभरपरवशेन
ण आअण्णिदं—नाकर्णितम्
गमिश्शामो—गमिष्यामः

पृ० ५२

किं अज्ज—किम् आर्य
मए कज्जं—मया कार्यम्
लाअलहश्शं—राजरहस्यम्
बाहिले मं—बहिर्मा
विश्शद्धे दाणिं—विस्रब्धमिदानीं
चिलश्श—चिरस्य
कालश्श—कालस्य
शुमलिदो म्हि—स्मृतोऽस्मि
अणुल्लंघणिज्जा—अनुल्लङ्घनीयाः
शामिणीशंदेशा—स्वामिनीसंदेशः

पृ० ५३

अहह का गई—आः का गतिः

पृ० ५४

दक्खिअदि—दृश्यते
देवआओ—देवताः
पदिणिं—पत्नीम्
महालाअ—महाराज
पडिसूरो—प्रतिसूर्यः
भाइणेइं—भागिनेयीम्
दुहिआ—दुहिता
अणुहवेदि—अनुभवति
पसण्णकित्ति—प्रसन्नकीर्ते
तुम्हाणं लालणिज्जं—युवयोर्लालनीयाम्
कणीयसि—कनीयसीं

मैथिली-कल्याणम् नाटकम्

पृ० ५६

अह्मो—अहो
इमस्स—अमुष्य
पदोसारंभस्स दाणिं—प्रदोषारंभस्येदानीं
कसणकज्जलाधिवासिदे—
कृष्णकज्जलाधिवासिते
कव्वुरे अंबरे—कर्बुरेम्बरे
पुव्वदिसा—पूर्वदिक्
उदिओ—उदितः
ममम्हस्स—मन्मथस्य
जोण्हा महुरस पाण सुंडाणं—
ज्योत्स्नामधुरसपानशौंडानां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ० ५७

मणिदप्पणों राईए–मणिदर्पणरीत्या

जोण्हावहुए–ज्योत्स्नाबध्वः

णिसिहिकण्णअए–निशीथिनीकन्यकाया

परूढं विअ–प्ररूढमिव

हेमपोक्खरं–हेमपुष्करं

उपआरअं–उपकारकं

सज्जिअं–सज्जितं

पृ० ५८

वट्टइ–वर्तते

आणत्तम्हि–आज्ञप्तास्मि

सीदाए–सीतया

सुउमारिएं–सुकुमारिके

वलवई–वलवती

सीसवेअणा–शिरोवेदना

चंडअंतदारादरअं–चंद्रकांत दारागृहं

सज्जीकाउं–सज्जीकर्तुं

गआए–गतायाः

ता तुए–तस्मात्त्वया

आणिअ आअंतव्वंति–ज्ञात्वागंतव्यमिति

जाव तहिं–यावत्तस्मिन्

का उण एसा–का पुनरेषा

अभिवट्टइ–अभिवर्तते

आअच्छसि–आगच्छसि

पृ० ५९

चिराअसित्ति दाणिं–चिरायसीतीदानीं

अग्गदो–अग्रतो

णिउत्ता–नियुक्ता

आम–ओम् (स्वीकारे)

हला–सखि

चिट्ठदु एअं तिष्ठत्वेतत्

संदाओ–संतापो

सिसिरोवआरेंहिपि–शिशिरोपचारैरपि

पच्चहं–प्रत्यहं

रहस्से–रहस्ये

दाव अप्पावि–तावदात्मापि

संकिदव्वो–शंकितव्यः

एव्वं एदं तहवि–एवमेतत्तथापि

अइमेत्तं मं ऊसिएसि–अतिमात्रं मामुत्सुकयसि।

सुणाहि–शृणु

अवहिदह्मि–अवहितास्मि

पुणो णिव्वंधिअ–पुनर्निबंध्य

भणिदम्हि–भणितास्मि

वसंतदोलारोहणदिणे–वसंतदोलारोहणदिने

कामदेवघरब्भंतरे–कामदेवगृहाभ्यंतरे

माहविवणे–माधवीवने

अप्पम्हि उक्कंठंतो दिट्ठो–आत्मनि उत्कंठमानो दृष्टः

संदावहेउत्ति–संतापहेतुरिति

पृ० ६०

जुंजइ–युज्यते

पडिवालेमो–प्रतिपालयावः

बहुजणपलावं–बहुजनप्रलापं

पमअवणदुवारे–प्रमदनद्वारे

णिसिहेहित्ति–निषेधयेति

णिओअं अणुचिट्ठ–नियोगमनुतिष्ठ

णिवेदेमि–निवेदयामि

पृ० ६१

साहु–साधु

किलम्मइ–क्लाम्यति

वसुहा–वसुधा

विहारावदेसणिवेदणेण–विहारापदेशनिवेदनेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणिव्विण्णं–अनिर्विण्णां
करेहि–कुरु
जाव पविसम्ह–यावत्प्रविशामः
किं इमो अम्हाणं उज्जोवो–किमियमस्माकमुद्योतः
कदाइअमोहो–कदाचिदमोघो
आदु–अथवा
णिउज्जंतो–नियुंजन्
मअणो–मदनः
तुरिदं–त्वरितं
पाहुडिअं–प्राघूर्णिकं
कुणइ–करोति
दुस्सहं–दुस्सहं
तवई–तपति
चंदादवो–चंद्रातपो
परिहरंतिअ–परिहृत्य
पच्छाआए–पृच्छायाया
वउलवालिआए–बकुलवाटिकायाः
च्छाहिं–छायां
खु उवरि णिवडंतेहिं–खलूपरि निपतद्भिः
कुसुमवाणविजयवाणेहिं–कुसुमबाणविजयबाणैः
विज्झेदि–विध्यते
पृ० ६२
णिस्संदजंतधारासहस्सं–निष्यंदयन् यंत्रधारासहस्रं
चंदअंतधाराघरअं–चंद्रकांताधारागृहं
तमालपल्लवसज्जा–तमालपल्लवशय्या
संताओ अवणिज्जदु–संतापमपनयतु
तमालदलाइ–तमालदलानि
दलंतीव–दलंतीव
उम्हाअताए–औष्मलतया
चंदणपल्लवरसेण–चंदनपल्लवरसेन
णिप्पिडिदं–निष्पीडितमिव
सिंदाए–स्निग्धया
जलंदाए–जलार्द्रया
वीजेमि–वीजयामि
गंधणीहारसेअदो–गंधनीहारसेकात्
सिण्णं–शीर्ण
पृ० ६३
दुब्भेदो–दुर्भेदः
कप्पूरचुण्णेहिं–कर्पूरचूर्णैः
पडीकरेमि–प्रतिकरोमि
मोत्तापलक्खोदसल्लित्थेण–मुक्ताफलक्षोदसंलिप्तेन
मोत्तिअखोदधवलिअधारं–मौक्तिकक्षोदधवलिताधारं
केलिपत्तं–कदलिपत्रं
असिपत्तं विअ अणंगस्स उल्लसंते–असिपत्रमिवानंगस्योल्लसत्
पेक्खंति–पश्यन्त्या
भाआदि मे आदा–बिभेत्यात्मा मम्
ता जाव तं अण्णदो विक्खिव–तस्माद्यावत्तदन्यतो विक्षिप
तं मुंच–तन्मुंच
जंताणिवडंतचंद अंतणीसंदमंद-हुंकारमुच्छिदो–यंत्रनिपतच्चंद्रकांतानिष्यंदमंदहुंकारमूर्च्छितो
मंदाणिलहदवो–मंदानिलहतकः
पडिवीजंती–प्रतिवीजंती
अण्णदो ओसरेहि–अन्यतोऽपसारय
णिवारिज्जइ–निवार्यते
कल्लहारदलेण–कल्हारदलेन
समप्पेंति–समर्पयती
पडिअवच्छावेदि–पर्यवस्थापय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृ० ६४

मुणालिणीपत्ताइ--मृणालिनीपत्राणि

अधिगमिअ अगहत्थोवि } अधिगम्याग्रहस्तेपि

उम्महाविज्जई--औष्मायते

जाव संदावसुक्खपेरंताई--यावत्सन्ताप-शुष्क पर्यन्तानि

एआदलरसेण--एलादलरसेन

सूखाइ--शुष्काणि

समप्पेमि--समर्पयामि

विसकंदाई--बिसकंदानि

सच्चं--सत्यं

विसकंदाइ--विषकंदानि

भरिआइ--भरितानि

एआइ--एतानि

उप्पलकुसुमकंडाइ--उत्पलकुसुमकांडानि

करिअदि--क्रियते

दड्ढहुमम्महो--दग्धमन्मथः

दहइअं--दहत्ययं

मोत्तिअसराइ--मौक्तिकशरान्

संतप्पेंती--सन्तापयन्ति

पृ० ६५

विणीदे--विनीते

पेक्खामहुरं--प्रेक्षामधुरां

पृ० ६६

गअणगंगं--गगनगंगां

उडुवेण विअ अलंकरिज्जंतं--उडुपेनेवालं-क्रियमाणं

पृ० ६८

इमस्सि अवारे--अस्मिन्नपारे

मज्जंतं अलद्धुच्छ्वासं--मज्जंतमलब्धो-च्छ्वासमात्मानं

पारेमि--पारयामि

सक्कत--शक्यते

पुण अणण्णसाहारणं--पुनरनन्यसाधारणं

मोहेइ--मोहयति

वेधेण विअ--व्याधेनेव

चंडादवेण--चंडातपेन

संधुक्खिदो--संधुक्षितः

सुरदंतिदंतवलिहाघादेण अंताणुब्भिण्णा--सुरदंतिदंतपरिघाघातेनंत-रुद्भिन्नं

दीग्गवट्टं--छिद्रवृत्तमिव

पवट्टिअकोमुदीणिम्मलजलपवाहविक्खित्त-वुब्बुदजालं अमअमऊखविंबं--प्रवर्त्ति-तकौमुदीनिर्मलजलप्रवाहविक्षिप्त-नक्षत्रवुद्बुदजालममृतमयूखविंबं

चंदहदअं--चंद्रहतकं

णिज्झाअंतीए--निध्यायंत्याः

चंदअंतोवलं विअ--चंद्रकातोपलमिव

होलजलाविलं--बहलजलाविलं

मुणालहारपत्तबंधं--मृणालहारपत्रबंध

जलपेडलं--जलपत्रकं

अदिवाहेहि--अतिबाह्य

परिदावं--परितापं

सीसवेअणपडिकरिअं--शीर्षवेदनाप्रति-क्रियां

गोसीसलेओ--गोशीर्षलेपः

पृ० ६७

विसतंतुदुउलवासिणीं--विसतंतुदुकूल-वासिनीं

दिण्णचंदणचच्चकीं--दत्तचंदनचर्चक्यां

केसरकिअत्थासअं--केसरकृतस्थासकां

आमुक्कमल्लिआमउलभारं--मुक्तमल्लिका-मुकुलभारां

णोमालिआमालिआमेहलं--नवमालिका-मालिकामेखलां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्धणाहि--उद्धर्तुं
चंदअंतपुत्तिए--चंद्रकांतपुत्रिके
मइत्तोवि--मत्तोपि
अहिअदरं--अधिकतरं
परिकरसिसिरोवआरा--परिक्कृतशिशिरोपचारा
मण्णे--मन्ये
सव्वदोवलग्गं--सर्वतोवलग्नं
सरघि विअ--शरधिरिव
आदा--आत्मा
कुसुमाउहस्स--कुसुमायुधस्य
सरहि एव्व--शरधिरेव
पृ० ६८
आउंखणिमग्गपुप्फाउहवाणसहस्सो--आपुंखनिमग्नपुष्पायुधबाणसहस्त्र
ऊसवं-:उत्सवं
वइदो--वदितो
मुहुत्तअं--मुहूर्तकं
मअरद्धअविजअरज्जाहिसेअसलिलप्पवाहस्स विअ--मकरध्वजविजयराज्याभिषेकसलिलप्रवाहस्येव
सोहग्गं--सौभाग्यं
पृ० ६९
जोहणापूरस्स--ज्योत्स्नापूरस्य
णिव्वापेदि-:निर्वापयति
णीहारविंदुकोमला--नीहारविंदुकोमला
कंठावलंबिणी--कंठावलंबिनी
वड्ढेदि--वर्धयते
ब्रह्मबंधुकुमुदिणीबंधू--ब्रह्मबंधुकुमुदिनीबंधुः
पृ० ७०
एअं उत्तरदो--एतदुत्तरतो
दक्खिणदो--दक्षिणतो
पुप्फवाडिआ--पुष्प-वाटिका
गच्छम्ह--गच्छावः
एदं पमदवणपच्छिमदुवारअं--एतत्प्रमदवनपश्चिमद्वारं
पृ० ७१
णिव्विसेहि--निर्विश
जोण्हापूरतरंगं--ज्योत्स्नापूरतरंगं
सुहसिसिरपरिस्सं पओसाणिलं--सुखशिशिरस्पर्शं प्रदोषानिलं
तमालवीहिआ--तमालवीथिका
परूढकअलिखंभतोरणमणिज्जं--प्ररूढकदलिस्तंभतोरणरमणीयं
धाराघरेअदुवारअं--धारागृहद्वारं
पृ० ७२
तुवं उवमामेत्ते--त्वमुपमामात्रे
उक्कंठेहि--उत्कण्ठस्व
लहसि-:लभसे
जोहणीसवण्णं--ज्योत्स्नासवर्णं
परिसाणुमेअं--स्पर्शानुमेयं
चंदअंतणिस्संदपादं--चंद्रकांतनिष्यंदपादम्
से सिरिअं--अस्याः स्वैर्यं
पृ० ७३
इदो दाव--इतस्तावत्
विणीदासहिदा--विनीतासहिता
चिट्ठेमो--तिष्ठावः
किं इमिणा अलद्धफलेण--किमनेनालब्धफलेन
पृ० ७४
सोइअ--शोचयित्वा
समस्सासिदा--समाश्वासिता
तक्कालसण्णिहिदेण--तत्कालसन्निहितेन
समस्सासइस्सिदि--समाश्वासयिष्यति
ससस्सासणकालो--समाश्वासनकालः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दाव भट्टिदारिअं अणुऊलेण--
तावद्भर्तृदारिकामनुकूलेन
कीलावदेसेण--क्रीड़ापदेशेन
विणूदेमि--विनोदयामि
वेलं अदिवाहेमो--वेलामतिवाहयामः
जुत्तं आचक्खिअं--युक्तमाख्यातं
पउत्ता--प्रवृत्ता

पृ० ७५

जोरिओ--चोरितो
सिणिद्धं--स्निग्धो
सरो--स्वरः
अविदिअभावे--अविदितभावे
लज्जेदि--लज्जसे
उक्कंठा--उत्कंठा
संतप्पिअ--संतप्य
दक्खिस्सिस्सिति--द्रक्ष्यसीति

पृ० ७६

पुरदो--पुरतः
कियट्ठं--कृतार्थं
चक्खू--चक्षुः
तुस्ससित्ति--तुष्यसीति
विहत्थेइ--विहस्तयति
थीयदि--स्थीयते

पृ० ७७

परमत्थदो--परमार्थतः
बालचंदणतरुमूलालवालपूरितवप्पं--
बालचंदतरुमूलालवालपरिपूरितवप्रं

एअं पवट्टेमि--एतत्प्रवर्तयामि
संविहेअं--संविधेयं
सहाओ--सहायो
होमि--भवामि

पृ० ७८

एक्काइणिं मं--मामेकाकिनीं
परिच्चइअ--परित्यज्य

पृ० ७९

इत्थिआ--स्त्री
ता किं करिदुं--तस्मात्किं क्रियताम्
तुम्हेहि एत्थ अन्तरिदेहि होदव्वं--
युष्माभिरत्रांतरितैर्भवितव्यं
सीसिवेअणत्ति--शीर्षवेदना इति
सिग्घं गदुअ--शीघ्रं गत्वा
आणेहि त्ति--आनयेति
किलम्मइ--क्लाम्यति
संकडे--संकटे

पृ० ८०

समासण्णो--समासन्नो
दिअहारंभो--दिवसारंभः
वारुणिदिसंवोलंवंतो -- वारुणिदिशमव -
लंबमानः
चओरवारणाणं--चकोरवारणानां
दिअरी--दिनकरी
कसणवण्णा--कृष्णवर्णा
पच्चिमजलणिहिवेलाविहाररसिओ--
पश्चिमजलनिधिवेलाविहाररसिकः
सीअंसु--शीतांशुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक–सम्पादक की अन्य रचनाएँ

१. महाकवि रइधू के साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (पुरस्कृत)
२. रइधू ग्रन्थावली—प्रथम खण्ड (२० खण्डों में प्रकाश्यमान) (पुरस्कृत)
३. रइधू ग्रन्थावली—द्वितीय खण्ड
४. वड्ढमाण चरिउ (विबुध श्रीधर, अपभ्रंश महाकाव्य) (पुरस्कृत)
५. आचार्य भद्रबाहु चाणक्य चन्द्रगुप्त कथानक एवं राजा कल्कि वर्णन
६. प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु : आचार्य कुन्दकुन्द
७. बिहार की ऐतिहासिक जैन तीर्थभूमियाँ (अप्राप्य)
८. षट्खण्डागम लेखनकथा
९. आरामशोभाकथा (संघ तिलक) प्राकृत भाषात्मक लघु उपन्यास
१०. सेतुबन्ध महाकाव्य (प्रवरसेन) प्राकृत महाकाव्य
११. लीलावई कहा (कोऊहल) प्राकृत महाकाव्य
१२. अगड़दत्त चरियं (देवेन्द्र गणि) प्राकृत चरित काव्य
१३, भविष्यदत्त काव्य (महेश्वरसूरि) प्राकृत काव्य
१४. कुमारपाल चरित (हेमचन्द्र) प्राकृत चरित काव्य
१५. प्राकृत गद्य संग्रह
१६. सरल प्राकृत व्याकरण
१७. कहाणय अट्ठगम (प्राकृत की प्राचीन प्रतिनिधि कहानियाँ)
१८. अतीत के पृष्ठों से (प्राचीन शिलालेखों के आधार पर)
१९. मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक
२०. राजा भोज और महाकवि कालिदास
२१. प्राचीन हिन्दी के लोक कवि
२२. पासणाह चरिउ (विबुध श्रीधर) (प्रकाश्यमान)
२३. पुण्णासवकहा (महाकवि रइधू) (प्रकाश्यमान)
२४. अपभ्रंश साहित्य का इतिहास (प्रकाश्यमान)

४३२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राच्य श्रमण भारती

सम्प्रेरक—पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

मूल उद्देश्य

● ऐतिहासिक मूल्य के अद्यावधि अप्रकाशित जैन विद्या सम्बन्धी प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों की खोज, संरक्षण, जीर्णोद्धार-सम्पादन और समीक्षा के साथ उनका प्रकाशन ।

● विश्वविद्यालयों के विविध पाठ्यक्रमों में स्वीकृत किन्तु अनुपलब्ध लघु पाठ्यग्रन्थों का प्रकाशन एवं उन्हें लागत मूल्य में छात्रों को उपलब्ध कराना ।

● चरित्र-निर्माण तथा नैतिक शिक्षा एवं प्राच्य श्रमण-विद्या के प्रचार-प्रसार के निमित्त सर्वोपयोगी साहित्य का प्रकाशन और कार्य-शालाओं का आयोजन करना ।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi